TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182150
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/SG1Re Accession No. G.H. 2289

Author सिंह, गुरुबचन।

Title रेखायें। 1950

This book should be returned on or before the date last marked below.

रेखायें

गुरु बचनसिंह

नवयुग प्रकाशन
दिल्ली

सितम्बर १९५६

Checked 1965

साढ़े चार रुपया

Checked 1969

नवयुग प्रकाशन द्वारा प्रकाशित तथा
रामा कृष्णा प्रेस, दिल्ली में मुद्रित ।

१

शीतकाल की एक अँधेरी रात······।

और कैफे······!'

लेकिन कैफे के अन्दर एक उष्णता थी, एक हरारत थी और विद्युत दीपो के प्रकाश मे वहाँ आँखे चौंधिया जाती थी। वह कैफे मे दक्षिण की ओर बिल्कुल कोने वाली कुर्सी पर बैठा हुआ था, जिस स्थान से वह वहाँ प्रत्येक आने-जाने वाले व्यक्ति को बडी आसानी से देख सकता था। पर यह एक संयोग की बात थी कि उस समय हाल मे बैठे लोगो की गिनती कुछ अधिक नही थी। और जो लोग थे भी, उन्होने दरवाजे के निकट सामने की कुर्सियो पर कब्जा जमा रखा था, वर्ना सारा हाल खाली पडा था। कुछ बैरे इधर-उधर घूम रहे थे। पूरब की ओर एक टेबुल के निकट चार कुर्सियो पर एक मदरासी परिवार विराज रहा था—एक पुरुष, दो महिलाएँ और एक जवान लडकी।

महिलाओ मे जो प्रौढा थी, वह शायद मदरासी व्यक्ति की पत्नी थी, और दूसरी उसकी पत्नी की बहन। क्योंकि उन दोनो महिलाओ का चेहरा आपस मे बहुत मिलता-जुलता सा था। और वह जवान-लड़की, निश्चय ही उसकी बेटी थी। उसकी मुस्कुराती हुई शोख चचल आँखे, उसके सिर के काले स्याह बालो की वेणी मे उलझा हुआ चम्पा का गजरा, इन सब ने उसे देव कन्या का रूप दे दिया था।

एक मेज पर एक पारसी दम्पति बैठी जोर-जोर से बाते कर रही

थी। उनकी बाते हाल की खामोशी को गुदगुदाने लगती थी। पारसी लेडी की पीठ उसके सामने पड रही थी, और उसके रेशमी जम्पर के किनारो से झाँकती हुई उसकी गोरी गोरी कमर फूटती हुई पौ का दृश्य उपस्थित कर रही थी। उसकी सुन्दर सुराहीदार गर्दन, और सिर पर अंग्रेजी कट के कटे हुए बालो का मानो एक गुलदस्ता, यह सब एक आकर्षण बन कर रह गया था। एक पारसी बूढा काफी के घूँट निगलता हुआ, बार-बार ऊँघने सा लगता था। और रह-रह कर उसके साथ वालो की बाते उसे चौका सी देती थी। वह कभी बीच बीच में हँसता हुआ किसी शिशिर के बूढे पत्ते की तरह एक रसहीन सा स्वर पैदा करने लगता था। उनके परे दो पजाबी देवियाँ विराजमान थी, जिनकी आँखो मे एक खुमारी और नशा सा था। और जब वे आपस मे बाते करती कुछ मुस्कुराने लगती थी, तो लिपस्टिक से रँगे उनके सुर्ख होठों के बीच, उनके सफेद दाँत मोतियो की तरह चमक उठते थे।

एक जगह कुछ बगालो व्यक्ति बातो मे खोए हुए थे। वे सब कालेज के विद्यार्थी प्रतीत होते थे। उनमें एक छात्रा थी। एक शर्मीली और मासूम सी लडकी। वह शायद अपने साथियो के व्यग का शिकार बन रही थी। क्योंकि उसका माथा नीचे झुका हुआ था और अपने निचले होठ दाँतो तले दबा वह बडी कठिनाई से अपनी हँसी रोकने का प्रयत्न कर रही थी।

एक दूसरे कोने मे एक व्यक्ति एकाकी बैठा हाल की दीवारो प अंकित चित्र देख रहा था। उसकी आँखो और विशेष कर चेहरे में उदासी और थकान के चिन्ह व्यक्त हो रहे थे, जैसे वह अपने आप कुछ भूल जाने की चेष्टा कर रहा हो।

उसे स्मरण हो आया, एक बार एक कवि महाशय ने उससे प्रथम भेंट में भारत के साहित्यकारों की चर्चा करते हुए कहा था—"य

भारत के साहित्यकार, कवि, लेखक और कलाकार भी न जाने कैसे विचित्र जीव हैं, जिन्हे किसी भी बात का सलीका ही नही। वे यह भी नही जानते कि उनकी आपस की भेंट के लिए; कौन सा समय और कौन सा स्थान उपयुक्त होता है। उन्हे कहाँ, कब और कैसे मिलना चाहिये। दूसरे देशो के साहित्यकार तो बस काफी हाऊस ही मे मिल बैठते हैं। यह काफी हाऊस साहित्यकारो का स्वर्ग है …!"

कवि मित्र की बाते सुनकर उस दिन उसने सोचा था—"बात तो मजेदार है। लेकिन सब साहित्यकारो की दशा और स्थिति एक सी नही होती। हर एक के बस की यह बात नही कि वह बाहर की सर्दी से बचने के लिए काफी हाऊस की शरण ले। आमलेट और पेस्टरी खाकर अपना दिल खुश करे। गरम-गरम काफी पीकर अपने शरीर को गरमी पहुँचाए, यहाँ की हरारत सब को रास नही आ सकती …।

उसकी नजरे चित्र देखने वाले, उस भावुक व्यक्ति से हट कर सामने रखी एक पुस्तक पर टिक गई। वह एक उपन्यास था। जिसके लेखक बनवारी लाल जी घी मर्चेंट थे। याने शुद्ध घी के थोक व्यापारी। नगर के एक बड़े रईस, साहित्य प्रेमी, और अब एक उपन्यासकार, कथाकार, और न जाने क्या कुछ! इस उपन्यास से पहले साहित्य के क्षेत्र मे उन्हे लोग बिल्कुल ही नही जानते थे। किन्तु उपन्यास का बाजार मे आना था कि अचानक ही वे साहित्य गगन मे रोशन सितारे की तरह चमक उठे और लोग आश्चर्य चकित रह गए।

बनवारी लाल जी ने उपन्यास बडे रोचक ढग से लिखा था। उसमे यह रोचकता उसके पात्रो द्वारा आ गई थी। उपन्यास का पहला पात्र, जिसके परिचय के साथ उपन्यास आरम्भ होता था, वह यो था…

"सुरेन्द्र सिंह एक श्रम जीवी लेखक था। भावुक और स्नेह शील। लोग उसका आदर करते थे और उसकी रचनाएँ पढ-सुन कर उसकी प्रशसा के पुल बाँधा करते थे। वह घर मे अधिक रहता और बाहर

लोगो से बहुत कम मिलता-जुलता था। उसका जीवन जहाँ एक ओर अवसादो से घिरा पडा था, वहाँ दूसरी ओर उसमे उसकी फाका मस्ती के कारण शान्त सागर का सा ठहराव और गहराई थी, उसके मन मे कभी भावनाओ की लहरे उठती थी, विचारो के तूफान आते थे। किन्तु ये सब उसकी नैतिकता और आदर्श की परिधि टाप नही पाते थे। वह एक खुददार आदमी था। बडा ही उदार और बडा ही शान्त। वह बहुत सारी बाते सोचने का आदी था। निराशा तो मानो उसके जीवन की सहचर होकर रह गई थी।

एक दिन अचानक उसके जीवन मे एक हलचल सी मच गई। एक तूफान सा आया जो उसे बहाकर कही से कही ले गया। यह तूफान उसके जीवन मे हरिचरन कौर नाम की एक लडकी लाई थी।

हरिचरन कौर से उसकी प्रथम भेट प्रोफेसर कपिल के यहाँ हुई थी। कपिल महाशय प्रिन्स कालेज मे दर्शन के प्रोफेसर थे और हरिचरन उनकी छात्रा। एक दिन सुरेन्द्र कपिल जी के यहाँ एक जरूरी काम से गया हुआ था। वहाँ उसकी छपी हुई एक कहानी की चर्चा हो रही थी। हरिचरन भी उपस्थित थी। उस पर शायद सुरेन्द्र की रचना का बहुत सुन्दर प्रभाव पडा था, और वह बडी आजादी से उसकी कहानी पर विचार विमर्श करने लगी। उसने सुरेन्द्र से कहा, "सुरेन्द्र जी मैने आपकी कहानी बडे मजे ले ले कर पढी है, और मुझे ऐसा लगा जैसे यह कहानी किसी सच्ची घटना पर आधारित है। किन्तु मेरी समझ मे यह नही आया, कि आप को अवसाद मे डूबी हुई ऐसी कहानी लिखने मे क्या आनन्द मिला ?"

सुरेन्द्र ने उत्तर मे कहा "मिस चरन····· प्रत्येक मनुष्य चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, उनके जीवन मे कुछ न कुछ ऐसी घटनाए होती हैं, जिनका प्रभाव, यदि वह लेखक है तो उसकी लेखनी द्वारा कही न कही प्रकट हो ही जाता है। लेखक किसी भी यथार्थ को रचनात्मक दृष्टि-

कोण से चित्रण करते हुए अपने आप मे एक संतोष अनुभव करता है। चाहे उसमे कहकहे हो या आँसू। मुस्कुराहटे हो या सिसकियाँ। और यह सब तो हमारे जीवन मे है ही। बाहर से थोडा ही कुछ लेना पडता है। और यदि अवसर मिले तो मं आपके जीवन से भी ऐसा कुछ चुरा ले सकता हूँ ·।"

प्रोफेसर कपिल मौन बैठे उनकी बातो मे दिलचस्पी ले रहे थे। वे किसी भी लडकी से किसी गभीर विषय पर बहस करना उचित नही समझते। उनके विचारो मे लडकियो को फालतू बहस की आदत होती है। वे निश्चित मुद्रा धारण किए मौन सोफे पर बैठे पाईप पी रहे थे।

हरिचरन कह रही थी, "मिस्टर सुरेन्द्र क्या कहानी जैसी वस्तु हर एक के जीवन से चुराई जा सकती है ?"

क्यो नही ··· ····"उसने उत्तर मे कहा, "प्रत्येक मनुष्य मे इतना कुछ है जो उससे माँगा जा सकता है, और यदि खुशी से कुछ न दे तो चुराया भी जा सकता है ··"

क्या आप मेरे···अपने···याने कि सब के जीवन मे इतना कुछ देख लेते हैं ··? वह बोलती हुई कुछ झिझक रही थी।

सुरेन्द्र मुस्कुराता हुआ बोला—"बहुत कुछ ·· · और मै माँगता हूँ, आप भी मुझे बहुत कुछ दे सकती हैं ! हरिचरन के चेहरे पर लज्जा की आभा उभर आई। वह कुछ सोचने लगी। प्रोफेसर हंसते हुए कमरे से बाहर निकल गए।

कमरे मे कुछ क्षणो के लिए चुप्पी छाई रही। फिर हरिचरन सहसा बोल उठी—"पुरुष बडे लोभी होते है ··"

सुरेन्द्र बोला—"नही ऐसी बात तो नही····· लोभ तो हर एक को किसी न किसी वस्तु का होता है, फिर पुरुष ही इसके जिम्मेवार क्यों ठहरे···?"

हरिचरन एक टक उसके मुँह की ओर देखती रही। फिर धीरे से बोली—"शायद आप सच कह रहे हैं।

सुरेन्द्र ने प्रश्न किया—"क्या आप को मेरी कही हुई बात पर शक है···?"

वह बात टालती हुई बोली—"नही शक की क्या बात है। लेकिन यह कोई ऐसा विषय नही जिसपर कि हम बेकार अपना दिमाग लड़ाएँ।"

सुरेन्द्र हंसते हुए बोला—"हाँ! आप सच कहती हैं, हमारे लिए कई और ऐसी बाते हैं, जिन्हे हम गम्भीरता से सोच विचार सकते हैं। सोच विचार करने वालो के लिए तो प्रत्येक वस्तु में एक रहस्य छिपा रहता है, और वे उसे जानने के लिए उत्सुक रहते हैं। हमारा जीवन स्वयं एक रहस्य है···!"

शायद इन वाक्यो का हरिचरन के मन पर बडा सुन्दर प्रभाव पडा। वह बोली, "आपसे मिल कर मुझे बड़ी खुशी हुई। आप के विचार बड़े सुन्दर हैं।"

और उत्तर मे उसने कहा, "तो विश्वास कीजिये मुझे भी आपकी बाते सुनकर बहुत खुशी हुई।"

कुछ क्षणो के लिए उनकी वार्ता हुई और वे एक-दूसरे को अपने बहुत निकट समझने लगे। और फिर कुछ क्षणो के लिए मौन रह कर वे शायद एक दूसरे को और अधिक समझने का प्रयत्न करते रहे। फिर सहसा, हरिचरन अपनी कलाई की घडी देखती हुई बोली, "क्षमा कीजियेगा मैने आपका काफी समय लिया। आपके शुभ विचार सुने। मुझे आज्ञा दीजिये, मुझे एक जरूरी काम से जाना है,···हम फिर मिलेगे।" वह दोनो हाथ जोडते हुए कुर्सी पर से उठ खड़ी हुई। वह भी उठा। फिर वे दोनो कमरे से बाहर निकल गये।

बरामदे मे खडे खडे हरिचरन कौर ने उससे पूछा—"आप कहाँ जायेगे···? चलिए मैं कार मे लिए चलती हूँ···!"

उसने कहा—"धन्यवाद ! मै अभी प्रोफेसर कपिल के पास कुछ देर ठहरूँगा !" फिर वह हरिचरन को कार तक छोडने आया।

हरिचरन कार मे बैठती हुई बोली—"फिर हम कहाँ मिल सकेंगे •• ?"

"जहाँ भेट हो जाए•••!" वह मुस्कराया—इसी तरह फिर अचानक हमारी कही मुलाकात हो जाएगी !"

"कहाँ•••कहाँ मुलाकात होगी हमारी•••?" हरिचरन के शब्दो मे उत्सुकता थी। फिर उसने कहा—"आप बडे विचित्र हैं•••देखिए मै आपसे बहुत सारी बाते करना चाहती हूँ।"

सुरेन्द्र ने कहा—"मुझे आप से बाते कर के बहुत खुशी होगी•••"

"कल आप हमारे यहाँ चाय पर आईये•••" हरिचरन के शब्दो मे अनुरोध था।

सुरेन्द्र ने कुछ सोच कर कहा—"अच्छा कोशिश करूँगा।"

वह बोली—"नही वायदा कीजिए, कल आप चाय पर जरूर आयेगे••• ।"

"आऊँगा•••!" सुरेन्द्र विश्वास पूर्ण शब्दो मे बोला और हरिचरन के होठो पर एक मुस्कान खेल गई। उसने कार स्टार्ट की, और फिर बोली—"देखिये भूलियेगा नही•••जरूर आईयेगा•••मुझे आपका इन्तजार रहेगा•••।"

"जरूर आऊँगा•••!" सुरेन्द्र धीरे से बोला। कार घरघराती हुई आगे बढने लगी। हरिचरन ने हाथ के इशारे से विदा कहा। कार धूल की एक हल्की सी आँधी उठाती हुई आगे वढ गई। वह खडा देखता रहा•••!

२

●●●

इस भेंट का सुरेन्द्र के मन पर एक विचित्र सा प्रभाव पडा। हरिचरन कौर से किया गया वायदा उसे याद रहा। उसके विचारो मे वह भले घर की एक 'कल्चर्ड' लडकी थी। शायद उसे कला और साहित्य से भी कुछ रुचि थी। और वह मन मे साहित्यिको के प्रति स्नेह भी रखती थी। ऐसी देवी से मिलने के लिये उसके मन मे अपार उत्सुकता थी।

दूसरे दिन निश्चित समय पर वह उसके यहाँ पहुच गया। वहाँ जाने के लिये उसने अन्य कार्यक्रम स्थगित कर दिये थे। कई बातें भूल गया था, लेकिन उसके यहां जाने की बात उसे याद रही थी।

उसका अनुमान था, हरिचरन उससे साहित्य, दर्शन और सामाजिक विषयो पर खुल कर वार्ता कर सकती है। साहित्य से उसे प्रेम है। मुमकिन है वह भी कुछ लिखती-पढती हो। नए लिखने वाले प्राय· अपनी रचनाएं छिपा कर रखने के आदी होते हैं। वह सोच रहा था यदि ऐसी बात है तो मै उसके मन की बात उगलवा लूंगा।

जब सध्या के समय वह उसके यहाँ पहुँचा, वह अपने फ्लेट के बरामदे मे बैठी कुछ परेशान आंखो से उद्यान की ओर निहार रही थी, उसके चेहरे से थकावट के चिन्ह व्यक्त थे। उसके बेसँवारे सिर के केश और कुछ अस्त-व्यस्त वस्त्रो को देख कर पता चलता था जैसे वह अभी-अभी कही बाहर से आई है। बाहर कार अभी गेट के सामने ही खडी थी। जैसे ही उसकी दृष्टि सुरेन्द्र पर पडी, वह शीघ्रता से कुर्सी पर से उठ खडी हुई—"आईये··· !" उसके मुँह से निकला और उसके होठो पर एक मुस्कराहट खेल गई।

सुरेन्द्र ने अपनी घडी देखते हुए कहा—"शायद मै निश्चित समय पर पहुँचने मे सफल हुआ···!"

"इसके लिए आपको धन्यवाद···!" कहते हुए हरिचरन ने उसे एक कुर्सी पर बैठ जाने के लिए हाथ से संकेत किया। बोली—"आइये पधारिये।" कुर्सी पर बैठते हुए सुरेन्द्र ने एक नजर चारो ओर देखा। फ्लेट अभी हाल ही मे बना लगता था, और बिल्कुल नए माडल का था। किन्तु उस फ्लेट के आस-पास कुछ घर पुराने टाईप के थे, जिससे नए फ्लेट की सुन्दरता मे अंतर आ जाता था। और फिर उनमे से कुछ मकान जो फ्लेट से सटे हुए थे, खाली जान पडते थे। क्यो कि उनके बाहर के दरवाजे बद थे और उन पर ताले लगे हुए थे। उसने पूछा—

"मिस चरन क्या यह बगल वाले घर खाली पडे है ··?"

उसने कहा—"जी हाँ ··खाली पडे है ··!"

सुरेन्द्र बोला—"इन मकानो के कारण आपके फ्लेट की सुन्दरता नष्ट हो गई है···!"

"क्या किया जाए···" हरिचरन बोली—"इसीलिए तो मैने इन्हे खाली करवा लिया है···!"

सुरेन्द्र बोला—"तो गोया इन मकानो पर आपका अधिकार है।"

"जी हाँ ··" वह बोली—"शायद आप यह नही जानते कि इस पूरी लाईन की मालकिन मै हूँ। मैने यह मकान एक दिवालिये ठेकेदार से खरीदे थे। रुपये मैने पिता जी से उधार लिये थे, और अपनी मर्जी का यह फ्लेट बनवाया। यह फ्लेट मेरे अपने ही नाम है।"

"बहुत खूब।" सुरेन्द्र बोला—"आप बिजनेस खूब जानती है···!"

हरिचरन कौर के होठो पर एक मुस्कान खेल गई। सुरेन्द्र ने उत्सुकता से पूछा—"आपने ये घर खाली क्यो रखे है·· ?"

"मै दो फ्लेट और बनवाना चाहती हूँ·· " वह बोली—इसीलिए

इन्हें खाली करवा लिया गया है। जब फ्लेट बन कर तयार हो जायेंगे, मैं इन्हें भले आदमियो को किराए पर दे दूँगी। ऐसे आदमी जिन से कि मेरे विचार मेल खाते हो।"

"तो मानो किसी गरीब को आपका फ्लेट या इसके कमरे किराये पर लेने से पहले आपके विचारो को समझना अत्यत आवश्यक होगा··· है न···?" सुरेन्द्र ने उस से यह विचित्र सा प्रश्न किया। और उसका उत्तर था—"जी हाँ····।"

"बहुत अच्छी बात है···" सुरेन्द्र के मुँह से निकला।
हरिचरन ने कहा—"चलिए अन्दर चल कर बैठा जाए।"

वे दोनो कुर्सियो पर से उठ खडे हुए। सुरेन्द्र ने पूछा—"आप शायद कही बाहर से आ रही है···!"

"हाँ···! उसने उत्तर दिया—"मैं टेलिको मिल्ज के क्वार्टर्स देख कर आ रही हूं। वहाँ हमारा ही ठेका चल रहा है!"

वे दलान पार कर के एक बडे से कमरे में प्रवेश किये, जो विशेष रूप से सजा हुआ नही था। उस कमरे की प्रत्येक वस्तु पुराने ढग की थी। एक नया कालीन और दो नए सोफे ही मानो उस कमरे की सब शोभा थे। एक वृद्धा जिसका चेहरा हरिचरन से मिलता जुलता था और वे अवश्य ही उसकी माँ थी, एक सोफे पर बैठी, कोई धर्म ग्रथ पढ रही थी। उनके पाँव की आहट पा कर जैसे वे चौकी। सुरेन्द्र ने दोनो हाथ जोड़ उन्हे प्रणाम किमा। उन्होने मौन रह कर सकेत ही से उस प्रणाम का उत्तर दिया। चरन बोली—"मम्मी ये हैं सुरेन्द्र जिनकी मैंने आपसे चर्चा की थी। आप एक प्रसिद्ध लेखक है···।" और वह सुरेन्द्र की ओर देख कर मुस्कुरा दी। सुरेन्द्र ने फिर अपने दोनो हाथ जोड ममी को प्रणाम किया। वे बडे प्यार से बोली—"आओ बेटा आओ···" और उसे सोफे पर बैठ जाने का सकेत किया। फिर बोली—"अच्छे तो हो····?"

वह सामने एक सोफे पर बैठता हुआ बोला—"जी हाँ · बड़ी कृपा है भगवान की···"

हरिचरन "मै अभी आई" कहती हुई एक दूसरे कमरे मे चली गई।

ममी कहने लगी—"बेटा चरनी तुम्हारी बहुत प्रशसा करती है। वह तुम्हारी लेखनी पर मोहित है। पगली मुझे कहती थी, तुम इतने अधिक सादा और सिम्पल हो कि मै तुम्हे देखकर पहचान ही नही सकूँगी कि तुम एक उच्च शिक्षा प्राप्त प्रसिद्ध लेखक और कवि हो!"

सुरेन्द्र होठो मे मुस्कुरा दिया।

ममी ने पूछा—"तुम रहते कहाँ हो बेटा ···?"

उसने कहा—जमुना रोड पर ···"

ममी बोली—"जमुना रोड पर एक हमारे सरदार हरिजीत सिह है ···क्या तुम उन्हे · "

"जी वे तो मेरे पिता हैं ···!"वह बीच मे ही बोल उठा।

ममी खुशी से खिल उठी—"अरे बेटा मै तो तुम्हारी माता और पिता को अच्छी तरह जानती हूँ अरे तुम सरनु तो नही···?"

वह बोला—"सरनु यानि सुरेन्द्र ही हूँ ·· "

वे और भी प्रसन्न हुईं—"हाँ याद आया तब तुम छोटे से थे जब हम उस मुहल्ले मे रहते थे। और तुम हरिचरन के भाई से अक्सर झगडा करते थे। क्या तुम्हे अपना साथी निरजन याद है···"

"अच्छी तरह" वह बोला।

"तो तुम इस घर को कैसे भूल गए ···? तुम जब निरजन के साथ पढते थे, यहाँ हमारे पुराने घर मे एक दो बार आए भी थे !"

सुरेन्द्र कुछ याद करने लगा। फिर बोला—"हाँ ममी याद आया, जब निरजन मेरे साथ पढता था तब मै उसके साथ अक्सर आप लोगो

के पुराने घर आया करता था। शायद उन दिनो मे आप लोग पिछली गली मे रहते थे। तब हरिचरन छोटी थी।"

"हाँ हरिचरन निरंजन से छै वर्ष छोटी है, लेकिन उस से अधिक पढ लिख गई है।"

"मेरा और निरजन का साथ तो बस स्कूल तक ही रहा।"

ममी ने गहरी साँस लेकर कहा—"दसवी कक्षा मे फेल हो जाने के बाद तो उसने स्कूल का मुँह ही नही देखा था। उसके भाग्य मे पढना लिखना था ही नहीं।" फिर वे कुछ रुक कर बोली—"लेकिन बेटा वह अंग्रेजी बडे सपाटे की बोलता है। अपनी बहू तो बी० ए० पास है। उसने कहा था—"मै बी० ए० पास लडकी से ब्याह करूँगा मम ·" और हमने एक ऐसी ही लडकी ढूँढ निकाली।"

सुरेन्द्र मन ही मन बोला—"तब तो खूब जोड मिलाया है ममी ···" और वह ऊँचे स्वरो मे बोला—

"फिर क्या हुआ माँ जी, जो निरंजन पढ-लिख नही सका तो। वह ठेकेदार तो बन गया। लाखो के ठेके लेता है। ठीकरियो से पैसे बनाता है। कार है, बिल्डिगे हैं और भगवान की दया से सभी कुछ है ··। बडे-बडे पढे लिखे इस जमाने मे बेकार जूतियाँ चटखाते फिरते है ···कही उन्हे पाँच दस रुपये की भी नौकरी नही मिलती ···!" अचानक अन्दर से हरिचरन की आवाज आती सुनाई दी—"यह राम मुआ कहाँ गया, और आया कहाँ है ···?"

"वे ऊपर कोई काम कर रहे होगे ·· क्या बात है···?" ममी बोली।

"मेरा नेकलेस नही मिलता। इसी मेज पर तो रखा था ···"

"वही होगा—"कहकर ममी फिर सुरेन्द्र से सम्बोधित हुई—"बडी विचित्र लडकी है यह। हम इसे भी अपना लडका ही समझते हैं।

यह ठेकेदारी का काम भी देखती है और पढती भी है। कहती है एम० ए० पास करूंगी। एम० ए० पास कर लेना कोई आसान बात नही है बेटा"

"नही माँ जी ··" सुरेन्द्र ने संक्षेप मे उत्तर दिया। फिर ममी अचानक उस से पूछ बैठी—"अरे बेटा, हाँ यह तो बताओ तुम क्या काम करते हो। केवल यह कविता-कहानी ही लिखते हो या कुछ कमाई भी करते हो·· ?"

उसने कहा—"माँ जी कविता कहानी से गुजारा नही होता। अभी तक बेकार हूँ और किसी अच्छी नौकरी की तलाश मे हूँ !"

"तुम ठेकेदारी क्यो नही करते ·· "

ठेकेदारी करना हर एक के बस की बात नही माँ जी···इसके लिए एक बडी रकम चाहिये।"

इतने मे हरिचरन अपना परिधान बदल कर आ गई। सुरमई रग की साडी और ब्लाऊज मे उसका गेहुँआ रंग निखर रहा था। जैसे घटाओ मे कूँद उठने वाली बिजली हो। गले मे लटकता हुआ नेकलेस उसकी सुन्दरता को और बढा रहा था। वह आते ही बोली—"क्या बातें हो रही हैं ममी ···?',

सुरेन्द्र बोला—"आपकी प्रशसा हो रही थी।"

और चरनी ममी से बोली—नौकर है नही·· चाय कौन लाएगा ममी ·· !"

"मै स्वय लाती हू बेटी····।" कहती हुई ममी अपने स्थान से उठ खडी हुई।

"ओह ! इस घर के नौकर भी कितने अजीब हैं" चरनी खिझे हुए शब्दो मे बोली—"यहाँ एक भी काम का नौकर नही है।"

ममी कमरे से बाहर निकल गई। वह सुरेन्द्र से सम्बोधित हुई—"क्षमा कीजिएगा, आप को मेरा कितना इन्तजार करना पडा। ममी

की बाते सुनकर आप परेशान हो उठे होगे। वे बहुत बाते करने की आदी हैं। मुझे उनकी यह बात अच्छी नही लगती।"

सुरेन्द्र ने कहा—"मुझे तो उनकी बाते बहुत अच्छी लगी।"

"आश्चर्य है" उसने कहा—"ममी की बाते आपको दिलचस्प लगी। वरना हम तो इन की बातो से ऊब जाया करते है।

"मै किसी की बातो से नही ऊबता....."

चरनी अपने पालिश किए हुए नाखून देखने लगी। और कुछ क्षण पश्चात बोली—"आज मेरा शापिग का इरादा है। क्या आप मेरा साथ देगे ?"

सुरेन्द्र ने कहा—"जरूर आज मैने अपना समय आप ही को 'डिवोट' कर दिया है ! आपका जहाँ जी चाहे, मुझे ले जा सकती है !"

"मेरा सौभाग्य है यह....!" वह धीरे से बोली और फिर वे कल वाली बातो में खो गए !

३

उस समय दीवार की घडी लगभग छै बजा रही थी। और वे चाय पी रहे थे। सुरेन्द्र चरनी से सम्बोधित हुआ—"मिस चरन मुझे आपके भ ई, याने मुझे अपने मित्र के दर्शन नही हुए...क्या वे सध्या के समय कुछ देर से लौटते है...?"

चरनी बोली—"पिता जी और भैया एक काम से आसनसोल गए हुए हैं।"

उसने प्रश्न किया—"आप नही गईं··?"

वह बोली—"शायद आप यह नही जानते मिस्टर सिह कि मेरी भैया से बिल्कुल नहीं बनती—!"

कुछ गभीर होकर सुरेन्द्र बोला—"यह बात अच्छी नही।"

वह कहती गई—"मिस्टर सिह मै आपसे क्या कहूँ, मेरा और उनका स्वभाव बिलकुल नही मिलता। मुझे उनकी फिजूल खर्ची बिलकुल अच्छी नही लगती। वे किसी भी शुभ कार्य मे दो टके दान नही कर सकते। किन्तु यदि उनसे कोई कहे तो वे अपने क्लब की छत सोने से मँढवा दे··!"

सुरेन्द्र चुप सुनता रहा और चाय के घूँट निगलता रहा।

अचानक वह बात बदलकर बोली—"अरे नाश्ते की प्लेट आप के सामने रखी है और आप कुछ खा नही रहे।"

"नहीं! खा तो रहा हूँ"। कह कर उसने प्लेट मे से एक केक उठा लिया।

हरिचरन कौर कहने लगी—"भैया इतने फिजूल खर्च क्यो हैं, मेरी समझ में कुछ नहीं आता···"

"क्या आपकी भाभी उन्हे कुछ नही समझाती ···"

चरन धीरे से बोली—"वह क्या समझाएगी, वह तो निरी बुद्धू है···"

"किंतु मैंने सुना है वह ग्रेजुएट हैं ···बडी अच्छी बहू है। अभी अभी माता जी उसकी प्रशसा कर रही थी।"

"लेकिन मुझ से वह बहुत चिढती है। मै तो उसे फूटी आँख नही सुहाती।"

"आप उस गरीब पर रोब गाँठती होंगी, ठेकेदारनी जो ठहरी।"

सुरेन्द्र मुस्करा दिया। हरिचरन के होठो पर भी मुस्कान खेल

गई। वह अपने लिए चाय की एक और प्याली तैयार करने लगी। सुरेन्द्र ने देखा उस समय उसका चेहरा कली की तरह खिल रहा था। और उसकी आँखो मे एक विचित्र प्रकार की चमक दीप्तिमान थी। सुरेन्द्र उसके प्रत्येक हावभाव का बडी गभीरता से अध्ययन कर रहा था।

अचानक उसकी नजरे ऊपर की ओर जाने वाले जीनो की ओर घूमी और उसने देखा—"ऊपर की अतिम सीढियो के पास एक सुन्दर मूर्ति एरियल का सहारा लिये खडी है। और एकटक उनकी ओर देख रही है। एक क्षण के लिये उसने उसे गौर से देखा और फिर नजरे घुमा ली। एक प्रश्न उसके मन मे उठा, "यह कौन है ?" और फिर वह स्वयं ही सोचने लगा, अवश्य ही हरिचरन की भाभी होगी। और ठीक उसी समय चरनी के शब्दो ने उसे चौका सा दिया—"आप क्या सोचने लगे···?"

"कुछ नही !" उसके मुँह से निकला और मुँह से लगी चाय की प्याली उसने पिर्च मे रख दी।

चरनी कहने लगी—"लेखक महोदय, मुझे अब यह ठेकेदारी का काम अच्छा नही लगता। हर समय रुपया-पैसा और टेडर···कभी मजदूर और मिस्त्रियो के पीछे पडो और ओवरसीयर तथा इजीनियरो की खुशामद करो। यह ठेकेदारी का काम बडा ही बेढब है। मेरी पढाई मे हर्ज होता है।"

सुरेन्द्र बोला—"अरे हाँ यह तो मै पूछना ही भूल गया, आपकी स्टडी कैसी चल रही है···?"

"बस ऐसे ही हूँ" वह बोली—"दर्शन शास्त्र और इंगलिश मे तो गुजारा हो जाएगा, लेकिन हिंदी मे थोडी मुश्किल होगी···"

"कितने दिन रह गये परीक्षा मे···?"

"बस चार महीने।"

"केवल चार महीने····?"

"हाँ केवल चार महीने···आप मुझे हिंदी पढा दिया कीजिये···।"

सुरेन्द्र उत्तर मे हँस दिया !

चाय के बाद वे फिर कुछ देर के लिये बरामदे मे आ बैठे। हरीचरन ने सुरेन्द्र से पूछा—"आप मेरे साथ बाजार तक चल रहे हैं न··· ?"

सुरेन्द्र के मुँह से निकला—"जी हाँ !"

"अच्छा एक मिनट वेट कीजिये, मै ममी से कहती आऊँ, हम शौपिग के लिये जा रहे हैं····"हरिचरन उठकर अन्दर चली गई।

अभी उसे गए कुछ ही क्षण हुए होगे कि अन्दर से एक हृदय विदारक तीव्र चीख आती सुनाई दी। वह चौक सा गया। उसने अपना मुँह घुमा कर अन्दर की ओर झाँका। फिर एक अति तीव्र चीख सुनाई दी और वह शीघ्रता से अदर गया। उसने देखा, ममी और हरिचरन घबराई हुई सी एक कमरे से बाहर निकल रही हैं। ऊपर की मजिल से फिर एक चीख सुनाई दी, और साथ ही कुछ शब्द—बचाओ···बचाओ मुझे बचाओ·· ।" हरिचरन उसे देखकर बोली—"मिस्टर सुरेन्द्र जरा हमारे साथ आईये।"

वे सब फुर्ती से सीढ़ियाँ चढते हुये ऊपर की मंजिल में पहुँचे। वहाँ एक सजे सजाये कमरे में, जहाँ हल्की-सी रोशनी फैल रही थी, एक पलंग पर एक देवी; सुरेन्द्र ने पहचान लिया यह तो वही मूर्ति थी, जिसे कुछ देर पहले सीढियों के ऐरियल से लगे खडे देखा था, अब अर्द्ध मूर्छित अवस्था मे बेढगे तरीके से पडी हुई थी। उसकी साडी उसके शरीर से बुरी तरह ढलकी हुई थी। उसका चेहरा सुर्ख हो रहा था। ममी उसकी यह दशा देख जोरों से चीखीं और शीघ्रता से उसकी ओर बढीं। पास एक स्टूल पर रखे हुए काँच के जग में से पानी लेकर उसके मुँह पर छीटे मारने लगी। चरनी उसके वस्त्र ठीक करने लगी। सुरेन्द्र ने ममी का हाथ बँटाया। और वे सब उसे होश मे लाने का

प्रयत्न करने लगे। हरिचरन उस देवी को झिझोडती हुई बोली—"भाभी ··भाभी—क्या हुआ तुम्हे ?"

भाभी ने आँखे खोली, और भयातुर दृष्टि से एक नजर अगल-बगल देखा। और फिर उसकी नजरे एक कोने मे गड गई। उसके मुँह से फिर एक हल्की सी चीख निकली। सब की नजरे उसी ओर घूम गईं। वहाँ एक भयानक सूरत वाला आदमी, जिसके सिर के बाल कुछ बिखरे हुए थे और चेहरे पर वहशत नाच रही थी, कोने मे दुबका खडा था। ममी उसे देखते ही फट पडी—"मुए शैतान···तू यहाँ ?" और आगे बढकर उसने दो-चार थप्पड उसके मुँह पर जड दिये। वह बदसूरत आदमी पत्थर की तरह अडिग खडा रहा। ममी गुस्से मे कहती गई—मै तेरी आँखे फोड दूंगी बेशर्म कमीने····और फिर उसे हाथ से पकड कर घसीटती हुई बाहर ले जाने लगी। नौकर ने भी ममी का साथ दिया। ममी बोली—"सुरेन्द्र बेटा तुम भी आओ। इसे नीचे ले चलें।"

सुरेन्द्र भी साथ हो लिया। वे सब उसे खीचते हुये नीचे की मजिल मे ले आये। और गुसलखाने के निकट एक कमरे मे बद कर दिया। जब तक उसे घसीट कर लाया जा रहा था, वह बिलकुल मौन था। जब उसे चाँटे लगा रहे थे, तब भी वह मौन था। लेकिन ज्यो ही उसे कमरे मे बंद किया गया वह बेतहाशा अट्टहास करने लगा। और शायद कमरे मे रखी वस्तुएँ भी उठा-उठा कर फेकने लगा। वस्तुओ के टूटने का स्वर बाहर सुनाई दे रहा था। हरिचरन ममी के आँचल से आँखे पोछती हुई उस स्थान से हट गई। सुरेन्द्र भी यहाँ से हट कर बाहर बरामदे मे आ बैठा। जो रहस्यमयी घटना अभी घटी थी, वह उस पर विचार करने लगा। कुछ बात उसकी समझ मे आ रही थी और कुछ नही। किंतु यह सब कुछ उसके लिए आश्चर्यजनक था।

कुछ देर बाद हरिचरन कौर आ गई। वह क्षमा याचना करती हुई बोली—क्षमा कीजियेगा अकारण हमे देर हो गई, चलिये अब चले ··"

सुरेन्द्र ने कहा—आप कुछ परेशान मालूम होती हैं। थोडा आराम कर लीजिये।

"नही ऐसी कोई बात नही।" वह बोली—"चलिये अब चलें···हमे पहले ही काफी देर हो गई है···"

वे दोनो बाहर सडक पर आगये। वे शौपिग के लिये पैदल ही जा रहे थे।

वे कुछ दूर तक मौन किन्ही विचारो मे खोए से आगे बढते गये। फिर सहसा सुरेन्द्र ने प्रश्न किया—"वह पागल था कौन जो आपकी भाभी के कमरे मे घुस आया था···?"

"पागल ···और कौन···?" वह धीरे से बोली।

"नही फिर भी कुछ तो होगा ··कौन है वह···?"

"मेरे सबसे बडे भैय्या.....!"

"कब से पागल है ?"

'तब से, जब इन्हे अमृतसर मे एक मुसलमान लडकी से प्रेम करने का भूत सवार हुआ था।"

"फिर क्या हुआ—क्या तुम्हारे भाई इस प्र म मे असफल रहे....?"

"लडकी और लडकी की माँ राजी थी। किन्तु हमारे और लडकी के पिता राजी न हुये !"

"और उसी शोक ने इन्हे पागल बना दिया...है न—?"

"जी हाँ !" वह कुछ रुककर बोली—"मर्द न जाने स्त्रियो के पीछे पागल क्यो हो जाया करते हैं।"

"मर्दों ही को इतना कमजोर न समझो। कभी स्त्रियां भी पुरुषों के पीछे दीवानी हो जाया करती हैं।"

"होती होंगी ! ऐसी स्त्रियां, जिन्हे पुरुषो की साईक्लोजी का ज्ञान नही।"

"हाँ बेचारी सब स्त्रियो को मनोविज्ञान पढ़ने का अवसर नही मिलता शायद इसीलिये . " सुरेन्द्र हल्का सा व्यग कर बोला—"आपके घर वाले आपके बडे भय्या का ब्याह क्यो नही कर देते...?"

"कितनी बार करे···" वह कुछ निराशा पूर्ण शब्दो मे बोली—"दो बार तो कर चुके है ··पहले ब्याह की स्त्री ने जहर खाकर आत्म-हत्या कर ली थी। दूसरी मैके गई और लौट कर नही आई। उसने पागल के साथ रहने से इन्कार कर दिया। लोग समझ गए है, मेरे भैया पूरे पागल हो चुके है। कौन अपनी लडकी ब्याहेगा इनके···?"

"आप लोग इलाज के लिए इन्हे राँची क्यो नही भेज देते ?"

"छोटे भैया नही मानते।"

"क्यों···?"

"वे कहते हैं वडे भैया वहाँ बेमौत मर जायेंगे।"

"और यहाँ···"

हरिचरन कुछ क्षण मौन रह कर कहने लगी—"वह तो अच्छा हुआ, जो भैया यहाँ नही थे, वरना वे इन्हे शूट ही कर देते।" और फिर वह बात बदल कर बोली—छोडिये इन बातो को। मै तो घर के इस वातावरण से बिल्कुल तग आ चुकी हूँ, इसीलिये मैं ठेकेदारी के कामो मे भाग लेने लगी हूँ। मैं तो इस जीवन से ऊपर उठना चाहती हूँ। पर घर की बाधाये मुझे निरुत्साह कर देती है। इसीलिये मुझे हमेशा एक ऐसे साथी की आवश्यकता रहती है जिसका मुझे सहयोग मिल सके···।"

सुरेन्द्र ने कहा—निरुत्साह होने की आवश्यकता नही। बाधाएँ सब का पथ रोका करती हैं···।"

हरिचरन बोली—"मिस्टर सुरेन्द्र मै आपसे मिल कर बहुत खुश हूँ···आपको इसका विश्वास करना पडेगा।"

"यह मेरा सौभाग्य है।" सुरेन्द्र ने कहा। और फिर वे कुछ सोचते हुए से मौन आगे बढ़ने लगे।

उस दिन शौपिग के बाद, सुरेन्द्र हरिचरन के साथ फिर घर लौट आया। उसके अनुरोध पर रात का भोजन भी उसने उनके यहाँ किया। लेकिन न जाने क्यो वहाँ से विदा होते हुये वह अपने आप मे एक अप्रसन्नता सी अनुभव कर रहा था। उसके मन मे असतोष और क्षुद्रता के भाव समाये जा रहे थे। रह-रह कर उसे ममी और चरन की बाते याद आ रही थी। उसके पागल भाई के कहकहे उसके मस्तिष्क मे गूँज रहे थे। उसने उस एक घर मे कई प्रकार के विचित्र चेहरे देखे थे। उनका स्वभाव और उनकी बातें ही निराली थी। उनका वास्तविक रूप कृत्रिमता के नकाबो से ढँका हुआ था, वरना वे सब बडे ही बदसूरत थे। उनके चेहरो पर कोई आकर्षण और सौन्दर्य नही था। उनकी साँसो से मुरझाये हुये फूलो की बू जैसी महक आती थी। उनके घर मे कारोबार की बाते और रुपयो की छनछनाहट सुनाई दे सकती थी, किन्तु कला और विज्ञान की चर्चा बिल्कुल नही। वहाँ जाकर मन बरबस विकारो, भ्रम और अंत मे पश्चाताप मे खो जाता था। किन्तु आनद की वस्तु का प्राप्त होना कठिन था।

वहाँ से विदा होते हुये वह दूसरे दिन फिर वहाँ आने का वचन देता आया था। ममी के अनुरोध पर तो उसने उन्हे पूरा विश्वास दिला दिया था कि वह अगले दिन उनके दर्शन अवश्य करेगा। किंतु घर पहुँचते ही उसने यह निश्चय कर लिया था कि अब दोबारा वह उनके घर मे प्रवेश नही करेगा। क्यो कि उस घर मे आदमियो की अपेक्षा भूत रहते हैं।

और अपने इसी निश्चयानुसार दूसरे दिन वह सचमुच उनके यहाँ

नही गया। शायद ममी और बिशेप कर हरीचरन को उसका इन्तजार रहा होगा। हरिचरन अचानक उसके मन से कुछ उतर गई थी। वह हरिचरन जो सदैव नई-नई बाते सोचने की आदी थी। जिसका मस्तिष्क कभी घरो के नये-नये प्लान बनाता, और कभी कल्पना के ताजमहल घडता था। कभी वह ठेकेदारी और रुपयो की बात सोचती थी और कभी साहित्य और काव्य की। उसमे कुछ विशेषताएँ थी अवश्य, किंतु सुरेन्द्र के पास उनका कोई महत्व नही रह गया था। उसने निर्णय किया वह उसे अपने मन से निकाल देगा। इसलिये वह उससे अगले दिन भी उसके यहाँ नही गया। फिर तीसरा, चौथा, पाचवाँ और छटा दिन बीत गया। इसी प्रकार सप्ताह। वह उनके यहाँ बिल्कुल नही गया। इस बीच हरिचरन भी उसे कही नजर नही आई। वह स्वय उसकी नजरो से बचता रहा।

ठीक एक सप्ताह बाद वह अपने भाई के घर गया। वह प्राय. उनके यहाँ आया-जाया करता था। अपना घर था और उसकी अपनी भाभी शैल से खूब निभती थी। शैल की बातो का उसके मन पर बडा सुन्दर प्रभाव पडता था। जब कभी उसकी तबियत उदास हो, उसका चित्त अप्रसन्न हो, वह शैल भाभी की बाते सुनता। वे कुछ धार्मिक विचारो की थी। सुरेन्द्र का आदर करती थी, और इसी आदर और दुलार की बातो मे वह अक्सर अपनी परेशानी भूल जाता।

उस दिन वह एक लम्बे अरसे के बाद उनके यहाँ गया था। शैल ने उससे इतने दिनो बाद आने की शिकायत की। उत्तर में कुछ बहाने तराशे, कुछ सच कहा और कुछ झूठ। फिर स्पष्टवादी हो पिछले हफ्ते की चरनी से भेट की कहानी कह सुनाई। शैल उन्हे पहले से जानती थी। सन्तोप पूर्वक उन्होने सारी बाते सुनी। और फिर हँस दी। कुछ देर बाद वे गभीर मुद्रा मे खो गईं।

उनके चेहरे के भाव देखकर सुरेन्द्र बोला—"आप क्या सोचने लगी भाभी···?"

वे धीरे से बोली—"कुछ नहीं भैया कुछ नही" और फिर कुछ रुक कर बोली—"सोचती हूँ वे लोग काफी अमीर हैं, और हम लोग उनके मुकाबले मे कुछ नही। महलो मे छोटे चिरागो की रोशनी मंद पड़ जाया करती है।"

"हाँ भाभी यह तो सच है···" वह बोला—"चिराग तो झोपडो ही मे जला करते है···और या नही तो फिर समाधियो पर···"

"ऐसा न कहो।" जैसे समाधि शब्द से उन्हे दु ख पहुँचा। और फिर कुछ सोच कर बोली—"तुम्हारी सुषमा से कभी भेट हुई है सुरेन्द्र ?"

'सुषमा' वह कुछ सोचकर बोला—"यह शब्द मैने बहुत बार सुना है भाभी।"

"लेकिन कभी देखा नही···है न।"

"नही"

"तुम्हे याद होगा जब हमारे यहाँ माता जी का श्राद्ध हुआ था और उस दिन मैंने तुम्हारा एक लडकी से परिचय कराया था, वह एक शर्मीली और दबे स्वरो में बोलने वाली खामोश किस्म की लडकी···।"

"जानता हूँ भाभी...।" वह मुस्कराकर बोला।

"वह झोंपडो में रहने वाली लडकी है। और झोपडो मे दीपक का प्रकाश अच्छी तरह फैल जाया करता है।"

सुरेन्द्र की आँखो के सामने सुषमा का पूरा चित्र खिच गया। वह सोचता रहा, सुषमा को देखा तो है। बहुत बार उसे देखा है। वह शायद आर्क रोड मे रहती है।

भाभी बोली—"वह आज यहाँ मेरे पास आने वाली है। आज फिर तुम्हारा परिचय करा दूँगी"

"अच्छा।" उसके मुँह से निकला और पास टेबल पर पड़ी एक पत्रिका के पृष्ठ उलटने लगा।

शैल भाभी ने उससे प्रश्न किया—"सुरेन्द्र तुम चरनी के यहाँ क्यो गये थे ···?"

"ऐसे ही मित्रता के नाते···" उसने उत्तर दिया।

"उन्हे घर मे एक क्लर्क की जरूरत है। जो उनकी चिट्ठियो और ठेकेदारी के कागजो की देखभाल कर सके ·····क्या तुम यह काम निभा सकते हो ···?"

"मुझे तो इस काम से सख्त नफरत है भाभी ···"

"भई उन्हे तो एक ऐसा ही आदमी चाहिये···"

"इस काम के लिये तो वे काफी नौकर रख सकते हैं।"

ऐसे कामो के लिये वे नौकर नही रख सकते, घर के आदमी से ही काम लेना उचित समझते हैं। चरनी का बडा भाई पागल है, उससे छोटा अधिक शिक्षा प्राप्त नही। चरनी स्वय सारा काम नही कर पाती ·· और उसे एक सहायक क्लर्क या प्राईवेट सेक्रेटरी की आवश्यकता है, और शायद तुम यह सब बनना पसन्द न करो···"

"मुझे उनसे कोई दिलचस्पी नही भाभी····· " सुरेन्द्र रुखाई से बोला—"छोडिए उनकी बाते ·····"

और भाभी चरनी के पागल भाई की बाते करने लगी। उन्होने कहा—"सुरेन्द्र उस घर मे तुम्हारा गुजारा कभी नही हो सकेगा! तुम ने वहाँ एक पागल तो देखा ही होगा! वह चरनी का बडा भाई, वास्तव मे वह उतना अधिक पागल नही है, जितना कि बना दिया गया है। यदि वह पागल साबित न किया जाए तो आगे चल कर वह भी छोटे भाई की तरह बाप की जायदाद का हकदार बन सकता है। इस लिये वह छोटे भाई द्वारा जान बूझकर पागल बनवाया गया है। उस घर मे एक नही कई पागल बसते हैं! पागलो की दुनिया मे तुम्हारा गुजारा नही हो सकता।"

भाभी की यह बाते भी उसे अच्छी न लगी और वह बोला—"भाभी भगवान के लिये यह बाते बन्द कीजिये वरना मै उठ कर चला जाऊँगा····· !"

वे हँस दी ! "क्या बाते कडवी लग रही है ! और जाओ उनके यहाँ ·· ···"

"छोडो भाभी इन बातो को बन्द करो ·· ·· !"

और तब वे घर की बाते करने लगी। बोली—"परसो चाची यहाँ आई थी ! वे तुम्हारे ब्याह के लिये चिन्तित है। उनका विचार है, तुम्हे अब अपनी शादी करा लेनी चाहिये !"

सुरेन्द्र बोला—"भाभी मै अक्सर सोचा करता हूँ, मै इससे इतना दूर क्यो भागता हूँ और कभी मै बडी गम्भीरता से सोचने लगता हूँ कारण··· ! कारण कोई समझ मे नही आता। कभी जो इस विषय पर बहुत गौर करता हूँ तो अपने आप मे जो बात समझ मे आती है··· उससे यही पता चलता है कि, जैसी वस्तु या सग मै चाहता हूँ वैसा मिलता नही। और जो मुझे मिल जाता है, वह मुझे प्रिय नही लगता ··· मेरी मजिल कहाँ है, यह मै खुद नही जानता। इसलिये शादी-ब्याह की बात भी अच्छी नही लगती·····!"

भाभी बोली—"यह तुम्हारी कमजोरी है···"

वह सुनकर चुप रह गया !

उस दिन वह शैल के यहाँ काफी देर तक बैठा रह गया····कई प्रकार की बाते होती रही ! और जब घर जाने के लिये कुर्सी पर से उठा, घड़ी नौ बजा रही थी। ठीक उसी समय एक प्रश्न उसके मन मे उठा—"सुषमा ···नही आई····?" सुषमा जिससे उसका कोई परिचय नही ·····कोई लगाव नही····क्यों उसका विचार मन मे उठा ·····। वह शैल भाभी से आज्ञा लेकर वहाँ से विदा हुआ।

वह तारकोल की बनी उस लम्बी-काली सड़क पर चुपचाप माथा झुकाए चला जा रहा था, जो कुछ दूर जा कर·····आर्क रोड से मिल जाती थी। आर्क रोड पर सुषमा का मकान स्थित था। उस घर के सामने से होकर वह कई बार गुजरा है······किन्तु उस दिन उस ओर गुजरते हुए एक विशेष आनन्द प्राप्त हो रहा था।

५

●●●

सयोग से उन दिनो स्थानीय कालेज का वार्षिक उत्सव हो रहा था, और इसी सम्बन्ध मे एक—कवि सम्मेलन भी आयोजित किया गया था। उस कवि सम्मेलन मे स्थानीय कवियो के अतिरिक्त, बाहर के भी कुछ कवि शामिल हुए थे। अनेकों नए, पुराने, प्रसिद्ध तथा अप्रसिद्ध कवियो ने अपनी अपनी रचनाएँ पढी। सुरेन्द्र की बडी वाह-वाह रही। वह बहुत खुश था। उस दिन जब उसने एक स्थानीय कवि प्रेमी जी के मुख से सुषमा की कविता सुनी तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही। सुषमा काफी सुन्दर कविता कर लेती है, यह अनुभव कर उसे और भी प्रसन्नता हुई। सुषमा स्वय स्टेज पर नही आई थी, और महिलाओ की प्रथम पक्ति में बैठी, लोगो की वाह-वाह और प्रशसा से कुछ मुस्करा और शरमा रही थी।

जब कवि सम्मेलन समाप्त हुआ, सुरेन्द्र स्वयं सुषमा से मिला और उसने उसकी कविता की जी खोल कर प्रशंसा की। सुषमा खिल उठी। ये सब उसके चेहरे का रंग बतला रहा था। किन्तु वह मुँह से धन्यवाद के अतिरिक्त और कुछ नही बोली। और उसकी निगाहे झुकी रही।

सुरेन्द्र ने कहा—"मैंने शैल भाभी के मुँह से तुम्हारी बहुत तारीफ सुनी थी। किन्तु इसका तो आज ही अनुभव हुआ कि तुम इतनी सुन्दर कविता कर लेती हो ·!"

तब वह धीरे से बोली—"यह सब आपकी कृपा-दृष्टि है। वरना मैं जो कुछ हूँ, वह स्वय अच्छी तरह जानती हूँ·····मुझे शर्मिन्दा न कीजिये।"

"नही तुम्हे अपने ऊपर विश्वास होना चाहिए।" सुरेन्द्र ने कहा, "मुझे तुम्हारी कविता सुनने का लोभ बढ गया है ·· फिर कभी अवसर मिला तो तुम्हारी सारी कविताएँ जी भर कर सुनूँगा।"

"यह एक अजीब सी बात होगी।" सुषमा हँस कर बोली!

फिर सुरेन्द्र ने बात का रुख बदलते हुए कहा—"शैल भाभी तुम्हारी बहुत प्रशसा करती है! पिछले बुध के दिन वे तुम्हारा इन्तजार करती थी। तुम आईं नही···!"

"मुझे एक आवश्यक काम पड गया था।" इसका मुझे खेद है। यदि आपका उस ओर जाना हुआ तो कृपया उनसे कह दीजियेगा, मैं अगले इतवार को जरूर आऊँगी।"

"कह दूँगा···" उसने कहा—"और वे तुम्हारा इन्तजार करेगी।"

इतने मे प्रेमी जी एक ओर से निकल आए! और वे अपनी गरजती आवाज में बोले—"हैलो मिस्टर सुरेन्द्र, मैं आपको अन्दर हाल मे ढूँढ रहा था।" ओर फिर सुषमा की ओर देखते हुए बोले—"ओहो! तुम भी यही हो···? क्या बाते हो रही हैं भाई···!"

"कुछ नही ··" सुरेन्द्र ने कहा—"कहिये क्या बात है····?"

अब घर चलना है या नही पहले यह कहिये···? चलिये रास्ते मे बाते करेगे ···आप से कुछ जरूरी बाते करनी हैं ···!"

सुरेन्द्र सुषमा से सम्बोधित हुआ—"अच्छा हम फिर मिलेगे

शैल भाभी ही के यहाँ। मैं तुम्हारा संदेशा कल ही उन तक पहुँचा दूँगा। अच्छा विदा !"

वह सुषमा से विदा हो प्रेमी जी के साथ हो लिया। प्रेमी जी ने उस से पूछा—"क्या सुषमा से आप पूर्व परिचित हैं मिस्टर सुरेन्द्र !"

"हाँ" उसने दबे स्वरो मे कहा। और फिर ऊँचे स्वरों में बोला—"सुषमा बहुत अच्छी कविता करती है प्रेमी जी, और उस पर आपका मधुर कठ से उसकी कविता का गायन करना, उसकी सुन्दरता मे चार चाँद लगा देता है।"

प्रेमी जी बोले, "मैं स्वय उसका मुक्त कठ से प्रशसक हूँ मिस्टर सुरेन्द्र · बडी बेपरवाह और पगली लडकी है ! मैं इसे बहुत दिनो से जानता हूँ।" प्रेमी जी को मानो इस बात का गर्व था।

फिर वे कुछ क्षणो तक मौन आगे बढते रहे। सुरेन्द्र को अभी हाल ही मे इस बात की भनक मिली थी कि प्रेमी जी को उसके प्रति कुछ असतोष है और कुछ शिकायते भी। इस लिये वह प्रेमी जी के मुँह से वह शिकायते सुनने के लिये उत्सुक था। इसीलिये वह मौन था, और चाहता था प्रेमी जी कुछ बोले।

प्रेमी जी एक अमीर घर के लडके थे। उन्हे लिखने-पढने का बडा शौक था। अपनी पुस्तके स्वय छापते थे। अभी-अभी उन्होने अपनी कुछ कहानियो का सग्रह छापा था। चाहते थे सुरेन्द्र जरा उसकी जोरदार आलोचना करदे। इसके लिये वे उसे कुछ रकम भी देने को तैयार थे। लेकिन सुरेन्द्र ने कई बहानो से इन्कार कर दिया था, उसे शक था, शायद प्रेमी जी उसी सम्बंध मे, उससे कुछ बाते करना चाहते थे। इस लिए कुछ देर मौन रह कर वह स्वयं ही उनसे सम्बोधित हुआ—"प्रेमी जी कोई नई बात सुनाईये। आप बिल्कुल चुप हैं ?"

"क्या सुनाऊँ ··प्रेमी जी बोले—आप से मैं कुछ पूछना चाहता था।"

बोलिये···।" सुरेन्द्र ने कहा।

तब प्रेमी जी जैसे कुछ साहस बटोर कर बोले—"क्या मिस्टर सुरेन्द्र आपको यह शिकायत है कि मेरी कहानियाँ स्केस पर हुआ करती हैं। याने मौन भावना से पूरित····क्या एक मनुष्य अपने आप को मौन भावना से मुक्त रख सकता है···क्या पुरुष और नारी का सम्बध पारिवारिक जीवन का एक विशेष अग नही है···।?"

सुरेन्द्र ने कहा—"इससे किस को इन्कार हो सकता है प्रेमी जी। जिसने जीवन को जितना देखा है, उसके लिए यह विषय उतना ही स्पष्ट हो पाया है। पुरुष का नारी के साथ सम्बन्ध तो वेश्यालयो मे भी होता है। सोसाइटी गर्ल्स के साथ भी होता है और फिर सिनेमा एक्ट्रेस के साथ भी। हमारी आँखो को उनकी जिन्दगी का कौन सा पहलू या अग नजर आता है, हमे इस पर भी गौर कर लेना चाहिये। और जब हम इस विषय पर कलम उठाएँ, हमे विषय वस्तु का अच्छी तरह अध्ययन कर लेना चाहिये। जीवन मे सेक्स ही प्रधान नही और भी बहुत कुछ है जिन्ह हम बाहर और अतर की आँखो से अच्छी तरह देख सकते हैं।"

प्रेमी जी ने सफाई मे कहा—"मेरी कहानियो मे आप सत्य और यथार्थ पाइयेगा।"

"सत्य के प्रति तो आपका भ्रम है प्रेमी जी···"सुरेन्द्र ने कहा—"जहाँ तक यथार्थ की बात है, तो निवेदन करूँगा कि यथार्थ की भी सीमा होती है। किसी भी यथार्थ मे हमे यह भी देखना होता है कि इसमे रचनात्मक अंश कितना है।"

"तो क्या आपको मेरी कहानियों मे केवल ध्वंसात्मक अंश अधिक मिलता है?"

"मैं तो एक साधारण बात कर रहा हूँ प्रेमी जी, आपकी आलोचना नहीं कर रहा।" वह बात दबाते हुए बोला—"मुझे यह पता चला था कि आपको मुझ से कुछ शिकायते हैं। और आप मुझ से कुछ असन्तुष्ट

थे, इसलिये मैंने अपने निजी विचार आपके सामने रखे ताकि आप इसकी रोशनी मे वे सारी बाते समझ जाएँ जो मै आप से कहना नही चाहता। और शायद अब आपको मुझ से कोई ऐसी शिकायत नही रहेगी कि मै पीठ पीछे आपकी निन्दा किया करता हूँ!"

"मै आपकी स्पष्टवादिता का कायल हूँ मिस्टर सुरेन्द्र ····" प्रेमी जी बोले—मै आपको अपना मित्र समझता हूँ, और आपसे पीठ पीछे निन्दा की आशा नही रखता। खैर जाने दीजिये इन बातो को···" वे कुछ रुक कर बोले—आप यह जान कर खुश होगे कि मै अपना एक नया उपन्यास—'नगा यौवन' सुषमा के नाम अर्पित करने जा रहा हूँ···"

सुरेन्द्र को यह बात सुनकर कुछ आश्चर्य हुआ। सुषमा का प्रेमी जी से इतना अधिक मेल-जोल बढ चुका है और वह उनके इतना निकट आ चुकी है कि 'नगा यौवन' पर अपना नाम छपवाने को तैयार हो गई। यह 'नगा यौवन' है क्या ·· ? क्या सुषमा ऐसी कहानियो और उपन्यासो से रुचि रखती है, क्या उसे नंगी कहानियाँ अच्छी लगती है···? शैल भाभी तो उसके स्वभाव और आचार-व्यवहार की बहुत प्रशसा करती थी·· लेकिन प्रेमी जी क्या बोल रहे है ·· नगा यौवन··· और सुषमा ···नगा यौवन···क्या इन दोनो मे कुछ भी अन्तर नही···?

प्रेमी जी की बात का उसने कोई उत्तर नही दिया और मौन चलता रहा। और जब वे एक दोराहे के निकट पहुँचे, प्रेमी जी 'नमस्ते' कह कर उनसे बिदा हो गए। जाते हुए कहते गए—देखिये मिस्टर सुरेन्द्र, मेरी बातो का कोई ख्याल न कीजियेगा। आप मेरे मित्र है और हम सदा एक रहेगे ····!"

सुरेन्द्र उन्हे विश्वास दिलाते हुए बोला—"नही ऐसी कोई बात नही ··।"

फिर वह विचारों मे खोया सा घर की ओर बढता जा रहा था। वह सोच रहा था, जो भी मेरे सम्पर्क मे आता है, समस्या बन कर आता है। न जाने यह दुनिया कैसी है और इस दुनिया के लोग···! और फिर वह सोचने लगा, यह धरती भी बडी अजीब है। कही गढे, कही नाले, कही नदी, कही समुद्र और कही पहाड। मनुष्य अपनी सुविधा के लिये नगर ग्राम और कस्बे बना लेता है। और उनमे ऐसी कच्ची-पक्की सड़के भी, जिन पर बडे आराम से चला फिरा जा सकता है···लेकिन मनुष्य अपने वातावरण को अपनी इच्छा के अनुसार नही ढाल पाता।

वह विचारों मे लिप्त घर की ओर चला जा रहा था। सडक पर केवल इक्के-दुक्के आदमी चलते-फिरते दिखाई दे रहे थे। और हर ओर बिल्कुल खामोशी छाई हुई थी। लेकिन हवा से काँपने वाले पेड के पत्तों का शोर गूँज रहा था···!

६

एक प्रकार की इस घटना को तीन दिन बीत गए। यह तीन दिन सुरेन्द्र ने विचित्र दुविधा में बिताए। सुषमा उसे एक विचित्र लड़की मालूम देती थी, जो शायद देखने में खामोश थी, पर अन्दर से ज्वालामुखी प्रतीत होती थी। प्रेमी जी के मुँह से उसकी प्रशसा और पुस्तक

के अर्पण की बात सुन कर वह उसके बारे में बहुत कुछ सोचने के लिए मजबूर हो गया।

दूसरे इतवार को वह भी सध्या के समय शैल भाभी के यहाँ पहुँच गया। सुषमा वहाँ पहले ही से मौजूद थी। वहाँ उनकी आपस मे खूब बाते होती रही, जिसमे एक दूसरे का विशेष परिचय, प्रशंसा और सराहना भी शामिल थी। जब सुषमा शैल से विदा हो घर लौटने लगी, रात के आठ बज रहे थे। शैल ने सुरेन्द्र से कहा कि वह उसे अपने साथ घर छोडता जाए।

और जब वे घर से निकल कर बस स्टेंड की तरफ आ रहे थे। सुरेन्द्र उस से बोला—"तुम ने सुन लिया न सुषमा, शैल भाभी तुम्हारी कितनी प्रशसा करती हैं ?"

"वे आप की तारीफ कुछ कम नही करती ··सुषमा कुछ मुस्कराती हुई सी बोली।

सुरेन्द्र ने कहा—"तुम सचमुच प्रशसा के योग्य हो।"

"आप मुझे लज्जित कर रहे है।" वह धीरे से बोली।

"नही मैंने जो देखा, सुना और अनुभव किया है, वही कह रहा हूँ।" सुरेन्द्र ने कहा—"प्रेमी जी भी तुम्हारी काफी चर्चा करते हैं···।

"उनकी तो यह आदत है····सुषमा कुछ रुखाई से बोली—वे कही भी हों, मेरी चर्चा करते ही रहते हैं···।"

"एक बात है····"सुरेन्द्र ने कहा—वह मै तुमसे पूछना चाहता हूँ। यद्यपि मुझे ऐसी बात पूछने का कोई अधिकार नही, किंतु एक मित्र और शुभचिंतक के नाते मे यह पूछ भी सकता हूँ; शायद तुम बुरा नही मानोगी ···"

सुषमा ने कहा—"एक छोड दस प्रश्न कीजिये, क्या मै आपकी बात का बुरा मान सकती हूँ ··!"

उसने प्रश्न किया—"प्रेमी जी से तुम्हारा परिचय कब से है ··?',

"थोडे ही दिनो से···"वह बोली—एक बार एक सहेली द्वारा उनसे भेंट हुई थी !"

"तब उनसे तुम्हारा काफी पुराना परिचय है···"

"नही ऐसा कोई विशेष परिचय नही···" सुषमा ने कहा—पर मुझे यह मालूम नही था कि आप भी प्रेमी जी के मित्र हैं · !"

वह बोला—मेरी उनसे क्या मित्रता हो सकती है। वे ठहरे बडे लोग ··वे काफी पैसे वाले हैं ··और मै ठहरा एक गरीब और बेकार आदमी ! हाँ मेरा भी तुम्हारी तरह उनसे कुछ परिचय जरूर है ··"

सुषमा बोली—"लेकिन उन्होने आपकी चर्चा मुझ से कभी नही की "

सुरेन्द्र ने हस कर कहा—"इसकी प्रेमी जी ने कभी आवश्यकता अनुभव नही की होगी।"

सुषमा मौन रह गई !

सुरेन्द्र मन मे बोला। मै ही एक ऐसा आदमी हूं जो अपना परिचय बिन चाहे ही किसी को दे दिया करता हूं। कोई मुझे देखना या जानना चाहे या न चाहे, लेकिन मै पागलो की तरह बकता रहता हू, देखो यह मै हूँ···यह है मेरा रूप और यह है मेरी बाते !" कुछ कदम चलने के बाद उसने मौन भग किया और बोला—सुषमा प्रेमी जी एक कथाकार और उपन्यासकार हैं, यह तो तुम अच्छी तरह जानती होगी ··"

"हाँ बहुत अच्छी तरह · " सुषमा बोली

"वे मुझ से नाराज हैं···" सुरेन्द्र ने धीरे मे कहा।

"क्यो···?" जैसे सुन कर उसे कुछ आश्चर्य हुआ।

"मुझे उनके विचार पसद नही·· उसने कहा—और वे मेरे विचारो से सहमत नही···"

सुषमा ने पूछा—तो इसमे झगडे की क्या बात है···?"

"कुछ भी नही ··"सुरेन्द्र ने सक्षेप मे कहा—कोई व्यक्ति अपनी आदत से मजबूर होता है···"

सुषमा को यह बात सुन कर दुख हुआ। वह धीरे से बोली—यह बात अच्छी नही···"

सुरेन्द्र इस विषय पर उससे और कुछ नही बोलना चाहता था। इसलिए मौन रह गया। किन्तु वह ऐसा कुछ अनुभव करने लगा। सुषमा प्रेमी जी के प्रति मन मे कुछ श्रद्धा अवश्य रखती है। और इन बातो का उस पर कोई सुन्दर प्रभाव नही पडा। इसलिये यह मोटर के अड्डे तक उसी प्रकार चुप चलता रहा। उसका विचार था, बस पर चढ चुकने के बाद इस बात का स्वय ही अंत हो जाएगा। और प्रेमी जी की चर्चा रुक जाएगी। पर जब वे बस-स्टेड पर पहुचे, बस छूट चुकी थी। वे सोचने लगे अब क्या किया जाए! रात अंधेरी थी। और वर्षा के दिन। आकाश पर बादल छाए हुए थे। किसी समय भी पानी बरस सकता था। निदान वे पैदल ही चल पडे। तब उनका आपस मे चुप रहना कठिन था। वे दोनो आपस की बातो मे खो गये! वही एक दूसरे की प्रशसा थी और सराहना। जैसे उनका दूर का परिचय उस दिन बहुत निकट हो गया था। सुषमा को जैसे पहली बार बहुत खुल कर बाते करने का अवसर मिला था। वह चहक-चहक कर बाते कर रही थी। वह कह रही थी—मै आपको आज से नही बहुत पहले से जानती हूँ···बहुत पहले से···"

"वह कैसे ···? सुरेन्द्र ने पूछा!"

"आपकी शैल भाभी मुझे आपके बारे सब कुछ बताती रही है ·· अब से नही बल्कि लगातार तीन वर्षो से···"

"किन्तु उन्होने तुम्हारे बारे मे अभी हाल ही मे मुझे थोडा-बहुत बताया है कि तुम · ?" सुरेन्द्र ने अभी वाक्य समाप्त भी नही किया था कि वह बीच ही मे बोल उठी—कि मै एक बहुत अच्छी लडकी हूँ और एक प्राइमरी स्कूल मे बच्चियो को भी पढाती हूं यही न · " वह कुछ रुक कर फिर दबे स्वरो मे बोली—लेकिन सच मानिये, न तो मै कवियत्री हूं और न कहानी लेखिका । और अब तो मै मिस्ट्रस भी नही रही । मेरी नौकरी छूट चुकी है । मै तो बस एक मामूली लडकी हूं··· और मेरा नाम सुषमा है···!"

वह मानो उसे उत्साहित करता हुआ बोला—नही तुम सब-कुछ हो ··"

"हाँ, सब कुछ होकर भी कुछ नही···" वह हँस दी। "सब आप की तरह नही हो सकते···"

उसकी हंसी सुरेन्द्र को कुछ विचित्र लगी । उसने कहा—मै तो चाहता हूँ सब मेरी तरह हो जाएँ" और फिर उसने पूछा—तुम्हारा एक छोटा भाई भी तो है न सुषमा···?"

"हाँ है तो ·· " उसके स्वरो मे पहले जैसी गभीरता आ गई थी ।

"वह क्या करता है ··?"

"एक दुकान मे सेल्स-मैन है · "

"क्या उसे तुम्हारी तरह साहित्य से कोई रुचि नही ···?

"अभी कम उम्र है ···" सुषमा ने कहा—लेकिन वह अपने कोमल हाथो से कागज पर उल्टी-सीधी लकीरे खीचा करता है··· !"

"ओह···!" सुरेन्द्र प्रसन्न होकर बोला—यह क्यो नही कहती कि वह एक कलाकार है···"

"कितना कठिन है कलाकार बनना···" सुषमा के मुँह से निकला । और सुरेन्द्र उसके वाक्य की पूर्ति करते हुए बोला—एक महान साधना है यह भी । "

इसी प्रकार वे बाते करते हुए घर की ओर बढते जा रहे थे ! उन्हें बातों मे एक प्रकार का आनन्द मिल रहा था और सन्तोष··· चलते चलते उन्हे प्रतीत हुआ जैसे वायु मडल गर्मी से भर गया है और आकाश बादलो से । ठडी हवा कुछ तीव्र गति से बहने लगी थी । वे कुछ निकट हो कर चलने लगे थे । कभी चमकती हुई बिजली का प्रकाश उनकी आँखो मे एक विशद ज्योति भर देता था और वे एक दूसरे की ओर देख कर मुस्कुरा देते थे । कुछ देर बाद वर्षा की हल्की-हल्की बूँदे टपकने लगी । सुरेन्द्र ने छाता तान लिया फिर वे एक दूसरे के निकट होकर चलने लगे । इसी बीच वह बोला—चलो आज तुम्हारा घर देख लेता हूँ ··फिर शायद मुझे कभी आने की जरूरत पडे···"

मेरा सौभाग्य है···" सुषमा ने कहा—सहर्ष आइये । मै आज ही आप को घर लिए चलती हूं···!" और फिर वह कुछ दुखी स्वरो मे बोली—हमारा घर क्या है···कबाड खाना है ! गरीब का घर और होता भी क्या है ?'

"गरीब के घर मे सब कुछ होता है···। सुरेन्द्र ने बडे कोमल शब्दो मे कहा—दया, प्रेम और श्रद्धा···भला गरीब के घर क्या नही होता···?"

वे कुछ अधिक दूर नही चल पाए थे कि वर्षा ने जोर पकड लिया। आकाश पर बादल भयंकर स्वरो मे गरजने लगे । हवा तेज बहने लगी और बौछार के कारण वे बुरी तरह भीगने लगे । उन्होने उचित समझा, कुछ देर के लिए कही ठहर जाएँ, पर आस-पास कोई भी ऐसी आश्रय की जगह नही थी, जहाँ वे सिर छिपा सके । निदान वे उसी प्रकार भीगते हुए आगे बढने लगे ।

सुरेन्द्र ने कहा—"तुम भीग रही हो सुषमा · जरा मेरे साथ होकर चलो····" और उसने छाता उसकी ओर झुका दिया । किंतु बौछारो के आगे उनकी कोई पेश नही चल रही थी। कोई बदतमीज़ बौछार आती

और उन्हे झकझोर कर रख देती···वे पेड की शाखाओ की भाँति झुक जाते और इसी बीच वे एक दूसरे से सट जाते। और उनके शरीर मे रोमाँच की एक लहर दौड़ जाती। सुरेन्द्र बोला—सुषमा यदि मुनासिब समझो तो चलो उस पेड तले आश्रय ले ले···।"

"नही पेड तले ठहरना ठीक नही।" वह बोली—हम तो भीग ही चुके हैं, और घर भी अब दूर नही, चलिये, चलते चले ··।"

सुरेन्द्र बोला—तुम तो बिलकुल भीग गई हो···"

"और आप भी तो ··" सुषमा के शब्दो मे श्रद्धा थी और स्नेह····।

सडक पानी से भर गई थी। वे कुछ सँभल-सँभल कर चलने लगे। उन्ही की तरह और राहगीर छाता ताने सँभल-संभल कर उस ओर से गुजर रहे थे। वे उनकी ओर कुछ आश्चर्य और सकोचभरी दृष्टि से देख लेते थे। उनमे से कोई उन्हे घूरने भी लगता था। सुरेन्द्र ने अपने पायजामे और सुषमा ने अपनी शलवार के पाँयचे, वर्षा के जल से बचाने और अच्छी तरह चल सकने की सुविधा के लिये, एक-एक हाथ से घुटनो तक उठा रखे थे। उनकी नगी गोरी पिडलियाँ विद्युत प्रकाश मे सोने की तरह चमक उठती थी। राहगीरो के लिये यह एक विशेष आकर्षण था।

सुरेन्द्र धीरे से बोला—लोग कैसे आश्चर्य से हमारी तरफ देख रहे है सुषमा···।"

"देखने दीजिये···" सुषमा बोली—बेचारो को कुछ सोचने का अवसर मिलेगा···"

सुरेन्द्र हँस दिया। मन ही मन बोला—यह लडकी देखने मे जितनी भोली है बातो मे उतनी ही नटखट और चचल ···। फिर वे वर्षा और तूफान की बाते करते हुए आगे बढने लगे। कुछ देर बाद सुषमा ने उससे अचानक एक सवाल कर दिया—श्रद्धेय कवि जी क्या आप हरिचरन कौर से परिचित हैं ···?"

उसने उत्तर मे कहा—हाँ कुछ परिचय है तो सही, पर अधिक नही····" फिर उसने पूछा—'लेकिन तुमने यह कैसे जाना · ?'

"आपकी शैल भाभी ने ही मुझे बताया था···।"

'क्या तुम उसे जानती हो··· शायद वह तुम्हारी भी मित्र होगी—!"

"हाँ है और नही भी····क्योकि वह मुझसे खुश नही ।"

"क्यो···?"

कोई कारण भी समझ मे नही आता ।

सुरेन्द्र ने तब कुछ सोचकर कहा—कुछ कारण तो यह हो सकते हैं कि वह अमीर है और तुम गरीब । वह ठेकेदारनी बनने के सपने देख रही है और तुम मास्टरनी बनने के. कहानी-लेखिका और कवियत्री बनने के···"

"हो सकता है···।" कह कर वह चुप हो गई ।

चलते-चलते उन्होने सडक का सफर तै कर लिया था । और फिर वे एक मुहल्ले की गली मे दाखिल हो गये । वर्षा कुछ थमने लगी थी ·· और तेज बौछारे रुक सी गई थी । शायद बिजली की लाइन खराब हो जाने के कारण सारे मुहल्ले और गली मे अँधेरा था, और बहती हुई नालियो के जल के शोर ने इस अधेरे को बडा रहस्यमयी बना दिया था । वहाँ उन्हे बडा सँभल-सँभल कर चलना पड रहा था । सुरेन्द्र ने अब छाते की कोई आवश्यकता अनुभव नही की और ज्यो ही उसने उसे बद करने के लिए नीचे झुकाया, उसकी एक सीक सुषमा के केशो मे फँस गई । सुरेन्द्र कुछ दुःख प्रकट करता हुआ अँधेरे ही मे उसके केशो की लटो को मानो टटोलता हुआ छाते की सीक निकालने का प्रयत्न करने लगा । इसमे उसे अधिक परेशान नही होना पडा । सीक बालो से निकल गई और फिर वे दोनो हँस पड़े । कुछ ही क्षणो के लिये वे

चलते-चलते रुके थे · इसी बीच कई बदमिजाज कुत्ते उन्हे देखकर भौकने लगे। उन्हे भौंकता देख वे और भी हँस दिये। और धीरे-धीरे आगे बढने लगे। सहसा इसी बीच एक बार सारी बिजली की बत्तियाँ जगमगा उठी। सारे मुहल्ले, सारी गली मे चाँदनी सा उजाला फैल गया।

सुरेन्द्र के मुँह से निकला—अब हम अँधेरे से रोशनी मे आ गये है···अब किसी बात का भय नही।"

"ओह।" सुषमा के मुँह से निकला—तो पहले आप अँधेरे मे डर रहे थे···?"

वह बोला—अगर रोशनी न हो तो अँधेरा खलता है, और केवल अधकार ही रहे तो प्रकाश मे आने को जी चाहता है। यह मनुष्य का स्वभाव है।"

सुषमा बोली—आप तो बिल्कुल दार्शनिको जैसी बाते करते हैं।"

"दर्शन कहाँ नही है · ?" वह बोला—यह अकाश, पाताल और धरती ··यह बादल और विद्युत, यह रजनी और सुषमा, जिसकी भी बाते करे, दार्शनिकता सब मे है। हम सब एक अनन्त पथ के पथिक है···।"

सुषमा स्नेह-सिक्त शब्दो मे बोली—आप इतने विशाल हैं और आपके विचार इतने गूढ, मुझे आपकी बाते सुनकर प्रसन्नता हुई है।"

वे पहली गली को पार करके एक दूसरी गली मे प्रवेश कर रहे थे। उस गली मे बीच वाला मकान सुषमा का था। वह गली बिल्कुल खामोश थी। न वहाँ बहती हुई नालियो के जल का शोर था और न वहाँ कुत्ते भौक रहे थे। हाँ कभी-कभी इक्के-दुक्के विशालकाय खडे पेडो के पत्तो पर जमी बर्फ की बूदे हवा के झोको से टपटप धरती पर टपकने लगती थी, तो ऐसा प्रतीत होने लगता था, जैसे पके हुये पत्ते पेड़ से नीचे झड़ रहे हैं। और यह 'टपटप' गली की नीरवता मे मानो

रजनी के हृदय की धडकने बन गई है और स्वयं सुषमा के डर की भी···।

उसने ऊँचे स्वरो मे पूछा—कौनसा घर है तुम्हारा, सुषमा ?"

"वह रहा वह बीच का···" उसने हाथ से संकेत किया।

सुरेन्द्र ने देखा "उस बीच वाले घर के सामने शायद नीम का एक बहुत बडा पेड था।" वह बोला···

'तुम्हारे पिता शायद तुम्हारा इन्तजार कर रहे होगे।"

"नही · " सुषमा बोली—शायद वे सो चुके होगे···।"

"और तुम्हारा भाई ·?" उसने प्रश्न किया और फिर आप ही बोला—शायद कागज पर उल्टी-सीधी लकीरे खीच रहा होगा ··।"

'जी।" और वे दोनो एक-दूसरे की ओर देखकर मुस्करा दिये।

उस समय रह रह कर बिजली चमक रही थी और बादल भी गरज रहे थे। ऐसा लगता था पानी फिर जोर से बरसेगा किन्तु सुषमा घर पहुच चुकी थी, सुरेन्द्र को इसलिये सन्तोष था। सुषमा घर का फाटक खोलती हुई बोली···"आइये।"

सुरेन्द्र ने कहा—नही अब मै चलता हूँ···काफी रात बीत चुकी है, मै फिर कभी आऊँगा···।

"चलिए घर मे चलिए" सुषमा ने कहा—एक प्याली चाय पीते जाइये···आप तो बिल्कुल भीग चुके है · "

"इसीलिये तो मेरा ठहरना और भी ठीक नही ··" और फिर उसके कपडो की ओर देखता हुआ सुरेन्द्र बोला—तुम भी तो बिल्कुल भीग चुकी हो···"

"मेरा क्या है···" वह अपने शरीर से चिपके हुये वस्त्रो को देख कर बोली—मै अभी इन्हे बदल लूँगी···"

ठीक उसी समय शीतल हवा का एक झोका और ऊपर नीम के पेड़ से 'टपटप' वर्षा की सैकडो बून्दे निबोलियो की तरह टपक पडी।

'उई ·।' उसके मुँह से निकला और वह उचक कर एक ओर हो गई ·· "कितनी ठडी लगती हैं ये वर्षा की बून्दे।" और फिर वह सुरेन्द्र से पूछ बैठी "हमारे यहाँ कब आयेगे आप···?"

"किसी दिन, जब अवकाश मिलेगा तब · मै जरूर आऊँगा तुम्हारे यहाँ। क्योकि मैं तुम्हारी कविताये सुनना चाहता हूँ तुम्हारे ही मुख से और तुम्हारी ही वाणी···"

"पर आपको यह सब सुनकर मेरे प्रति निराशा होगी" फिर वह अनुरोध भरे शब्दो मे बोली—कल सवेरे पधारिये हमारे यहाँ ··"

"कल · ?"

"हाँ · " बिना किसी उपेक्षा के वह मान गया।

"कितने बजे आयेंगे आप ··?" उसकी आखो मे एक याचना थी।

"दस बजे···।"

"ठीक है " सुषमा के चेहरे पर फिर एक भोली मुस्कान खेल गई। सुरेन्द्र ने उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया था। वह उससे विदा हो · गली से बाहर निकल रहा था·· वह खडी-खडी उसे जाता देख रही थी ··।

७

उस दिन रात के समय सुषमा से विदा होते हुये वह उसके बारे मे नाना प्रकार की बाते सोचता हुआ घर की ओर लौटा। उसके विचारो में वह एक भावुक लड़की थी। उसे साहित्य का ज्ञान था। वह स्वय एक

अच्छी लेखिका बनने की इच्छुक थी। और प्रत्येक कवि तथा लेखक की भाँति अपनी प्रशसा सुन कर मन ही मन बहुत खुश होती थी। वह किसी भी सफल साहित्यकार का सहयोग पा स्वय एक सफल लेखिका और कवियत्री बन सकती थी। इससे पहले सुरेन्द्र हरिचरन कौर से भी मिल चुका था। उसमे और सुषमा मे जमीन-आसमान का अन्तर था। सुषमा स्वभाव की नम्र और शांत थी। उसमे शिष्टता कूट-कूट कर भरी हुई थी। इसके विपरीत हरिचरन मे एक प्रकार का घमड था और बडप्पन के भाव। वह सोचने लगा सुषमा को जीवन पथ पर आगे बढने के लिये, एक अच्छे सहचर की आवश्यकता है। प्रत्येक स्त्री या पुरुष को अपने जीवन मे एक अच्छे साथी की जरूरत होती है, ताकि समय समय पर उन्हे एक दूसरे का सहयोग मिलता रहे और वे किसी भी विषय पर कोई बात अच्छी तरह सोच सके।

उस दिन रात के समय वह यही बाते सोचता रहा। और उसने यह निश्चय किया कि वह सुषमा के और निकट हो, उसे अच्छी तरह समझने का प्रयत्न करेगा।

दूसरे दिन सवेरे इतवार था। प्राय इतवार के दिन वह कुछ देर से सोकर उठने का आदी था। किंतु उस दिन उसकी नीद कुछ पहले खुल गई।

नौ-साढे-नौ तक तैयार हो कर वह सुषमा के यहाँ जाने लगा। माँ ने नाश्ते के लिये कहा तो उसने इन्कार कर दिया। दस बजे के लगभग वह सुषमा के यहा पहुंच गया। नाश्ता और चाय तैयार थी। सुषमा बेचैनी से उसका इन्तजार कर रही थी। न जाने उसे इतना विश्वास क्यो था कि सुरेन्द्र जो कल रात वर्षा मे भीगता हुआ उसे घर तक छोडने आया था, और जिसने घर आने का निमन्त्रण स्वीकार किया था, वह अवश्य ही आयेगा···जरूर आयेगा। उसकी नजरे बहुत देर से उसकी बाट जोह रही थी। उसने अपने हाथ से मिठाइयाँ और समोसे

तैयार किये थे। एक विशेष प्रकार का बादाम का हलवा बनाया था। वह इससे अधिक शायद और कुछ नही कर सकती थी।

सुरेन्द्र के आ जाने से उसे बडी खुशी हुई। उसने अपने आप मे एक प्रकार का सतोष तथा गर्व अनुभव किया और दबे-दबे स्वरो मे कृतज्ञता प्रकट करती रही।

सुरेन्द्र ने सुषमा के हाथ का बना हुआ हलवा खाया, जो बडा स्वादिष्ट था और उसकी खूब तारीफ की कुछ नमकीन चीजे खाकर वह चाय पीने लगा। और चाय की भी उसने खूब प्रशसा की। वह चाय पीने का आदी नही था। और एक प्रकार से उसे चाय से घृणा थी · लेकिन सुषमा के यहाँ की चाय उसे बडी जायकेदार लगी।

इन सब चीजो से छुट्टी पाकर वे इतमीनान से बैठ गये और कुछ घर-बार की बातो के बाद साहित्य पर बाते करने लगे। सुषमा ने भी उसकी चन्द कहानियाँ पत्रिकाओ इत्यादि मे पढी थी। वह उनकी चर्चा करती हुई बोली—आपकी कहानियाँ हमे बहुत देर से पढने को मिलती है आप कहानियो ही की ओर अपना ध्यान नही देते ·· ?"

"हमेशा कहानियाँ लिख लेना अपने बस की बात नही ··सुरेन्द्र ने मेज पर पडी एक पत्रिका के पृष्ठ उलटते हुये कहा। उसकी दृष्टि एक पृष्ठ पर टिक गई जिसमे सुषमा की कविता छपी हुई थी।

सुषमा ने एक बार उस पृष्ठ पर दृष्टि फेकी और फिर पूछ बैठी—क्या अच्छी कहानियाँ लिखने के लिये हमेशा एक प्लाट और कथानक की आवश्यकता होती है ?"

"हाँ होती है···" सुरेन्द्र ने पत्रिका के पृष्ठो पर से अपनी नजरे हटाते हुए कहा—लेकिन कहानी लेखन-कला मे शैली का भी विशेष महत्व है···।"

"मूड मे आये हुये लेखक को शायद इनके बारे अधिक नही सोचना पड़ता···" सुषमा ने विश्वासपूर्ण शब्दो मे कहा।

सुरेन्द्र मुस्करा दिया—स्थिति और वातावरण तो बना बनाया मूड बिगाड देता है···।"

सुषमा ने कुछ सन्देह भरे शब्दो मे पूछा—तो क्या एक प्रकार का वातावरण आपके लेखन सम्बन्धी कार्यो के लिये भी अनुकूल नही···?"

"नही बात ऐसी नही · " उसने ठडो साँस लेते हुये कहा—शायद तुम्हारा मतलब मेरे घर के वातावरण से है। लेकिन घर के वातावरण से मुझे क्या शिकायत हो सकती है।

"देखिये···।" अपने हाथो से एक ओर सकेत करती हुई वह बोली—हमारे घर का वह कोने वाला कमरा हमेशा खाली रहता है। उसकी खिडकियाँ बाहर उद्यान की ओर खुलती है। वहाँ का वातावरण बड़ा ही शाँतमय रहता है। आप यहाँ आ जाया कीजिये। उस कमरे मे बैठ कर लिखा कीजिये ।"

कितनी नादानी थी उसकी भोली-भोली बातो में। वह सुन कर मुस्करा दिया···कुछ क्षण तक इसी प्रकार मुस्कराता रहा फिर कुछ हल्के व्यग पूर्ण शब्दो मे बोला—यह तो मूड की बात है सुषमा। कब मूड मे आऊँगा कब लिखने की इच्छा होगी और कब यहाँ आऊँगा····?" और यदि रास्ते मे आते-आते कही मूड ही बदल गया तो आना निरर्थक होगा। और फिर तुम कभी यहाँ मिलोगी और कभी नही भी। तब मुझे चाय बना कर कौन पिलाएगा···।"

लज्जावश सुषमा की आँखे नीचे झुक गईं। शायद ऐसी बात करके उसने कोई भूल की थी।

वह बोला—"अच्छा चलो वह कमरा तो देखूँ···"

बीच वाले कमरे से उठकर वे दोनो उस कोने वाले कमरे में चले गये। वह कमरा छोटा सा था। जिसके अन्दर एक छोटी सी मेज थी और एक पुरानी कुर्सी। मेज पर कुछ कागज और पेन्सिल इत्यादि

बेतरतीबी से बिखरे हुए थे। और कमरे की दीवार से लटकते हुए अनेको चित्र और स्केच कुछ और भी बेतरतीब नजर आ रहे थे। सचमुच उस कमरे की एक खिडकी उद्यान की ओर खुलती थी, जहाँ केले के पेडो का झुरमुट था और लीची के पेड की शाखाये उनके पत्तो को चूमती थी। द्वार के सामने और खिडकी से ठीक ऊपर सुषमा का फ्रेम किया हुआ एक रेखा चित्र टंगा हुआ था। सुरेन्द्र उस चित्र को ध्यान पूर्वक देखने लगा और फिर वह सुषमा से पूछ बैठा—यह किसके हाथो का कमाल है सुषमा—किसने यह स्केच बनाया है ··मै उसकी सराहना किये बिना नही रह सकता ··।"

वह धीरे से बोली—'छोटे भाई महेन्द्र ने" और अन्य चित्रो की ओर सकेत करती हुई बोली, "यह सारे चित्र उसी के हाथो के बने हुये है···।"

"वह है कहाँ ··?" सुरेन्द्र ने कहा—मै उसे कुछ अपनी ओर से भेट करना चाहता हूँ ··।"

सुषमा ने उत्तर मे कहा—"वह पिता जी के साथ पटना गया हुआ है···"

सुरेन्द्र, महेन्द्र, के हाथो के बने सीधे-सादे चित्र देखता रहा। उन चित्रो मे रग से काम नही लिया गया था और वे सब पेसिल ही से बना दिए गये थे। जैसे प्राय: स्कूल के बच्चे पेसिल ही से ड्राईग इत्यादि बनाया करते हैं। किन्तु उन चित्रो मे कमाल यह था कि वे बडे सजीव नजर आते थे। जहाँ उनमे सादगी थी, वहाँ एक आकर्षण भी था और वे बोलते नजर आते थे। वह अपने मन मे सोचने लगा यदि इस लडके की साधना जारी रही और किसी सफल कलाकार से इसे शिक्षा मिलती रही तो एक दिन यह भी महान हो जायेगा। और यही बाते उसने सुषमा से कही। वह सुरेन्द्र के मुँह से अपने भाई की प्रशंसा सुन कर बहुत खुश हुई। फिर आशापूर्ण शब्दो मे कहने लगी—मै चाहती हूँ

सुरेन्द्र जी वह एक सफल कलाकार बने, महान बने और यश प्राप्त करे। मै एक बडी बहन के नाते उसे वही आशीर्वाद देती रहती हूँ। उसे इस कला को सीखने का बहुत शौक है। पर हम गरीब है। उसे किसी कला केन्द्र मे भेजने से लाचार है। वह आने आप कागज-पैसिल लेकर इस काम मे लगा रहता है। इधर कुछ सिनेमा के पोस्टर लिख कर उसने अपने कुछ रुपये जमा किये थे। मै चाहती हूँ उन रुपयो से उसके लिये चित्रकारी की सामग्री मोल ले दूं···आपके विचार मे यह कैसा रहेगा···?"

सुरेन्द्र ने कहा, "अच्छा विचार है सुषमा। तुम यह याद रखो कि कला गरीबो ही के घर फलती और फूलती है।"

सुषमा विश्वास-पूर्ण शब्दोमे बोली—मेरी भी यही धारणा है··· इसीलिये मै उसके महान बनने के स्वप्न देखती हूँ···मै चाहती हूँ वह एक सफल कलाकार बने। आप ही की तरह उसे भी लोग जाने और उसका नाम ले···।"

"हाँ, कलाकार इससे अधिक और आशा रख ही क्या सकता है। नाम, यश और कोरी वाह वाह · " और फिर वह रुककर बोला— लेकिन सुषमा मै स्वयं अभी उतना नही उठ पाया जैसी धारणा की तुमने मेरे बारे मे अपने मन मे बना रखी है।"

"आप भले ही ऐसा सोचे। लेकिन जानने वाले जानते है···" सुषमा के शब्दो मे विश्वास था।

किन्तु वह अविश्वास भरे शब्दो म बोला—मै अधूरा हूँ अभी अधूरा···ठीक दूज के चाँद की तरह···ठीक जैसी मेरी जिन्दगी अधूरी है...ज्ञान और अनुभव अधूरा है...।"

"मै आपकी बाते समझने मे असमर्थ हूँ।" वह बीच ही मे बोल उठी।

"खैर छोडो इन बातो को ··" मेज पर से एक कागज, जिस पर अधूरा चित्र अकित था, उठाते हुआ बोला—अभी यह बात अधूरी ही रहने दो ··हाँ तुमने अभी कुछ देर पहले जो अपनी गरीबी की बात कही थी न—मै फिर उसी के बारे मे सोचने लग गया हूँ। शायद इस युग मे कलाकार, साहित्यकार, और कला के किसी भी अन्य क्षेत्र मे ऊंचा उठने के लिये पैसा चाहिये···क्योकि पैसे ही से प्रचार हो सकता है, प्रचार ही से यश मिलता है। जिसका प्रचार नही, दुनिया उसे कुछ मानने को तैयार नही।"

सुषमा उसके समीप आकर निराशापूर्ण शब्दो मे बोली—तो क्या मेरा भाई कलाकार नही बन सकता···?"

"अभी इतना मत सोचो ··" वह कुछ गम्भीर स्वरो मे बोला और फिर उसके चित्र की ओर सकेत करते हुये उसने बात का रुख बदल दिया—सुषमा मुझे नाम लेकर बताओ···यह किसका चित्र है···?"

वह होठों मे मुस्करा दी। उसका माथा नीचे झुक गया—क्या आप इतनी जल्दी किसी को भूल जाते हैं। पहचान लीजिये···।"

"तब से खडा यत्न कर रहा हूँ···"सुरेन्द्र चित्र की ओर निर्निमेष देखता हुआ बोला—लेकिन शायद पहचानने मे देर लगेगी·· देख रहा हूँ इस चित्र पर रग कुछ गहरा है। आकृति की आँखो मे असीम सागर सी रहस्यमय गहराई है। आँखो के रहस्य को आँखो ने बहुत बार देखा है। बहुत बार उन्होने उसे जानने और पहचानने का प्रयत्न किया है। किन्तु रहस्य फिर भी रहस्य है, क्यो कि वह अप्रत्यक्ष है···।"

सुषमा मौन थी। अपने चित्र ही की भाँति मौन···किन्तु उसका हृदय तीव्र गति से धडकने लगा था। उसका जी चाहा वह धीरे से कमरे से निकल जाये। उसका माथा और नीचे झुक गया था।

सुरेन्द्र ने एक बार उसकी ओर देखा। फिर बोला—चलो बाहर बरामदे मे चल कर बैठे।"

वे दोनो उस कमरे से निकल कर बाहर बरामदे मे आ बैठे। पडोस की एक बच्ची उस उद्यान मे किसी काम के लिये बेल के पत्ते लेने आई थी। सुषमा ने उस बच्ची से पूछा—अब तेरी माँ की तबियत कैसी है—रानी···?"

"वैसी ही है दीदी" वह बोली।

"तू सवेरे आई नही तेरी चाय रखी है ·।"

"आज फुरसत नही! मिली दीदी ··मै काम करके आऊँगी···"

सुषमा सुरेन्द्र से सम्बोधित हो कहने लगी—बेचारी लडकी सारे घर का काम संभालती है। इसकी माँ बीमार है····"

"लडकी बडी सयानी मालूम होती है···" वह उस लडकी की ओर देखता हुआ बोला, जिसके एक हाथ की उँगली मे किसी चीज का काँटा चुभ गया था और वह उस उँगली को दबाकर खून निकालने लगी थी।

"आप की वह कहानी" सुषमा कहने लगी—जो आपने होटल मे काम करने वाले एक बच्चे पर लिखी थी, मुझे बहुत अच्छी लगी थी। आप बच्चो के मनोविज्ञान से बहुत अच्छी तरह परिचित हैं।"

"सुषमा ···"वह उसकी ओर देखता हुआ बोला—मै तुम्हारी रचनाएं देखना चाहता हू · कोई कविता सुनाओ।"

"कविता··· !" वह मुस्करा दी। क्या आप भी सच मान गये कि मै भी एक कवियत्री ··· हूँ।"

"जो सच है, उसे मानना ही पडता है·· ·"

"लेकिन कभी लोग असत्य को सत्य मानकर उसके बारे मे नाना प्रकार की कल्पनाएँ करने लगते हैं। और जब वे उसका वास्तविक रूप देख ले, तब उनके मन और विचारो को गहरी ठेस पहुँचती है। इसकी प्रति-क्रिया भी फिर···भयानक होती है···!"

"किसी मे स्वहीनता के भाव इतने अधिक नही आने चाहिये।" वह बीच ही मे बोलने लगा—"मै जानता हूँ तुम क्या हो···"

"नही आपको भ्रम है" उसके शब्दो मे निराशा थी।

उसने उस पर कविता के लिये और दबाव डालना उचित नही समझा और कुछ क्षण चुप रह कर बोला—"तुम अपने आप को छिपाती हो, क्या सौरभ भी कभी छिपा रहता है?"

सुषमा की आँखो मे एक विशद ज्योति खिल उठी, उसके चेहरे पर एक लाली दौड गई।

इसके बाद वे घर की बाते करने लगे। बातो-बातो ही मे सुरेन्द्र को पता चला, सुषमा के घर की आर्थिक स्थिति ठीक नही। उसके वृद्ध पिता बेकार है। वह स्वय स्कूल की आरजी नौकरी मे छुट्टी पा चुकी है। घर मे कमाने वाला उसका एक छोटा भाई है और इसी से उनकी कुछ कठिनाई से गुजर चल रही है। यह सब सुन कर उसे कुछ दुःख हुआ। उसकी करुण स्थिति को देखकर उसे उस पर दया आई और उसने उससे पूछा, वह इस सिलसिले मे उसकी क्या सहायता कर सकता है? किन्तु वह अपने मुँह से कुछ नही बोली। नगर मे सेवा पुस्तकालय के लिये एक महिला लाईब्रेरियन की आवश्यकता थी। कुछ प्रयत्न के बाद सुषमा की वहाँ नियुक्ति हो सकती थी। उसने निश्चय किया, वह अवश्य ही इस काम मे उसकी सहायता करेगा। उसने सुषमा को इस विषय मे सारी बाते समझाई और एक प्रार्थना-पत्र भेज देने का आदेश दिया।

उस दिन वह काफी देर तक उसके यहाँ ठहरा। दोपहर बाद भोजन भी उसने वही किया। फिर एक बार वह घर गया और सध्या के समय वापस लौट आया। [illegible] देखते

८

●●●

जब नौ बजे के लगभग 'शो' समाप्त हुआ और वे सिनेमा हाल से बाहर निकले, अचानक उन्हें हरिचरण कौर और प्रेमी जी दिखाई दिए। वे एक दूसरे के निकट आए और अभिवादन हुआ।

सुरेन्द्र ने पूछा—"कहिये मिस चरन आप अच्छी तो है•••?"

उत्तर मे वह बोली—'आप कहिये ! आप तो अच्छे है•••?"

"अच्छा हूँ ।"

"बहुत दिनो के बाद आप के दर्शन हुए•••"

"ऐसे ही•••क्योकि घर से मै बहुत कम बाहर निकलता हूँ•••।"

प्रेमी जी बीच मे बोले—"सचमुच आजकल मिस्टर सुरेन्द्र घर से बहुत कम बाहर निकलते है•••मिस हरिचरन"। उनके शब्दो मे हल्का व्यग था।

सुरेन्द्र ने बात का रुख बदल कर कहा—"क्या आप लोग पिक्चर देखने आए थे। कैसी लगी फिलम ?"

हरिचरन की अपेक्षा प्रेमी जी ही बोले—"मिस्टर सुरेन्द्र, इन्हे पिक्चर अच्छी नही लगी और आध घटा पहले ही हाल से बाहर निकल आई •••।"

'ओह !•••" सुरेन्द्र के मुँह से निकला—"तो गोया आध घण्टे से आप ••• घूम रहे है•••।"

"जी हाँ••।" प्रेमी जी बोले—"और इन्हे शायद हम सब ... न-क्रिार था।"

हरिचरन कहने लगी--"यदि आप सब मेरी कार मे बैठने की कृपा कर तो मै आप लोगो के आपके घरो तक छोडती जाऊं···चलिए कार मे बैठिये !" उसने कार की ओर सकेत किया।

"हा-हाँ चलिये। कार मे बैठ कर बाते होगी" प्रेमी जी ने उत्सुकता प्रकट की। वे कार के निकट आ खडे हुए।

सुरेन्द्र ने कहा—"नही....! हम पैदल ही चले जाएंगे। घर कोई अधिक दूर थोडा ही है। और हमे बाजार मे कुछ काम भी है, इसलिए रुकना भी पडेगा।"

"ठीक है..." हरिचरन के मुंह से निकला—"मै आप के काम मे बाधा नही डालूंगी !" और प्रेमी जी से सम्बोधित हो बोली—"आप तो मेरा साथ देगे न···?"

"यदि आप की आज्ञा है, तो मुझे आप के साथ जाने मे खुशी होगी···!" प्रेमी जी मुस्कराते हुए बोले और उछल कर कार मे जा बैठे···!

हरिचरन बोली—"प्रेमी जी मुझे आप से कुछ जरूरी बाते करनी है। और फिर वह सुरेन्द्र से कहने लगी—"आप को देर हो रही होगी। क्षमा करेगे !"

"वह बोला– 'नही ऐसी कोई बात नही·· ' हरिचरन कार मे बैठती हुई बोली—"क्षमा कीजियेगा सुरेन्द्र जी, आप बडे वायदा फरामोश है · उस दिन आप वायदा करके फिर हमारे यहाँ नही आए क्या आप हम से नाराज है ···?"

"नही···!" सुरेन्द्र ने कहा—"पिछले दिनो मेरी तबियत कुछ ठीक नही थी। इसलिये घर से बाहर नही निकलता रहा !"

आपने हमें कोई खबर भी न भिजवाई, आश्चर्य है।" उसने शिकायत की।

"ऐसी कोई खास बात नही थी"। सुरेन्द्र बोला—जिसकी आप को सूचना दी जाती ·· " फिर उसने बात का रुख बदलते हुए पूछा "ममी तो अच्छी है ?"

"वे आप को अक्सर याद किया करती है ···।" हरिचरन बोली—"किसी दिन आप हमारे यहाँ आइये ···"

"आऊँगा—।" धीरे से उसने कहा।

"मै ममी से कह दूँगी और उन्हे आप का इन्तज़ार रहेगा····" कह कर हरिचरन गौर से उसके मुँह की ओर देखने लगी। जैसे वह उसके अन्दर की बात जान लेना चाहती हो। सुरेन्द्र के चेहरे पर एक उदासी घिर आई थी। कुछ क्षण पश्चात हरिचरन ने कार स्टार्ट की, जो घरघरार्ती हुई आगे बढने लगी।" अच्छा हम फिर मिलेंगे ·· " एक हाथ से सकेत करती हुई बोली और कार तेजी से आगे निकल गई। सुरेन्द्र कुछ क्षणो के लिए उसी प्रकार खडा रहा। वह मन ही मन बोला—"चरनी सितारो की दुनिया मे रहने वालो और धरती पर रहने वालो मे काफी अन्तर होता है। वे एक-दूसरे से बहुत दूर होते हैं। मै जानता हूँ तुम मेरे निकट आना चाहती हो ··किन्तु मुझ मे और तुम मे बहुत दूर का फासला है · शायद तुम्हारी आँखे यह देखने मे असमर्थ है ·· बिल्कुल असमर्थ ·।" वह कार को दूर तक सडक पर अधकार मे विलीन होता देखता रहा। अब उसकी पीछे की लाल रोशनी ही दूरी पर जुगनू की तरह चमकती दिखाई दे रही थी।

बातो-बातो मे वह सुषमा को भूल ही गया था। अचानक उसे उसका ख्याल हो आया। उसने मुड कर उसकी ओर देखा और कहा—"चलो सुषमा ! हमे काफी देर हो गई ·· इसके लिये क्षमा करोगी ···"

वे दोनो बस-स्टेड की ओर चल दिए। रास्ते मे उन्होने कोई बात नही की। रह-रह कर वे एक-दूसरे के मुँह की ओर देखते थे और आँखों-आखो ही मे कुछ कह कर एक-दूसरे के मनोभाव जानने का

प्रयत्न कर रहे थे। अचानक जो कुछ अभी हुआ था, यह उनके लिये किसी घटना से कम नही था। कुछ मित्रो की आपस में की क्षणिक भेंट थी लेकिन इसने सबो के 'मूड' बदल दिये थे।

जब वे बस स्टेंड पर पहुचे, उन्होने देखा बस भर चुकी थी। हॉ लेडी कम्पार्टमेंट मे एक जगह खाली थी। सुषमा उसमे बैठ सकती थी। लेकिन वह सुरेन्द्र के साथ पैदल ही घर की ओर चली।

उस समय सुरेन्द्र बोला—"नही मुझे पैदल ही अच्छा लगता है। हॉ, कल रात को मेरी खातिर भी तो आप को पैदल चलना पड़ा था।"

"वह तो एक घटना थी ..." सुरेन्द्र ने कहा—"यदि कल मेरा और तुम्हारा साथ इतनी देर तक न रहता तो शायद मै तुम्हे बिल्कुल न समझ पाता, और आज का यह दिन भी हमारे लिये वरदान बन जाता। उसने ऊपर आकाश की ओर देखा, जो स्वच्छ और निर्मल था। तारो के दीप जगमगा रहे थे। हवा मे कुछ नमी थी और सड़क के किनारे खडे शैफाली के फूलो की मधुर गध से सारा वातावरण महक रहा था।

"क्या तुम्हे भी मेरी तरह पैदल चलना अच्छा लगता है...?" उसने सुषमा से प्रश्न किया।

वह बोली—"हॉ .. विशेष कर तब जब कि आपका साथ रहे और मजिल लम्बी हो ..।"

"क्या पागलपन है ...वह बोला—"मै तो भटकने वाला आदमी हूँ... जो मेरे साथ अपने कदम मिलाएगा उसे भी भटकना पडेगा।"

"कुछ भी हो .." सुषमा, उसके रहस्यमय वाक्य के उत्तर मे बोली—"भटकने वालो की भी तो कोई मंजिल हुआ ही करती है बहुत दूर नहीं तो वही, जहॉ वह थक कर बैठ जाते हैं ...।"

"लेकिन तुम्हारे लिये ऐसी मंजिल नही होनी चाहिये सुषमा।"

वह बोला—"यद्यपि मंजिल की खोज एक बडी समस्या हुआ करती है · ।"

'मैं जानती हूँ···" कह कर सुषमा चुप हो गई ।

वे फिर कुछ क्षणो के लिये मौन आगे बढने लगे । और चलते चलते सुरेन्द्र के मन मे एक बात आई । वह बोला—"क्या तुम्हारे पिता को हमारी यह भेट अच्छी लगेगी ।···कही वे कुछ बुरा तो नही मानेगे ? —क्या तुम उनसे हमारी इस भेट की चर्चा करोगी · ?"

"अवश्य ·· ।" सुषमा ने कहा—"वे हमारी इस भेट की खबर सुन कर बहुत प्रसन्न होगे ।"

"वे पटना मे कब लौट रहे हैं · ?"

"शायद हफ्ते के अन्दर-अन्दर····"

फिर सुरेन्द्र ने पूछा—"कही प्रेमी जी पर तुम से मेरी इस भेट का कोई खराब प्रभाव तो नही पड़ा होगा ···?"

"परमात्मा जाने · " वह बोली—"किन्तु उन से मेरा क्या सम्बन्ध और वे कौन होते है हमारे विषय मे इतनी अधिक चिन्ता करने वाले····? वे अपने मन पर चाहे जो प्रभाव लेते रहे हमारी बला से ।"

सुरेन्द्र मुस्करा दिया · ।

अचानक एक टैक्सी उनके निकट आकर रुकी । ड्राईवर ने पूछा—"चलियेगा साहब ·· ?"

सुषमा के मुँह से निकला 'नही' । टैक्सी आगे बढ गई ·· । वे पैदल ही आगे बढते गए । अचानक सुषमा बोली—"यह सच है सुरेन्द्र जी 'कि हमारी इस मित्रता को लोग काफी शक की नजर से देखेगे··· किन्तु हमे इसकी चिन्ता नही करनी चाहिये । हमे अपने मन पवित्र रखने चाहिये ·· ।

वह उसकी इस विद्वत्ता पूर्ण बात से बहुत प्रसन्न हुआ । बल्कि उसने अपने मन मे एक गर्व सा अनुभव किया । वह कुछ गंभीर स्वरो मे बोला—"तुम सच कहती हो···।"

"हमारी यह मित्रता कैसी है ··आपका मन भी तो इसके बारे कुछ कहता होगा ··?" शायद सुषमा सुरेन्द्र के मुँह से कुछ और अधिक सुनना चाहती थी।

सुरेन्द्र बोला—"हमारी भेंट··· हमारा मिलन·· यह समीपता और मित्रता इसके बारे मे मेरे मन ने मुझ से बहुत बार बहुत कुछ कहा है ·· और जब भी मेरे मन ने मुझ से कुछ कहा है, मैं तुम्हारी अपेक्षा अपने बारे मे कुछ अधिक सोचने के लिये मजबूर होता गया हूँ। मैं क्या हूँ और क्या नही · मैं तुम्हारी मित्रता के योग्य हूँ भी या नही · आखिर मैं कलम घिसने वाला एक बेकार आदमी हूँ····मेरे जैसे आदमी के जीवन मे होता ही क्या है ·· लाचारी और फाकामस्ती ···लोग मुझे लेखक और कवि कह सकते हैं · किन्तु मैं अपने आप को किसी प्रकाशक का क्लर्क समझने के लिये मजबूर हूँ···! मेरे जीवन मे क्या है ? कुछ भी नही ? मै क्या सोच सकता हू और किस वस्तु की कल्पना कर सकता हूँ....!

"यह तो किसी का अपने प्रति अविश्वास है।" सुषमा ने कहा—'सबके जीवन मे सब कुछ होता। हाँ, यदि कोई कुछ चाहे तो वह पा भी लेता है।'

वह बोला—"सुषमा मैं तुम्हारा अर्थ समझ गया। मैं अपने आप को, और अपनी मनोभावना को लेकर निराश नही। तुम मेरे साथ हो मुझे इसका तो विश्वास हो गया है···।"

सुषमा ने स्नेह पूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखा। उसमे कुछ स्वाभाविक लज्जा का भी अश था। वह चुप थी, पर वे आँखे कह रही थी। मैं भी तो एक विश्वास लिये तुम्हारे साथ चल रही हूँ · तुम मेरे साथ हो··· मुझे इस पथ पर एकान्त तो नही छोड दोगे। यही सबल विश्वास मुझे चलने पर मजबूर कर रहा है···तुम्हारे पीछे चल कर मैं एक मजिल तक अवश्य पहुंच जाऊँगी। तुम्हे मेरा विश्वास है और तुम मेरे साथ इसी प्रकार सदा चलते रहोगे···लेकिन फिर भी तुम अनजान बनते हो···

कितने निष्ठुर हो ···कितने कठोर···।" और सहसा चलते-चलते उसने सुरेन्द्र का हाथ थाम लिया। जैसे वह उन्ही हाथो का सहारा लेकर आगे बढना चाहती हो···वे चुपचाप दोनो आगे बढते गए, उनके पैरो की चाप से जैसे सुनसान सड़क खिलखिला उठती थी···;

सुरेन्द्र मन ही मन कह रहा था···मै जानता हूँ सुषमा, तुम इसी प्रकार मेरे साथ चलती रहना चाहती हो, लेकिन मै सच कहता हूँ मुझे स्वय अपनी मंजिल का कोई पता नही।" साथ ही वह उस से पूछ बैठा—"सुषमा क्या यह सोचना ठीक है कि यह रास्ता कभी समाप्त न हो और हम चलते ही रहे ··?"

"हाँ···" वह धीरे से बोली—मै चलती ही रहना चाहती हू··· चलिए···जहाँ जाना चाहते हैं, चलिये···आखिर आप एक मजिल पर तो रुकेंगे ही !" और मंजिल सचमुच उन से दूर नही थी।" सुषमा का घर निकट आ गया था। गली मे प्रवेश करने से पहले···सुरेन्द्र ने उससे पूछा—"पहले यह कहो सुषमा तुम्हे आज की पिक्चर कैसी लगी ?"

उसने कहा—"बहुत अच्छी···।"

फिर उसने पूछा—"हरिचरन की बाते तुम्हे कैसी लगी ? वह बडी घमडी लडकी है। है न ?" किन्तु इस प्रश्न के उत्तर मे वह मौन थी। उसके हृदय की गति कुछ तीव्र हो उठी थी।

वह बोला—मै तुम्हे घर तक छोड कर वापस लौट आऊँगा सुषमा, ठहरूँगा नही।"

वह तब भी मौन थी; अचानक उसके मन की स्थिति कुछ बदल गई थी और उसके पाँव धीरे-धीरे आगे की ओर उठ रहे थे···।

यह शायद सुरेन्द्र को बहुत पहले ही से विश्वास था कि जिस पथ की वह साधना कर रहा है, जिस पर चल कर वह एक मजिल तक पहुच जाना चाहता है, सुपमा भी उसी पथ की पथिक है। वह आज से नही, बल्कि एक अर्से से उसके साथ चलना चाहती है। उसके बिना उसकी यात्रा अधूरी रह जायेगी। उन्हे एक साथ सफलता की मजिल की ओर अभय होकर बढना पडेगा।

वह शैल भाभी से मिल कर इन सारी बातो को चर्चा करना चाहता था। सुपमा को तो वे बहुत प्यार करती थीं और उसका विचार उन्होने उसके मन मे पैदा किया था। उसे आशा थी, वे इस प्रगति को सुनकर बहुत प्रसन्न होगी..! एक रविवार के दिन वह उनसे मिलने चला ही गया। वे उससे नाराज थी। इस नाराजगी का विशेष कारण यह था कि वह कई दिनो से उनसे भेट करने नही गया था। अभी-अभी उसकी एक नई पुस्तक भी छपी थी, जिसकी प्रति अभी तक उसने भाभी को भेट नही की थी। इसलिये उस दिन वह अपने साथ उस पुस्तक की एक प्रति भी लेता गया। शैल उस पुस्तक को देखकर बहुत खुश हुई और उसने उलट-पलट कर, उसका गेट अप और लिखाई-छपाई देखती रही। जब उनकी दृष्टि समर्पण वाले पृष्ठ पर पडी। उन्हे वहाँ अपना ही नाम नजर आया—"शैल भाभी की सेवा मे..." वे बडे गौर से उस पृष्ठ को देखती रही। फिर बोली, "यदि यहाँ मेरे नाम की अपेक्षा··· किसी उसका...नाम होता तो कितना अच्छा होता...।"

सुरेन्द्र ने पूछा—"उसका से क्या मतलब है भाभी आपका ?"

"नही समझे" उसने कहा ?

"लेखक तो बन गये, लेकिन अक्ल दो कौडी की भी नही।" शैल उसे बनाती हुई बोली — 'उसका से मतलब है वह, जिसके तुम सपने देखा करते हो...।"

"ओह" उसके मुँह से निकला — 'लेकिन आपने पहले नही बताया। अच्छा अब सही। अब जो पुस्तक लिख रहा हूं, जिसे आप बताएँगी, मै उसे ही समर्पण कर दूँगा।"

शैल ने उसके देखते-देखते . एक पेन्सिल से अपने नाम के पास मोटे-मोटे अक्षरो मे लिख दिया 'सुषमा'। फिर बोली — "याद रहेगा न ··?" और वे मुस्करा दी।

उसने कहा—"भाभी, यह नाम तो बडा सुन्दर है सुषमा।"

पसद है न तुम्हे .. ?" शैल भाभी उसकी ओर देखती हुई बोली—'उसे देखने मे वह तुम्हे कैसी लगती है .. ?"

'अच्छी है···" वह कुछ बनता हुआ-सा बोला—"लेकिन मैने उसे कभी गौर से नही देखा ·।"

"हूँ · !" वे मुस्करा दी—"आजकल हरिचरन का क्या हाल है, क्या उससे भेंट होती है ?"

'हाँ, एक दिन मिली थी···" उसका छोटा सा उत्तर था।

"बडी चतुर लडकी है वह " शैल हाथ की पुस्तक एक ओर रखती हुई बोली — 'जरा बच कर रहना।"

सुरेन्द्र ने कहा—बडे घर की लडकियाँ कुछ ऐसी ही होती हैं भाभी···"

शैल उठती हुई बोली—'अभी हाल ही मे उन्होने एक लाख का ठेका लिया है।"

वह बोला—"रुपया ही तो रुपये को खीचता है भाभी, उनके लिए एक लाख का ठेका ले लेना कोई बड़ी बात नही!'

शैल बोली—"लडाई छिडने से पहले वे हमारी तरह बिल्कुल मामूली आदमी थे। लेकिन महायुद्ध के बाद वे अचानक बहुत बडे बन गए। अब वे हजारो-लाखो के मालिक है···" इतना कह कर वह कमरे से बाहर जाने लगी। दरवाजे के पास रुक कर बोली—"तुम अखबार देखो, मै चाय लाती हूँ।

कुछ समय पश्चात, जब वे चाय के गरम-गरम घूँट निगल रहे थे···और हरिचरन के पश्चात सुषमा की चर्चा चल रही थी। वह बोल —"भाभी आपके विचारो मे सुषमा सचमुच कैसी लडकी है···?"

"खुद ही उससे पूछ लो···" चाय पीते हुए वे चोर आँखो से उसकी ओर देखती हुई बोली—"मै तुम्हे क्या बता सकती हूँ। न मै और तुम उसे एक समान देख सकते है और न समझ सकते है···।"

"आप तो मजाक करने लगी" वह बोला—"मै आप से एक विशेष बात करना चाहता हूँ···।'

"हाँ बोलो···" वे बोली—"मै सुन रही हूँ।"

वह कहने लगा—"क्या सुषमा हमारे परिवार का अग बन सकती है भाभी ? जैसा कि एक दिन आप भी सोच रही थी···।"

"न तो यह इतना कठिन है और न ही इतना आसान · " वे सतोष पूर्वक चाय के घूँट निगलने लगी।

सुरेन्द्र के बात समझ मे नही आई। उसकी उत्सुकता और बढी और वह बोला—"बात कुछ विचित्र सी है, मेरी समझ मे नही आई ··।"

शैल तब कुछ गभीर होकर बोली—"सुषमा तुम्हे चाहती है। आज से नही—बहुत पहले से, जब कि तुम दोनो की भेट भी नही हुई थी··। लेकिन उसके पिता···उनका कुछ दूसरा विचार है· "

'उनके क्या विचार हो सकते है।' एक प्रश्न उसके मन मे उठा और वह बोला—"वे क्या सोचते है···?"

"क्या करोगे सुनकर···।" वे बोली—"अजीब सी बात है···वे एक ऐसे घर का लडका ढूँढते हैं···जहाँ उनके सारे परिवार की गुजर हो सके···।"

उसने पूछा—"सुषमा का इस विषय मे क्या विचार है···?"

"वह कभी इस विषय मे कुछ नही बोली···" शैल ने चाय की प्याली मेज पर रख दी।

वह कुछ विरोधी स्वरो मे बोला—"क्या सुषमा के पिता सुषमा के विचारो के विरुद्ध चलेगे ·· ?"

"यह समझना कठिन है।" शैल भाभी बोली—'सुषमा के विचारो की भी एक सीमा है···जहां पारिवारिक समस्याएँ हो, वहाँ लैला-मजनूँ के किस्सो को कौन याद करता है····?"

"मुझे आपकी बातो का विश्वास नही भाभी···सुषमा सुषमा···!" वह आगे कुछ कहता-कहता रुक गया।

"मैं जानती हूँ ··।" शैल एक गहरी साँस लेकर बोली—"इसीलिये तो मैंने आज तक हँसी-मजाक से आगे नही बढने दी···लेकिन आज तुम कुछ सीरियस मालूम देते हो···क्या तुम सुषमा से मिला करते हो···?"

"हाँ···" उतने सिर हिला दिया।

"वह बहुत अच्छी लडकी है···" भाव पूर्ण शब्दो मे वे पास पड़ी पुस्तक अपने हाथ मे लेती हुई बोली—"यदि तुम उस पर अच्छी तरह छा सको तो शायद तुम्हारी इच्छा साकार हो उठे····।" और वे पुस्तक के पृष्ठ उलटने लगी।

सुरेन्द्र मन मे बोला----अब उस पर छा जाने का प्रश्न ही नही रहा भाभी। सवाल तो रुपए पैसे और जिम्मेवारी का है बडी कठिन समस्या है यह···बडी विचित्र बात है यह ··। उसने शैल से पूछा—"भाभी क्या सुषमा के पिता के यह विचार दुरुस्त हैं···। हमारे यहाँ तो पिता कन्या के घर का पानी पीना भी एक बोझ समझते है ।"

वे बोली—"मजबूरी सब कुछ करवा दिया करती है। तुमने बहुत बार यह भी तो सुना होगा कि पिता अपनी कन्या को बेच भी दिया करते हैं···।"

तब वह अवाक् सा शैल भाभी के मुँह की ओर देखता रह गया। यद्यपि यह उसके लिए कोई आश्चर्यजनक बात नही थी, लेकिन फिर भी शैल के इस अतिम वाक्य का उस पर काफी प्रभाव पडा अपने हाथ की प्याली, जिसमे से उसने केवल दो घूँट चाय पी थी, मेज पर रख दी। शैल भाभी कह रही थी—"सुषमा के पिता के विचारो को मै स्वय अच्छा नही समझती ' 'पर क्या किया जाए। हमे कुछ बोलने का हक नही ··।" वे कुछ रुककर बोली—"सुषमा बहुत अच्छी लडकी है काश वह हमारे घर मे आ जाती, मै उसे इसी घर मे रखती—बडे प्यार से रखती ' लेकिन···लेकिन क्या किया जाय मजबूरी है···।" और वे चुप हो गई। बात समाप्त हो गई। जैसे सारी कहानी का अत हो गया ·· सारा खेल खत्म हो गया ···सपनो का महल ढह गया···

सुरेन्द्र शैल भाभी के मुँह की तरफ देखता रहा। कितनी जल्दी उन्होने एक फैसला दे दिया था और कैसे वे किसी कहानी की तरह, किसी समाप्त हो जाने वाली कहानी की तरह, चुप हो गई थी···बिलकुल चुप ···।"

कैफे !

अचानक एक परिचित स्वर ने उसे चौंका-सा दिया। वही कैफे था और वही वातावरण। वह परिचित स्वर मिस्टर चाचा का था। वे स्थानीय कालेज मे अर्थशास्त्र के प्रोफेसर थे। सामने की ओर एक कुर्सी से पीठ टेके, 'गुडइवनिंग' कह रहे थे। साथ उनके, उनकी मिसेज भी थी। वे मुस्करा रही थी। उनके अभिवादन का उत्तर देते हुए वह भी मुस्करा दिया। और फिर उसकी दृष्टि कैफे मे चारो ओर घूम गई। उस समय वहाँ लोगो की सख्या कुछ बढ गई थी। मदरासी परिवार अपनी बातो मे खोया हुआ था। और पारसी दम्पति के पास उनके अपने कुछ और लोग आ विराजे थे। उसने बेरे से आमलेट और काफी लाने को कहा और फिर अपने विचारो मे खो सा गया।

× × ×

सुरेन्द्र बहुत शीघ्र सुषमा के निकट हो गया था। और फिर जल्दी वह उसके बारे कुछ निश्चयात्मक रूप से अन्य कई बाते सोचने के लिए मजबूर हो गया। शैल भाभी की बाते उसके कानो मे निरतर गूँज रही थी। वह रह-रह कर सुषमा और उसकी असमर्थताओ पर विचार कर रहा था। क्या उस पर अपने घर का इतना बोझ है और उसकी जिम्मेदारियाँ कुछ इतनी अधिक बढी हुई हैं कि वह अपनी मर्जी से कुछ सोच भी नही सकती और क्या स्वय उसके लिये सुषमा के बारे मे अधिक सोचना, उसे कल्पनाओ के भव्य मन्दिर की देवी बनाना एक

मूर्खता है·· । वह अमीर नही । पैसे वाला नही । वह बेकार है, नौकरी की तलाश मे परेशान है । लेखनी की आय से उसका जब खर्च चलता है । वृद्ध पिता की कमाई से पेट भरता है···। क्या उसके लिये सुषमा की कल्पना करना मूर्खता नही ! किन्तु जब वह उससे बीते दिनो की मुलाकातो को याद करने लगा, उसकी बातें और उसके विचार उसे स्मरण हो आए, तो उसे शैल की बाते केवल एक शका ही जँचने लगी । सुषमा के पिता के चाहे जो विचार हो वे चाहे जो सोचे, किन्तु सुषमा स्वयं ऐसा नही सोच सकती । शैल भाभी को केवल भ्रम है । वे गलत कहती हैं । फिर वह सोचने लगा । नही, भाभी भला ऐसी गलत बात उससे क्यो कहेगी । वे तो स्वय सुषमा को इस घर मे लाने की चिता मे हैं । सुषमा का उनके मन मे कितना आदर है । यह बात अवश्य ही सच होगी । सुषमा अपने पिता के इशारे पर चल रही होगी । वह भी चाहती होगी उसका सम्पर्क किसी अमीर घर के लडके से हो । तभी तो प्रेमी जी से उसकी मित्रता है । वह अवश्य ही किसी अमीर घर के सपने देख रही होगी । और वह सोचने लगा, यदि वास्तव मे वह ऐसा ही सोचती है तो वह निरी मूर्खा है । वह अपने आप को धोखा दे रही है । वह मुँह से बोलती कुछ है और मन मे सोचती कुछ और है । जैसे कोई जुआ खेल रही हो ! जो उस से किसी बात की आशा रखता है, वह भी किसी बडे मूर्ख से कम नही · !

किन्तु इतना कुछ सोच लेने पर भी उसे यह विश्वास नही हो रहा था कि सुषमा केवल एक भ्रम एक छल और मृग मरीचिका है । सुषमा उसकी नजरो मे एक 'कल्चर्ड' लडकी थी । जो सामाजिक और पारिवारिक ज्ञान से वचित नही थी ।

कभी वह सोचता था, यदि सुषमा अपने पिता ही के समान कुछ सोचती है, ता इसमे बुरा क्या है ? उसकी जगह जो भी लडकी होती

वह ऐसा ही सोचती और उसे भी यही-कुछ पा सकने की इच्छा होती जिसे कि सुषमा पा जाना चाहती है !

कई दिनो तक वह इसी प्रकार संघर्ष मे खोया रहा। उसी बीच वह सुषमा से कई बार मिला। उसने उसके इरादो को कई बार बातो बातो ही मे समझ लेने की कोशिश की। किन्तु उसके पल्ले कुछ भी नही पडा। समस्या उसके लिये और भी जटिल होती गई। सुषमा उसके और निकट आती जा रही थी। यह बढता हुआ स्नेह, यह आदर और श्रद्धा, उसके मन मे और अधिक सघर्ष का जाल बुन रही थी !

एक बार उसका जी चाहा, वह उससे साफ-साफ कुछ पूछ बैठे आखिर इस कहानी का अत कहाँ और कैसे होगा, फिर वह इच्छा रख के भी उससे कुछ न पूछ सका। वह अपने ही मन से बार-बार पूछता रहा····"ऐ रे मन ! तू सुषमा से क्या सुनना चाहता है, बोल···?

लगभग एक महीने के संघर्ष के बाद एक दिन वह सुषमा को काफी हाऊस मे ले गया, जहाँ वह बैठ कर शाँति पूर्वक बाते कर सकता था। उस दिन वह कैफे मे बैठा बहुत देर तक साहित्य और राजनीति की बाते करता रहा। फिर पारिवारिक जीवन और व्याह-शादी की बाते। लेकिन जो बात वह उससे पूछना चाहता था, वह इच्छा रख कर भी नही पूछ सका।

उसके चेहरे के भोलेपन और आँखो मे छिपी एक करुणा को देख कर मन ही मन अपने आप को कहता—'तुम कितने मूर्ख हो सुरेन्द्र तुम मे कुछ भी समझ सकने की योग्यता नही··· हीरा और पत्थर, तुम्हारे लिए दोनो एक समान है··· !'

जब वह कुछ अधिक क्षणो के लिये मौन था, एक बार सुषमा उस से बोली—"सुरेन्द्र जी मैंने आपकी उपन्यासिका नकल करली है।कुछ ही पृष्ठ शेष रह गये हैं। कल-परसो लौटा सकूँगी · !"

"इसके लिये मै तुम्हारा कृतज्ञ हूँ" वह बोला—"यदि तुम मदद न करती तो शायद मै प्रकाशक से किया गया अपना वायदा पूरा न कर सकता। इस खुशी में, मै प्रकाशक से प्राप्त की हुई रकम तुम्हारे हवाले कर दूँगा।"

"क्यो ऐसा सौदा तो आपने मुझ से नही किया था···" मुस्कराती हुई बोली।

"तो समझ लो यह सौदा अभी ही हो गया···मजूर है तुम्हे···?" और वह कुछ गभीर स्वरो मे बोला—"एक लेखक को प्रकाशक देता ही क्या···? कुछ इतना भी नही कि जिस मे वह आराम से बैठ कर चार दिन रोटी ही खा सके।"

सुषमा कहने लगी—"मैने सुना है कोई-कोई प्रकाशक अपने लेखक को किसी-किसी पुस्तक के चार-पाँच सौ रुपये दे दिया करता है·· क्या यह सच है? "हाँ सच है···" सरेन्द्र बोला—"क्या चार पाँच सौ रुपए बहुत हैं···?"

सुषमा बोली—"जी···! सच पूछिए तो मेरी नजर मे पाँच सौ की रकम बहुत है···भले ही यह किसी लेखक का उचित पारिश्रमिक न हो····।

वह सुषमा के मुँह की ओर देखता हुआ बोला—"मै तुम्हारी मजबूरियो को जानता हूँ सुषमा···।" उसने एक दीर्घ निःश्वास छोडी—"मजबूरी इन्सान को अपनी इच्छाओ के विरुद्ध बहुत कुछ करने और बोलने के लिये मजबूर कर देती है···!"

"मै आपका मतलब नही समझी···।" आश्चर्य से उसने पूछा।

"मतलब···।" वह कुछ सोच कर बोला—"मान लो कोई मजबूरी है। उसके कारण हम अलग हो जाते हैं। हमारा बधन टूट जाता है। लेकिन सच कहो क्या हम ऐसा चाहते हैं···?"

"आप यह कैसी बाते कर रहे है···?" उसे उसकी बातो पर और भी आश्चर्य हुआ। लेकिन सुरेन्द्र उस समय इससे अधिक और कुछ नही बोला।

किन्तु जब वे कैफे से निकल कर घर की ओर लौट रहे थे, सुरेन्द्र ने कहा—" सुषमा मै तुम्हारे पिता जी से मिल कर कुछ बात करना चाहता हूँ। तुम्हारी क्या राय है···?

"मै क्या बोलूँ " कीजिये···?" उसका उत्तर सक्षेप मे था।

"कुछ बुरा तो नही मानेगे···?"

"क्यों ? बुरा क्यो मानेगे···"

सुरेन्द्र ने कहा—"मैने सुना है वे कही तुम्हारी शादी कर रहे है !"

"कहाँ ' ?" उसके शब्दो मे आश्चर्य था।

"मै इतना बताने मे असमर्थ हूँ पर है वे रुपए-पैसे वाले···!"

"मुझे कुछ मालूम नही···"वह झुँझलाहट मे बोली—लेकिन··· लेकिन आप से यह किसने कहा ' ?"

"ऐसे ही एक उडती हुई खबर सुनी थी मैने····"

"सब झूठ है···" वह कुछ कडे स्वरो मे बोली—"मेरा अभी ऐसा कोई इरादा नही।"

"क्यो····? यह कोई बुरी बात तो नही····तुम्हारे पिता जो कर रहे है, वह तुम्हारे भले ही के लिये कर रहे है···" मानो सुरेन्द्र ने उसके मन की टोह लेने के लिए इतना कुछ कह दिया। किन्तु वह बोली—"आज आप कैसी अजीब बाते कर रहे हैं। मेरी समझ मे नही आ रहा····!"

"मैने ऐसा ही कुछ सुना है सुषमा।" वह धीरे से बोला—"और

यह सब सुन कर बड़ा अजीब सा लगता था। मै बहुत-कुछ सोचने पर मजबूर हो गया हूँ—सचमुच बडी विचित्र बात करने लगा हूँ मै···क्या मेरी बाते तुम्हे बुरी लग रही है···?"

"बहुत हद से ज्यादा···!" वह कह कर मौन हो गई!

"तो लो मै कुछ भी नही बोलता। सडक का एक मोड घूमते हुए वह बोला—"चलो आज बस मे चले···बडी थकान हो रही है मुझे···!" और वे मौन हो बस-स्टेड की ओर बढने लगे।

११

एक दिन सुषमा उसके लिये बिल्कुल अपरिचित थी, और फिर एक दिन अकस्मात ही वह प्रकाश की नाईं उसकी आँखो के सामने दीप्तिमान हो उठी, वह उसे देखकर किसी पथभ्रांत पथिक की तरह उसकी ओर बढने लगा। और जैसे-जैसे वह उसके निकट होने का प्रयत्न करता रहा, वह रोशनी उससे दूर होती गई। और वह शून्य मे भटकने लगा। वह सुषमा को कुछ समझा और कुछ नही भी। इसलिये उसे शैल भाभी की बातो पर विश्वास करना ही पडा कि सुषमा क्या चाहती है। कुछ दिनो के पश्चात इसी सम्बन्ध मे वह शैल के पास फिर गया। उस दिन उसके चेहरे पर उदासी छाई हुई थी।

शैल ने सदैव की भाँति विनोद पूर्वक उससे कहा—"क्या बात है··· इस बार बहुत जल्दी दर्शन दिये है देवर महाराज···क्या कोई नया माचार लाए हो··?"

"नही । नया समाचार कोई नही भाभी ।"

"कुछ उदास नजर आते हो क्यो ·· ?"

"सिर दुख रहा है···।"

"मै दबा दूँ···?"

'छी. भाभी ! भला क्या बडो से भी दबवाया जाता है ?"

"तो कहिए क्या सेवा करूँ ?"

"मै कुछ जरूरी बाते करने आया हूँ भाभी ··।"

तब शैल कुछ गभीर होकर बोली—"बोलो क्या बात है·· ?"

वह कुछ सोच मे पड गया और कुछ क्षणों तक मौन रहा । फिर बोला—"क्या आपका यह अटल विश्वास है कि सुप । एक बहुत अच्छी लडकी है ।"

वे बोली—"मुझ से क्या पूछते हो ? अपने मन से पूछो···।"

"अपने मन पर मुझे विश्वास नही···मै तो आपसे पूछ रहा हूँ···।"

"अच्छी है और बहुत अच्छी···मेरे मुँह से बार-बार यही निकलेगा कि वह बहुत अच्छी है ।"

"फिर वह अपने पिता के कथनानुसार गलत राह पर क्यो चल रही है···?"

"मजबूरी है। तुम भी तो गरीब होकर किसी अमीर घर की लडकी से शादी की बात सोच सकते हो ।"

"यदि मै ऐसा सोचूँ तो क्या आपके विचारो मे यह ठीक है···।"

"बिल्कुल ठीक है···"

"उस दिन आप कह रही थी कि सुषमा के ब्याह की बात किसी फोरमैन के लड़के के साथ चल रही है, किन्तु उसे तो कुछ भी मालूम नही···।"

"क्या उसके लिये यह आवश्यक है कि वह तुम्हे अपनी सारी बाते बताए ··।"

वह चुप हो गया और फिर कुछ देर तक सोचता रहा।

शैल बोली—"क्या सोचने लगे···?"

वह बोला—"मै सुषमा के पिता से मिलना चाहता हूँ भाभी।"

"क्या करोगे मिलकर···?"

"कुछ बाते करना चाहता हूँ।"

"क्या बाते करना चाहते हो ? मै भी सुनूँ···।"

"मै सुषमा के पिता को यह बता देना उचित समझता हू कि वह फोरमैन के लडके से ब्याह नही करना चाहती।"

"तो फिर किससे करना चाहती है···?"

"उसका तो अभी ब्याह करने का इरादा ही नही भाभी।"

वे होठो मे मुस्करा दी—"नही बेचारी कवाँरी रहना चाहती है··· और सारी उम्र कवाँरी ही रहेगी।

बाहर आँगन मे अखबार वाला अखबार फेक गया। शैल उसे उठाने चली गई। और जब वे वापस आई; उससे बोली—"मै तेरा मन अच्छी तरह जानती हूँ पगले ! तू मुझसे कोई बात न छिपाया कर। जो कुछ कहना हो साफ-साफ कह दिया कर···अन्त मे मै ही तेरे काम आ सकती हूँ। मै भी सुषमा को उतना ही चाहती हूं जितना कि तू चाहता है। मेरी यह इच्छा है कि वह तुम्हारी हो जाय। पर उसे अपने घर मे लाने का क्या उपाय करूँ, मै यही सोचती रहती हूँ···।"

वह बोला—"भाभी मेरे विचारो मे हमे उन पर कोई दबाव नही डालना चाहिए।"

"अच्छा तुम धीरज धरो। मैं स्वयं उनके यहाँ जाऊँगी।" इतना कहकर शैल कुछ गंभीर विचारो में खो गई।

× × ×

और ठीक इस वार्ता के तीसरे दिन वे सुषमा के यहाँ गई। सुषमा के पिता से उनका कुछ पहले का परिचय था। इसलिये वे उससे बहुत देर तक घर-बार की बाते करती रही। फिर वे सुषमा की बाते करने लगी। इसी बीच बोली—"ऐसी जवान बेटी घर मे कँवारी बैठी है। इसके कही हाथ पीले क्यो नही कर देते···।"

सुषमा के पिता ने कहा—"तो कोई लडका बताओ मुझे···।"

शैल ने कहा—"लडका क्या कही बाहर ढूँढना होगा···वह तो अपने घर ही मे है।"

"कौन है···?" उसने पूछा।

"सुरेन्द्र···शायद उसे आप जानते होगे···" शैल बोली।

"ओह! सुरेन्द्र···।" वह हंसकर कहने लगा—"मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ···लेकिन बेटी यह कैसे सभव हो सकता है। ऐसे मामलो मे तो बहुत दूर की बाते देखनी पड़ती है।"

"हाँ बोलिये! कौन सी ऐसी बात है जो आप सोचना चाहते है?" शैल ने उत्सुकता प्रकट की।

"क्या कहूँ···' वह कुछ सोचकर बोला—"शैल तुम यह अच्छी तरह जानती हो कि सुषमा मेरी एक ऐसी बेटी है जिसे मैने बडे लाड़ से रखा और बडे प्यार मे पाला है। मैं चाहता हूँ कि जो बात भी हो इसकी इच्छा के अनुकूल हो···यह जहाँ जाए वहाँ सुखी रहे···इसलिए मेरा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि मैं काफी सोच-समझकर कदम उठाऊँ।"

शैल ने कहा—"मैं आपका मतलब समझ गई। आप आवश्यकता से कुछ अधिक सोचते हैं। लेकिन आप यह याद रखिए कि रुपया और धन देखकर ही तो लडकी कुएँ मे नही फेक दी जाती। विचारों का भी तो कोई महत्व होता है। सुषमा और सुरेन्द्र के विचार और भावनाएँ मिलती-जुलती है···वे आपस मे प्रसन्न और सुखी रहेगे।"

सुषमा का पिता सन्देह पूर्ण शब्दो मे बोला—"इसका मुझे कैसे विश्वास हो···।"

"सुषमा और सुरेन्द्र एक दूसरे को चाहते हैं।"

"सुषमा ने तो कभी मुझसे इसकी चर्चा नही की।"

"पूछ लीजिये।"

सुषमा का पिता कुछ क्षण मौन रहकर बोला—"तो मुझे क्या इन्कार है···मैं उससे पूछूँगा। लेकिन मेरे विचार मे तुम्हारी धारणा बिल्कुल गलत है। मैं उससे पूछ कर तुम से फिर मिलूंगा।"

सुषमा के पिता के इन वाक्यो मे टालने का भाव था। और वह चाहता था बात कुछ आगे न बढे और यही समाप्त हो जाए। शैल कुछ निराश होकर वहाँ से लौट आई। जो-जो बाते वहाँ हुई थी वे सारी उसे कह सुनाईं। उसे भी यह बाते सुनकर कुछ निराशा और दुख हुआ।

शैल बोली—"सुरेन्द्र! यदि सुषमा चाहे तो इस काम में बडी आसानी से सफलता मिल सकती है। किन्तु यदि उसके विचारो मे भी कोई पैसे वाला समाया हुआ है तो फिर समझ लो कि वह जुआ खेल रही है और इसका नतीजा तुम्हारी बदनामी के अतिरिक्त और क्या होगा···?"

सुषमा का चेहरा सुरेन्द्र की आँखो के सामने घूम रहा था और वह मौन था।

शैल कहती गई — 'अच्छा अब, जब सुषमा यहाँ आएगी मैं स्वय उससे यह बात पूछूँगी।"

सुरेन्द्र कुछ निराशा पूर्ण स्वरो मे बोला—"बेकार है भाभी ! आप क्या करेगी पूछकर ? उसे सब मालूम है। वह सारी बाते जानती है।"

"तुम स्त्री की मजबूरियो को नही जानते सुरेन्द्र। उसे बहुत बातो के लिए तैयार करना पडता है। क्योकि वह मुँह मे जबान रखकर भी कुछ बोलने मे असमर्थ होती है ··।"

"ठीक है तब पूछ देखिए"। वह उन्ही स्वरो मे बोला—"लेकिन अब मैं सुषमा से नही मिलूँगा। मुझे उसके विचारो से घृणा हो गई है !"

"तुम मन ही मन अधिक मत कुढो।" शैल बोली—"मुझे उस से मिल लेने दो···फिर तुम कोई फैसला करना···।"

इसके पश्चात् शैल उसे कोई नौकरी कर लेने की सलाह देने लगी ! वे कहने लगी—"भारत मे लिखने के पेशे से बहुत कम किसी का पेट भरा है। लिखने-पढने का शौक भी आजकल बेकार लोगो के शगल यानि मनोविनोद में गिना जाने लगा है। कुछ लोग तुम्हे बेकार आदमियो मे गिनते हैं। फिर भला तुम से अपनी लडकी कौन ब्याहेगा ···?"

वह स्वय अपनी इस कमजोरी को बुरी तरह अनुभव कर रहा था। वह हमेशा सोचता रहता था, बिना नौकरी किए और चार पैसे कमाये गुजर नही। नौकरी की उसे आज से नही लगभग एक वर्ष से तालाश थी, जब से कि उसने एम-ए किया था। ज्यो-ज्यो उसे अपनी बेकारी खल रही थी, उसे अपने आप से और एक हद तक अपनी लेखनी से भी घृणा होती जा रही थी। यह लेखन कला जो एक हद तक बेकारी की दशा मे उसके लिये पेशा बन गई थी, उसे बहुत मँहगी पडी थी। इसी के कारण वह अति भावुक बन गया था। इसी ने उसे इतना कोमल बना

दिया था कि निराशा की आंधी मे वह फूल की पखुडियो की तरह बिखर जाता था। वह सदा सपनो की दुनिया मे रहता। और कभी कल्पना के महल से नीचे गिरकर अशांति और निराशा की रेत मे धँस जाता। उसे चारो ओर अधकार ही अंधकार दिखाई पडता। वह कराहता हुआ सोचता, क्या किसी भी भावुक व्यक्ति का यही परिणाम होता है'' ?

१२

एक बार सुरेन्द्र के एक मित्र ने उससे कहा था—"भाई ! जब आदमी बेकार रहता है। तब उसे प्रेम इत्यादि की बाते बहुत सूझती हैं, और जब यह बेकारी दूर हो जाए, तब वह शांति पूर्वक जीवन की कुछ आवश्यक बातो को कुछ अच्छे ढग से सोचने लगता है। उस मित्र की बातो की सत्यता का ज्ञान एक हद तक अब सुरेन्द्र को भी होता जा रहा था। अपनी बेकारी उसे खलने लगी थी। नौकरी के लिये उसकी परेशानी कुछ बढ सी गई थी। घर वालो के ताने उसे अलगदम नही लेने देते थे। उसकी इच्छा हुई कि वह कलकत्ता जाए। उसके एक साहित्यिक मित्र ने उसे वहाँ आने की राय दी। वह बडे सघर्षमे था कि क्या करे ! अपनी इच्छा से वह कलकत्ते जा भी नही सकता था, क्योकि उसकी वृद्ध माता उसे नौकरी के लिए कही बाहर जाने देना नही चाहती थी।

उन्ही दिनो एक हाई स्कूल मे कुछ महीनो के लिए अध्यापक की जगह खाली हुई। प्राइवेट स्कूल था, वहाँ वेतन सौ-सवा सौ से अधिक नही मिल सकता था। लेकिन उसने फिर भी प्रार्थना-पत्र दे ही दिया। किसी प्रकार वह अपनी बेकारी दूर करना चाहता था। वह अपने आप को किसी अच्छे काम मे लगा कर,

फिर निश्चित हो भविष्य के बारे मे भी कुछ सोच सकता था, उसे उस स्कूल मे बुलावा आ गया और वह अध्यापक रख लिया गया। अध्यापक का काम सेवा का काम है। इसे वह अच्छी तरह जानता था, किन्तु वह उनकी दयनीय दशा से अनभिज्ञ नही था। उसने अपने जीवन मे अध्यापक बन कर समाज के इस एक अभिशापित वर्ग मे शामिल होने का कभी सकल्प नही किया था। पर उसे यही मार्ग ग्रहण करना पडा। इससे उसकी बेकारी का मसला कुछ महीनो के लिये हल हो गया था! क्योकि नौकरी कच्ची थी।

एक दिन जब वह संध्या के समय स्कूल से घर लौट रहा था, मार्ग पर उसे हरिचरन आती दिखाई दी। उसने चाहा, वह कतरा कर एक ओर निकल जाए, किन्तु फिर उसने अपने आपको इतना अधिक दुर्बल प्रकट करना उचित न समझा। और चलता हुआ उसके निकट पहुँच गया। हरिचरन उसे देखकर मुस्कराई··· "आप ?"

'हा !" उत्तर मे वह भी मुस्करा दिया।

'आज आपने इतनी सारी पुस्तके अपने हाथ मे ले रखी हैं···" हरिचरन ने प्रश्न किया · कुछ उत्सुकता प्रकट की···।

'स्कूल की पुस्तके है " कुछ और मुस्करा कर वह बोला— "मै मास्टरी करने लगा हूँ न !"

"क्यो ?" हरिचरन के मुँह से निकला।

उसका सिर नीचे झुक गया—"मै इसका क्या उत्तर दूँ ···"और फौरन उसने पूछा—"क्या यह कोई अच्छा काम नही ··?"

'नही-नही। मेरा यह मतलब नही" हरिचरन शीघ्रता से बोली। उसके चेहरे का रग कुछ फीका पड गया। फिर सुरेन्द्र खुद ही बोला— 'हाँ एक बात है कि इसमे पैसे कम मिलते हैं 'लेकिन ·· वह कुछ रुक कर बोला—"बेकारी से तो यह मास्टरी अच्छी ही है···" और किसी दफ्तर की क्लर्की से तो कई सौ गुने अच्छी। हमारे नेताओ के

शब्दो मे मास्टर याने अध्यापक देश के सच्चे सेवक होने हैं।" उसके मुँह से हल्की सी व्यग पूर्ण हँसी फूट पडी।

"और लेखक···?" हरिचरन भी मुस्कराती हुई पूछ बैठी।

"ओह लेखक···!" वह उसी तरह हँसता हुआ बोला—'उस जैसा बेवकूफ दुनिया मे और है कौन ..?"

हरिचरन उसके मुँह की ओर देखती रही।

"उसने बात का प्रवाह बदलने हुए पूछा—"इस समय आप अकेली कहाँ चली?"

"वह वहाँ तक जाना है···" उसने सामने एक फ्लेट की ओर सकेत किया—"मेरी एक सहेली रहती है वहाँ।"

"अच्छा तो आज्ञा।" सुरेन्द्र ने अपने दोनो हाथ जोडते हुए कहा—"आप को देर हो रही होगी·· हम फिर मिलेगे।"

"आप तो वायदा करके भी हमारे यहाँ नही आते। भला हम फिर कब मिलेगे ·!?" हरिचरन उसे एक प्रकार का उलाहना देती हुई बोली।

"अति शीघ्र ···।" वह बोला—"मुझे अपने वायदे याद है ···।"

"तब घर आइयेगा न ?" वह कुछ विश्वास लिए हुए बोली—"ममी आप से एक बहुत जरूरी बात करना चाहती हैं ··वे आपकी बहुत प्रशसा करती थी।" कहते कहते उसकी आँखो मे एक हल्की सी लज्जा सिमट आई।

"क्यो···मेरी प्रशंसा वे किस लिये करती थी···?"

सुरेन्द्र के होठो पर एक चचल मुस्कान खेल गई।

हरिचरन की आँखे नीचे झुक गई। वह बोली—"मुझे क्या पता वे आपकी प्रससा क्यो करती है···?"

"मै सारी बाते समझ गया हूँ · " सुरेन्द्र भाव पूर्ण शब्दो मे बोला— 'मै कल-परसो तक आपके यहाँ अवश्य आऊंगा।"

फिर हरिचरन कुछ नही बोली। उसके चेहरे पर फूटती हुई प्रभात की सी लाली फैल गई।

फिर वे वहाँ से विदा हुए। एक विचार लिए, एक भाव लिये हुए, जो नये रूप मे अचानक इस भेट के कारण उनके मन मे जागृत हो उठे थे। सुरेन्द्र सडक पर चलता-चलता सोच रहा था, हरिचरन कौर को समझना कुछ कठिन है भी, और नही भी। न जाने पगली कैसी कैसी भावनाएं अपने मन मे पाल रही है। आखिर मुझ से चाहती क्या है, खुल कर क्यो नही कहती · और जो कुछ वह सकेत रूप मे कहती है मै उसका अर्थ समझ कर भी नही समझता · हरिचरन कौर एक उलझन है जिसे सुलझाने मे कुछ देर लगेगी ··। फिर वह अपने बारे मे सोचने लगा ··मै भी कुछ अजीब हूँ जो प्रत्येक बात को अब बुद्धि की कसौटी पर परखने लगा हूं। मै किसी वस्तु के गुणो की अपेक्षा उसके दोष अधिक ढूँढ निकालता हूँ। मै किसी से क्या चाहता हूँ। शायद इसका मुझे स्वय ज्ञान नही। इसीलिये मुझ में किसी से स्पष्ट कुछ कह और पूछ लेने का साहस नही। इसमे मेरी कुछ अहमन्यता का भी दोष है। क्या जीवन की गुत्थियाँ तर्क से सुलझा करती हैं ? तर्क का स्नेह और प्यार की दुनिया में कोई स्थान नही ··!

वह इन्ही बातो मे खोया हुआ सा धीरे-धीरे सडक पर चलता चला जा रहा था। एक कार सरसराती हुई, उसके निकट से आगे निकल गई। कार मे बैठे हुए किसी व्यक्ति ने उस 'नमस्ते' कहा। लेकिन उस व्यक्ति की आवाज उसके कानो तक नही पहुँची। वह अपने विचारो मे मस्त चुपचाप आगे बढता गया।

कुछ आगे जाकर वह एक पार्क की ओर मुड गया। संध्या के

समय उस पार्क मे काफी चहल-पहल रहती है । वहाँ की चहल-पहल और रगीनी से उसे कोई खास दिलचस्पी नही। पर उस दिन उसका उसी ओर जाने को जी चाहता था। वहाँ शायद पार्क मे कितने ही रगीन फूल खिलते है···और हरे-भरे तरुवरो की शाखाओ पर नाना प्रकार के पक्षी, जीवन का कैसा मधुर सगीत अलापते रहते हैं। इतना ही नही, वहाँ और भी बहुत कुछ है, जिन्हे देखकर कुछ क्षणो के लिए अपना मन बहलाया जा सकता है · कुछ देर के लिए अपनी परेशानी मिटाई जा सकती है ?"

एक रिक्शे वाला उसके पास से गुजरता हुआ बोला—"बैठियेगा बाबू···?"

"नही-नही ··!" वह चौक सा गया। रिक्शे वाला आगे निकल गया। उसकी नजरे सडक के दोनो ओर खडे फ्लेट की ओर घूम गई, जिन पर डूबती हुई सध्या की छाया पड रही थी। वह वहाँ जैसे कुछ तालाश करने लगा ··पर उसे लगा···जैसे कोई उसके मन मे कह रहा है···'तुम एक मामूली टीचर हो···धरती के एक अभागे जीव ! ऊपर उन घरो की ओर क्या देख रहे हो···? अपनी नज़रे नीची झुका कर चलो, हाँ। नीचे, और चुपचाप आगे बढते जाओ। यही एक रास्ता है तुम्हारे लिये, जिसके दो किनारे हैं, केवल दो किनारे ! जो कभी आपस मे नही मिलते। सडक लम्बी है और तुम बीच मे चल रहे हो। इस प्रकार चलना एक प्रकार की मूर्खता है। एक किनारे होकर चलने ही मे बुद्धिमानी है।'

वह सोचने लगा, सच है अधो की तरह चलने से ठोकर लगने का अदेशा है···सडक पर ही नही जीवन के किसी मार्ग पर भी आँख खोल कर, और एक किनारे होकर चलने की आवश्यकता है ! उसके जीवन के मार्ग के दो किनारो पर उसके दो सहचर खडे है···एक है सुषमा

और दूसरी हरिचरन कौर···! और वह मार्ग के बीचों-बीच चल रहा है। यहां भी उसे एक किनारे होकर चलने की जरूरत है। उसकी आंखो के सामने सुषमा का चेहरा घूम गया। वह सोचने लगा, यदि सुषमा चाहे तो वह खुद उसका हाथ पकड कर अपनी ओर खीच सकती है। शैल भाभी की बाते उसे याद आने लगी। सुषमा एक गरीब लड़की है। वह बहुत-कुछ सोचती है। उसकी जगह जो भी लडकी होती उसे भी शायद वही कुछ सोचना पडता जो कि सुषमा सोचती है·· कौन यह नही चाहता कि उसका जीवन सुख से बीते। उसके जीवन मे आनन्द हो·· शाँति हो, उल्लास हो · उसमे सगीत हो, कहकहे हो ·· उसमे दर्द हो तडप हो · किन्तु निराशा और मायूसी न हो।' और सुषमा शायद यही कुछ चाहती है···! वाह कैसी मजे की बात है·· ' वह सोचता हुआ आगे बढता गया! सुषमा जैसे सब-कुछ लेना चाहती है ··पर देना कुछ भी नही चाहती। शैल भाभी ऐसी लीपा-पोती की बाते न जाने क्यो करती है ·। उसे भाभी की बातो मे कोई सार नजर नही आ रहा था। वह कुछ अपने बारे सोचने लगा। मै स्वय गरीब हूँ। मेरे अपने जीवन मे क्या है । वह मानो अन्दर ही अन्दर चीख उठा— "बोलो मेरे जीवन के मालिक, मेरे जीवन मे क्या है ? बोलो सडक के किनारो, ऐ! फ्लैट की दीवारो बोलो, बोलो मेरे जीवन मे क्या है ? जिस दिन तुम्हारी जबान खुलेगी, जिस दिन मुझ से कुछ बोलोगे, उसी दिन मुझ सतोष मिलेगा, मेरी आंखे सही रास्ते को देखने लगेंगी! और मै समझ जाऊँगा कि मेरे जीवन मे क्या है! अभी तो मै आँखे बद किए सडक के बीच चल रहा हूँ। तब मै एक किनारे होकर चलने लगूँगा। तब मै पागल नही कहलाऊँगा और मेरी मंजिल आसान हो जाएगी। वह सडक पर धीरे-धीरे आगे बढता जा रहा था।

*

*

१३

उन दिनो दिल्ली से पधारे हुए एक कवि राही जी की नगर मे बड़ी चर्चा थी। उन्होने अपने मित्रो से सुरेन्द्र से मिलने की कई बार इच्छा प्रकट की थी। किंतु उन दिनो सुरेन्द्र अपने आपको भूल चुका था। वह बहुत कम किसी से मिलता था। साहित्यिक गोष्ठियो और कवि सम्मेलनो मे शामिल होना तो दूर की बात थी। वह अपने आपको किसी ऐसे मुसाफिर की तरह समझता था, जो एकाकी ही किसी पथ पर चलता है। और जब एकाएक आकाश पर घने बादल छा जाते हैं, तब धरती पर छाया हुआ झुटपुटा उसे प्रिय लगने लगता है। क्योकि ऐसे वायुमडल मे सफर अच्छा कटता है। किन्तु जब आकाश पर मेघ गरजने लगे और मूसलाधार वर्षा आरम्भ हो जाए, तब वह अकेला बटोही आश्रय पाने के लिए व्याकुल हो उठता है। उसकी भटकी हुई आँखे कोई सुरक्षित स्थान ढूढती हैं। और प्रकृति का वह रूप जो कभी उसे भव्य दीख पडता था, अब भयानक दिखाई देने लगता है। इसी प्रकार काव्य और कवियो तथा लेखको की गोष्ठियाँ पहले उसे अच्छी लगती थी किन्तु अब वह उनसे दूर भागता था।

राही जी का शैल भाभी से कुछ पहले का परिचय था। वे उनकी मुँह बोली बहिन लगती थी। वे कभी दिल्ली मे, एक ही मुहल्ले, एक ही गली मे पास-पास रहते थे। राही जी का शैल के यहाँ प्रति दिन का आना-जाना था। और वे शैल के मुँह से सुरेन्द्र की प्रशसा सुनते रहते थे।

राही जी दिल्ली मे एक साप्ताहिक पत्र के सम्पादक थे। दिल्ली से

बाहर वे अपनी पत्रिका के जीवन सदस्य और आम ग्राहक बनाने की खातिर दौरे पर निकले थे। इसी सम्बन्ध मे उनका इस नगर मे भी केवल पन्द्रह दिनो तक ही ठहरने का इरादा था। दिन भर की दौड धूप के बाद जो अवकाश इन्हे मिलता उसमे वे शैल के यहाँ चले जाते। वहाँ घन्टो बातो मे खोए रहते। कई वर्षो से रॅडवे थे। तबियत पहले ही से कुछ रोमांटिक थी। बाद मे वह आवारगी की सूरत अख्तियार कर गई थी, बातो से उनका मन ही नही भरता था। थे भी कुछ स्पष्टवादी। जो मन मे आता बक देते। बात उन्हे पचतो नही थी। एक ओर उनकी स्पष्टवादिता जहाँ उनकी प्रशंसा बन जाती थी, दूसरी ओर यह उनकी एक बहुत बडी दुर्बलता की भी द्योतक थी। वे प्राय अपनी भूलो और मूर्खताओ की चर्चा कर बैठते थे। इसका तो यह मतलब था कि वे अपनी त्रुटियो से परिचित थे और उनमे उन्हे मुँह मोड लेना आवश्यक था, किन्तु वे ऐसा न कर अपनी गलतियो को बार-बार दोहराते थे। हमेशा की तरह उन्हे हवाई किले बनाने की आदत थी। प्रत्येक सुन्दरी को वे अपने प्रेम मे फँसा हुआ देखते थे और हर ओर से उन्हे मुँह की खानी पडती थी। उनके मिजाज की आवारगी दूर नही होती थी। शराब और व्यभिचार से उनका साथ नही छूटता था। इसलिये उनकी स्पष्टवादिता मे पुरुषो का सा पुरुषत्व नही झलकता था, बल्कि कायरो की सी निर्लज्जता का आभास मिलता था।

सुरेन्द्र ने उन कवि महोदय की यह सारी तारीफे सुन रखी थी। उसे आश्चर्य था, न जाने शैल भाभी ऐसे गिरे हुये आदमी को अपना भाई मानने को कैसे तैयार थी ?

एक दिन वह इसी बात को लेकर शैल से मिलने को गया। देखा वे कवि महाशय वहीं विराजमान है। वे बडी बेतकुल्लुफी से उनसे बाते कर रहे थे। शैल भाभी और भैय्या राही जी को समझा रहे थे, वे शराब न पीया करे। शैल कह रही थी—"शराब पी-पी कर तो तुमने

अपना स्वास्थ्य बिगाड लिया है। तुम अच्छे आदमियो की तरह रहा करो। अच्छा जीवन बिताओ क्योकि तुम साहित्यकार हो, एक पत्र के सम्पादक हो। तुम समाज के सेवक हो। तुम पर एक जिम्मेवारी है, इसलिए तुम्हे एक आदर्श उपस्थित करना चाहिये ताकि जनता तुम्हारा अनुकरण कर सके।"

कवि महोदय शैल की बातो को मजाक मे टाल रहे थे। वे अपने आप को और अधिक मजनूँ प्रकट करने की धुन मे लगे हुए थे। अपने कैरेक्टर पर उन्हे पूरा विश्वास था। रही शराब की बात, तो उसे उनके लिए छोडना कुछ कठिन था। वे शराब तब तक नही छोड सकते थे जब तक कि उनके मन से सुरजीत नाम की किसी सुन्दरी की याद नही जा सकती थी, जिसे कि उन्होने कभी प्यार किया था। और उस कठोर हृदय लडकी ने उनका प्यार ठुकरा दिया था। अक्सर उन्हे उसकी याद आ जाती थी। उसे भूल जाने और गम गलत करने के लिए ही वे सुरा देवी का आश्रय लेते थे।

शैल राही जी की बकवास सुनने को तैयार नही थी। उनके विचारो मे यह सब-कुछ उनके एकान्त जीवन की प्रतिक्रिया थी। क्योकि वे ब्रह्मचर्य का पालन करने मे असमर्थ थे। ब्याह उन्होने सुरजीत ही से करने का निश्चय किया था।

शैल उन्हे बडे स्नेह से किसी दूसरी अच्छी स्त्री से ब्याह कर लेने की सलाह दे रही थी।

खैर यह बाते तो होती रही। इनका कोई अन्त नही था। शैल ने जब कवि महोदय का परिचय सुरेन्द्र से कराया, तब वे बडी उत्सुकता से उससे मिले। शुभ समाचार के बाद उनके मुँह से हर्ष पूर्वक निकला--- "बधाई है आपको मिस्टर सुरेन्द्र ··।"

"किस बात की बधाई···?" सुरेन्द्र को आश्चर्य हुआ !

"आप और मिस सुषमा···" वे मुस्करा दिए

"शैल बहिन ने मुझे सारी बाते बता दी है। मुझे सुन कर बडी खुशी हुई। आप सब की इच्छाएँ पूर्ण हो, यही मेरी शुभ कामना है।" वे मुस्कराते ही रहे।

"ओ···! Thank you !" उसके मुँह से निकला और सोचने लगा···ये कवि जी भी बडे विचित्र हैं।

अभी उनमे आपस मे और कोई बात नही हुई थी कि अचानक राही जी कुर्सी पर से उठ खडे हुए और शैल से बोले—"बहन अब आज्ञा दीजिये, मै चला···।"

वे बोली—"अरे, अभी तो तुम आकर बैठे हो। दो बाते की और चल भी दिए। इतनी भी क्या जल्दी है···बैठो भोजन करके जाना। सुरेन्द्र बैठा है। इससे बाते करो। साहित्यिको की बाते सुनने मे बडा आनन्द मिला करता है।"

"हमारी बाते फिर कभी सुन लेना बहन !" कहकर राही जी ने सुरेन्द्र से क्षमा याचना की—"क्षमा करना बन्धु हम फिर मिलेगे···इस समय मुझे एक जरूरी काम से कहीं पहुँचना है।" और वे उठकर चल ही दिए।

सुरेन्द्र के मुँह से निकला—"बडा अजीब आदमी है भाभी····।"

भाभी ने गहरी साँस ली। और बोली—"हाँ कुछ ऐसा ही है···।"

'लेकिन इस प्रकार उनका अचानक उठकर चले जाना," सुरेन्द्र ने सदेह प्रकट किया—"इस मे अवश्य कोई रहस्य है।"

"होगा···!" वे धीरे से बोली।

"आप ने नाहक उनके सामने, उनकी आवारगी, शराब और फिर शादी-ब्याह की चर्चा छेड दी। सुषमा और फिर मेरा नाम लिया" सुरेन्द्र ने शैल से एक प्रकार की शिकायत की। इसके उत्तर मे वे बोली—"फिर क्या हुआ जो मैने यह बाते की तो···मुझे उसकी यह आदते बिल्कुल पसन्द नही। जितना मै उसे एक बहन के नाते प्यार करती हूँ, उतनी ही मुझे उसकी आदतो से घृणा है। इस कलमुँहे ने इन्ही घृणित वस्तुओ के पीछे अपना जीवन नष्ट कर लिया है।" उनकी आँखो मे आँसू उमड आए।

बाहर फाटक के खुलने का स्वर सुनाई दिया। उन्होने अपनी ओढनी के आँचल से अपनी आँखे पोछ डाली। धीरे से बोली—"देखो तो सुरेन्द्र कौन आया है।"

खिडकी का परदा सरका कर सुरेन्द्र ने बाहर देखा। आने वाला शैल का छोटा भाई था। उसने कहा—"रन्जीत सिह आया है।"

वे बोली—"इसे कोई कम आवारा न समझो—सवेरे का गया हुआ अभी घर लौटा है। देखो तो नौ बज रहे हैं न। घर मे कोई मरे या जीये, इसकी बला से ··।"

रजीत ने मुस्कराते हुए कमरे मे प्रवेश किया—"क्या शिकायत हो रही है मेरी ··।"

शैल बोली—"तुम ठहरे राजा। किस की मजाल है जो तुम्हारी शिकायत करेगा। न जाने सारा दिन कहाँ-कहाँ की खाक छानते हुए अब घर लौटे हो · घर वालों की भी तुम्हे कोई चिन्ता रहती है···?"

रजीत बोला—"अच्छा दीदी मै मुँह-हाथ धोकर जरा कपडे बदल आऊँ। तब इसका जवाब दूँगा····क्या बताऊं कि आज मै किस जरूरी काम से बाहर गया था···" इतना कह वह अपने कमरे मे चला गया।

तब शैल ने सुरेन्द्र से सुषमा की चर्चा छेड दी। उन्होने फिर सारी बातें दोहरा दी, जो वे सुषमा के पिता से कर चुकी थी। जिन्हे सुनकर सुरेन्द्र के मन पर फिर एक आघात पहुचा। शैल उसे विश्वास दिलाते हुए बोली—"तुम धीरज धरो सुरेन्द्र। मै फिर एक बार उनके यहाँ जाना चाहती हूँ·· अतिम बार और इसका फैसला करके ही आऊँगी।"

सुरेन्द्र चुप रहा। कुछ बोला नही। एक विद्रोह की भावना उसके मन मे उठी। सुषमा···सुषमा···क्या सुषमा एक समस्या बन गई है, जिसका सुलझाना कठिन है। सुषमा क्या हेलन और क्लुपिट्रा बन गई है। क्या शरत की पार्वती के दर्जे को पहुच गई है जिसके पीछे कोई देवदास की तरह अपना जीवन बलिदान देगा। सुषमा शायद अभी अधूरी है। उसके बारे मे अधिक सोचना मूर्खता है।

किन्तु वह स्वयं उसके बारे मे कुछ न कुछ सोचता ही रहा, पर मुँह से कुछ नही बोला। शैल जो कुछ बोलती रही, वह चुपचाप सुनता रहा। कुछ देर बाद वह भरा हुआ दिल लेकर उस जगह से उठ खडा हुआ। शैल उसे बैठने के लिए कहती रह गई। किन्तु वह फिर आने का वचन दे, उनके घर मे विदा हुआ। घर पलटते हुए वह रास्ते मे सुषमा की अपेक्षा कवि राही जी के बारे कुछ अधिक सोच रहा था। जिन्होने एक सुरजीत कौर के पीछे शायद सचमुच अपने आपको देवदास बना लिया था।

*

*

१४

राही जी ने अपने एक मित्र जसवत राय से जो कि कविता इत्यादि से प्रेम रखता था, और उनका भक्त भी था, सुषमा की चर्चा की।

जसवत राय का सुषमा के यहाँ कभी आना-जाना था और उसका मुँह बोला चचा लगता था। लेकिन यह रिश्ता भी बहुत पहले टूट चुका था। जसवत राय को जब यह पता चला कि सुषमा की कुछ कविताएँ प्रकाशनार्थ पहुँची थी, और उन्होने उसकी कविताएँ प्रकाशित भी की थी, तब उसने यह मुनासिब समझा कि उन दोनो की आपस मे भेट करा दी जाए।

राही जी ने कहा—"सुषमा एक होनहार लडकी है। उसमे बहुत सारे गुण हैं, और त्रुटियाँ भी। मैं उससे मिलकर उसकी कविता के बारे कुछ बाते करना चाहता हूँ ···।"

जसवत राय दूसरे ही दिन राही जी को सुषमा के यहाँ ले गया। उनका आपस मे परिचय कराया। सुषमा राही जी से बिल्कुल अन्जान थी। बल्कि वह जीवन मे पहली बार उनका नाम सुन रही थी। किन्तु यह जान कर कि वे किसी साप्ताहिक पत्र के सम्पादक हैं, उन से आदर पूर्वक मिली। राही जी उसे ध्यान पूर्वक देखते हुए, यूनान की कथाओ मे पढी, किसी देवी की कल्पना करते रहे। सुषमा मानवी है या साक्षात लक्ष्मी का स्वरूप·· ! वे सोचने लगे, कौन ऐसा अभागा होगा जो इस से मिल कर खुश नही होता होगा। शराब के नशे मे डूब कर किसी व्यक्ति को शायद सपने मे वह कुछ नज़र नही आता, जिसे आँखे यथार्थ

की दुनिया मे देख लेती है। उन्होने सुषमा से मिल कर बड़ी प्रशंस प्रकट की। आज तक उन्होने न तो उसकी कोई कविता पढी थी, और न सुनी थी। फिर भी वे उसकी झूठी तारीफ के पुल बाँधने लगे। इसी बीच वे यह भी बोले—"सुषमा देवी, आपने कविताएँ मुझे प्रकाशनार्थ भेजी थी। मैने वे सारी की सारी एक ही अक मे छाप दी थी। वह अक आपको भेजा गया था। आपने अवश्य ही उसे पसद किया होगा। लोगो ने तो उस अक की विशेष रूप से प्रशसा की थी। और विशेष कर आपकी कविताओ की तो और अधिक !"

सुषमा न तो उनकी पत्रिका का नाम जानती थी और न कभी उसने प्रकाशनार्थ वहाँ उनके पास कोई कविता ही भेजी थी। इसलिए वह बोली—'राही जी मुझे तो ऐसा कोई ख्याल नही जो मैने कभी अपनी कविता प्रकाशनार्थ आप के पास भेजी हो।"

राही जी ने कुछ कृत्रिम आश्चर्य प्रकट किया, और बोले—"सुषमा देवी, कविताएँ तो आप ही के नाम से आई थी। सभव है किसी ने शैतानी की हो। आजकल के युवक कवि प्राय· ऐसी हरकते करते ही रहते हैं। कभी वे किसी देवी की सहानुभूति और प्रशसा प्राप्त करने के लिए, और कभी उसे बदनाम करने के लिये उसके नाम से अपनी कृतियां भेज दिया करते है। शायद आप से भी किसी ने ऐसी ही हरकत की हो···क्या आपको यहाँ किसी पर सदेह हो सकता है ? कोई कवि और लेखक यहाँ है, जो अपने आपको आप के बहुत निकट समझता हो····? आपको याद रखना चाहिये कि उन भेजी हुई कविताओं मे एक कविता बडी ही रोमान्टिक थी। और पढने वाले आपके साहस पर 'अश अश' कर रहे थे। अपने प्रश्नो का उत्तर सुनने के लिए वे बोलते बोलते रुक से गए। किन्तु सुषमा को चुप देख वे फिर बोले—"अक्सर ऐसी बातो के लिए लोग सम्पादको को जिम्मेवार ठहराते हैं। पर इस मे बेचारे सम्पादको का क्या दोष है। वे तो कोई अच्छी रचना पाकर उसे छापने

की करते हैं। चाहे वह किसी के भी हाथो की लिखी हुई क्यो न हो ! लेकिन सुषमा देवी मै आपके बारे मे यह सतोष पूर्वक कह सकता हूँ कि आप खूब लिखती हैं !"

वह मन ही मन बहुत खुश हुई और पूछ बैठी—"यह आपने कैसे जाना···?"

वे बोले—"हमारा हमेशा लिखने-पढने वालो ही से पाला पडता रहता है। भला हम आपके बारे इतना भी नही समझ सकते !"

"तब तो यह आपकी बडी कृपा है···" सुषमा के होठो पर एक लज्जा भरी मुस्कान की रेखा खिच गई ! राही जी ने पैंतरा बदल कर कहा—"क्या कवि सुरेन्द्र से आपकी जान-पहचान है···?"

"हाँ है तो···क्यो···?" सुषमा उनके मुँह की ओर देखने लगी।

"ओह !" वे कुछ नाटकीय ढग से बोले—"अब मै पत्रिका मे आपके नाम से कविताएँ भेजने की बात समझ गया !"

"नही आप कुछ गलत समझते हैं।" सुषमा उनके विचारो का खडन करती हुई बोली—"वे ऐसा नही कर सकते' ··अभी वे मुझे इन बातो से बहुत दूर देखते हैं ···तब वे भला···"

"ठहरिये···!" सेवक जी बीच मे ही बोल उठे—"मुझे आप यह बताएँ क्या आप भी अपने को साहित्य और कला से दूर ही समझती हैं ? यह तो स्वहीनता के भाव हैं। आप मे साहित्यिक प्रतिभा है। आप पर्लसबक और विर्जीनिया ऊलफ बन सकती हैं। सरोजनी नायडू और महादेवी वर्मा बन सकती हैं।"

सुषमा हर्ष से खिल उठी। उसे ऐसा अनुभव हुआ, जैसे राही जी ही वे पहले व्यक्ति हैं, जिन्होने उसकी विशेषताओ को समझा है और उसके

गुणो को पा लेने का प्रयत्न किया है। उसे मानो स्वयं अपने निजत्व का ज्ञान हो आया। वह अपने उस मुहबोले चाचा पर भी बहुत प्रसन्न हुई जो राही जी को उसके यहाँ ले आया था। उस दिन उसने उनकी खूब आवभगत की। और जब राही जी उसके यहाँ से बिदा हुए''' उसने उन्हे फिर अपने यहाँ आने का निमत्रण दिया। उन्होने यह निमत्रण स्वीकार कर लिया।

जब वे वहाँ से चले, उनका मन कुछ भारी था। सुपमा का चेहरा उनकी आँखो के सामने घूम रहा था। उसके चेहरे पर छा जाने वाली लज्जा, उसके होठो पर खेलने वाली मुस्कराहट'''सब-कुछ उसकी आँखो के आगे घूम रहा था। उसका मधुर स्वर '''उसकी बाते, उसकी हल्की-मीठी हँसी, सब-कुछ उसके कानो मे गूँज रहा था। वे अपने मित्र से बोले—"सुपमा बडी भोली है'''।"

"हाँ है तो'''।"

"अभी तक इसका ब्याह तो नही हुआ न'' शायद ब्याह की बात भी कही पक्की नही हुई होगी'''।"

"नही'''।"

"इसके लिये एक बहुत अच्छा लडका तलाश करना पडेगा। जो इसके विचारो को समझ सके'''जो इसे लिखने-पढने और हँसने-गाने की स्वतन्त्रता दे सके। पक्षी चहकते, फुरफुराते ही अच्छे लगते हैं। मेरे मित्र यदि उन्हे पिजरे मे बंद कर के कैद कर दिया जाए तो वे अपनी भाषा, अपना राग भूल जाते हैं।"

"मै तुम्हारा मतलब नही समझा।"

"अरे मैने सुना है सुरेन्द्र नाम के एक घासलेटी साहित्यिक से इसके ब्याह की बात हो रही है। उस दो कौडी के मास्टर से। भला सुपमा

से उसका क्या मेल है। सुषमा एक बड़े घर की शोभा बनने योग्य है। सुरेन्द्र और सुषमा का क्या जोड है''''उँह ''। यह सुषमा के हक मे बहुत बुरा होगा, तुम देखते नही उसका 'जग जग' करता हुआ चेहरा''' उसकी नशे मे डूबी हुई आँखे ''उनमे · उनमे'''" वे स्थिति का ख्याल रखते हुए आगे कुछ बोलते-बोलते रुक गए। बडी कठिनाई से उन्होने अपने मन के वेग को संभाला और फिर चुपचाप आगे बढने लगे।

मित्र महाशय ने एक बार उनके चेहरे की तरफ बडे गौर से देखा और फिर बोला—"बधु ऐसी बातें क्यो कर रहे हो। तुम्हे शायद मालूम नही कि सुरेन्द्र ओर सुषमा एक दूसरे को प्यार करते हैं। और हम उनके प्रेम की सफलता के इच्छुक हैं।"

राही जी यह बात सुनकर मौन रह गए। पर मन ही मन यह बात सुन कर वे बडे ही बौखलाए। और शायद यही कारण था कि दूसरे दिन जब वे सुषमा के यहाँ गए, मित्र बधु को उन्होने साथ नही लिया। उस दिन वे सुषमा से कुछ खुल कर बात करना चाहते थे। पर इसका उन्हे मौका नही मिला। सुषमा की अपेक्षा उसके पिता ही से उस दिन उसकी बाते अधिक हुई। जब वे सुषमा के पिता के सामने सुषमा की झूम-झूम कर प्रशसा कर रहे थे, वह वृद्ध बोला—"रा ी जी! मै इस लडकी के बारे बहुत परेशान हूँ। यदि किसी अच्छी जगह इसके हाथ पीले हो जाते तो सुख की साँस लेता।"

राही जी बोले—"आपका सोचना वाजिब भी है। सुषमा एक सयानी और पढी लिखी लडकी है। इसके लिए कुछ सोच कर कोई अच्छा घर ढूँढना पडेगा, जहाँ इसके विचार और भावनाएँ नया जीवन पाती रहे।"

"मैने इसे बडे दुलार और प्यार से रखा है राही जी। मै चाहता हूं

यह जहाँ जाए सुख से रहे। मुझे कभी इसके दुख की चर्चा न सुननी पडे।"

"हाँ, आपका ऐसा सोचना बहुत ही उचित है। पर मेरे मन मे एक बात आती है···" राही जी कुछ रुक कर बोले—"यदि सुषमा इस घर मे चले जायगी तो आप की सेवा कौन करेगा···और कौन रसोई बना कर देगा और कौन घर सँभालेगा···?"

सुषमा के पिता यह बात सुनकर मौन रहे। परन्तु मन ही मन राही जी की बुद्धि की सराहना किए बिना न रह सके। राही जी कहते गए—"यह सारी बाते भी तो देखनी होगी आपको ···। खैर इसकी चिंता न करे। स्वय इस पर कुछ सोचकर आप को बताऊँगा।"

सुषमा के पिता का माथा नीचे झुक गया।

राही जी उस दिन वहाँ से लौटने से पहले सुषमा से बोले—"सुषमा देवी! आप के पिता को आपकी जितनी चिंता है, शायद उसका एक अश भी आपके मन मे नही है। देखिए! एक अच्छे पिता के नाते वे आपके बारे में कैसी कैसी-सुन्दर बाते सोच रहे है··।"

"मै जानती हूँ···।" सुषमा धीरे से बोली—"जो वे सोचते हैं वह सभव नही···।"

"क्यो···क्या तुम अपने और उनके भविष्य से निराश हो···?"

भैया। 'तुम' का शब्द सुनकर सुषमा के मुँह से निकला—स्त्री को ऐसी बातो के लिये जीवन मे बहुत-कुछ सोचना पडता है। और वह अपने बारे मे जितना अधिक सोचा करती है, उसे निराश भी उतना ही होना पडता है।"

'भैया' के शब्द ने राही जी को कुछ सँभाला दिया। वे कुछ गभीर

से होकर बोले—"मै तुम्हारे भावों को समझता हूँ सुषमा ··और शायद मुझ से अधिक इन्हे और कोई न समझ सके। लेकिन तुम्हे निराश होकर मजबूरियो के सामने सिर नही झुकाना चाहिये...। हाँ।" फिर वे कुछ रुक कर कहने लगे—"इस सम्बन्ध मे आज मेरी तुम्हारे पिता जी से काफी बाते हुई हैं। तुम्हे उनकी मरजी के खिलाफ बिल्कुल नही चलना चाहिये।"

मै उनकी इच्छा के विरुद्ध क्या करती हूँ···" सुषमा कुछ चौक कर बोली—"वे तो कभी मुझ से कोई शिकायत नही करते।"

"वे · वे शायद तुम्हारा और सुरेन्द्र का मिलना पसन्द न ी करते। और···और वे शायद सुरेन्द्र के हाथ मे तुम्हारा हाथ देना भी मुनासिब नही समझते " राही जी ने बडा मौका देख कर तीर छोडा। जो ठीक निशाने पर लगा। सुषमा का चेहरा लाल सुर्ख हो गया और उसका सिर नीचे झुक गया। पर राही जी रुके नही और वे बोलते गए—"तुम कोई चिन्ता न करो···मै तुम्हारे लिए सब कुछ करूँगा। मुझ से जो कुछ भी हो सकेगा, उसके लिए कसर नही उठा रखूँगा। तुम्हे अपने पिता के विचारो का ख्याल रखना चाहिये। वे वृद्ध है, और किसी पके हुए फल के समान है, जो किसी भी समय जीवन की शाखा से टूट कर गिर सकता है। मै उनकी आज्ञानुसार दिल्ली जाकर, कुछ सोच विचार कर तुम्हे पत्र लिखूँगा। तुम मेरे पत्रो का उत्तर देती रहा करना। मै तुम्हे अपने जीवन मे कभी भी निराश नही होने दूँगा। जैसे तुम और तुम्हारे पिता कभी सोचा करते थे, वैसा ही होगा।"

सुषमा राही जी की बातों को सुनती रही। कही उनकी बातो का मतलब उसकी समझ मे आ रहा था और कही नही। पर वह उनकी बातो को चुपचाप सुने जा रही थी।

राही जी ने अपनी बातो का उस पर और अधिक प्रभाव जमाने

की खातिर उसके सामने कुछ ऐसे उदाहरण रखे, जिनसे यह प्रकट होता था कि लडकियाँ अपने पिता और माता के सुख के लिये कई-कई वर्ष कुँवारियाँ रह कर नौकरी कर-कर के अपना और उनका पेट पालती रही हैं। यद्यपि इस बात पर उन्हे शक था कि उन लडकियो के पिता, सुषमा के पिता की तरह अफीमची और शराबी भी थे या नही। अत मे वे आस्कर वाईल्ड का वह कथन दोहराने लगे, जिसमे सुख-दुख और मनुष्य की कामनाओ की व्याख्या है। और कहा गया है कि इस ससार मे केवल दो ही दु ख है। एक यह कि मनुष्य जिस वस्तु की कामना करता है, वह उसे प्राप्त न हो और दूसरा यह कि वह उसे प्राप्त हो जाए।' न जाने क्यो यह सारी बातें सुनकर सुषमा की आँखो मे आँसू उमड आए।

१५

राही जी जितने दिन नगर मे रहे, सुषमा के यहाँ आते-जाते रहे। वे केवल दस-पन्द्रह दिनो के लिये वहाँ आए थे। किन्तु डेढ महीना ठहर गए। इन डेढ महीनो मे उन्होने काफी ख्याति प्राप्त कर ली। जितने दिन भी वे वहाँ रहे, नगर मे छोटे-मोटे कवि सम्मेलन और साहित्यिक गोष्ठियाँ होती ही रही। सुषमा एक प्रकार से उनकी शिष्या बन गई थी। और एक ही महीने मे उसकी चन्द कविताएँ भी कुछ पत्रिकाओ मे छप गई थी। किन्तु यह आश्चर्य की बात है, सुरेन्द्र से उनकी शैल के यहाँ प्रथम भेट के बाद फिर कोई दूसरी भेट नही हुई।

अचानक उन्ही दिनो शैल भाभी पजाब चली गईं। वे डेढ महीने बाद लौटी। तब तक राही जी दिल्ली पधार चुके थे। शैल के सामने

फिर सुषमा का प्रश्न था। उन्हे पिछली चर्चा भूली नही थी। वे चाहती थी, इस बात का कोई सही फैसला हो जाय। राही जी के बारे मे भी उन्होने कुछ ऐसी बाते सुनी, जिनकी बदौलत सुषमा की काफी निन्दा हो सकती थी। उन्हे ऐसी बाते सुनकर बहुत दुःख हुआ। इसलिए वे एक दिन अपनी इच्छा ही से सुषमा के यहाँ चली गईं। उन्होंने सुषमा के पिता से कहा—'भैया मै फिर अपना पुराना मतलब लेकर आई हूँ। शायद अब आप मेरी बातों पर अच्छी तरह विचार कर सकेंगे। मै सुषमा को माँगने आई हूँ। उस सुषमा को, यानि आपकी कन्या को, जिसके बारे मे लोगों ने बहुत सारी अफवाहे फैला रखी हैं। और जो बदनाम हो रही है।"

सुषमा के वृद्ध पिता ने आश्चर्य से पूछा—"कैसी अफवाह और कैसी बदनामी···?"

'आप स्वय समझ सकते हैं। राही जी इसके जिम्मेवार है। लोग सुषमा और राही जी के बारे तरह-तरह की बाते करते हैं।"

"कैसी बाते···? वह तो एक भला आदमी है।"

"मै उसे कब बुरा कहती हूँ। लेकिन मै उसे आप से अच्छी तरह जानती हूँ।"

"मै लोगों की बकवास की परवाह नही करता। मुझे अपनी बेटी पर विश्वास है। आप अपने मतलब की बात करे।"

तब शैल ने अपनी पुरानी माँग दोहराई।

उत्तर में शैल के पिता ने कहा—"मुझे तो सुषमा और सुरेन्द्र के सम्बन्ध से कोई इन्कार नही। किन्तु सुषमा इस बात के लिए राजी नही। उसे मना लीजिये···।"

शैल को पूरा विश्वास था सुषमा इस सम्बन्ध से कभी इन्कार नहीं

करेगी। बूढ़े के 'हाँ' कह देने से ही मानो उसे सफलता मिल गई थी। इसलिये वे कुछ गर्व से बोली—"आप तैयार रहे। मै उसे मना लूँगी· "

तब शैल सुषमा से मिली। वह अपने कमरे मे बैठी सारी बाते सुन रही थी। उसने सदैव की भाँति शैल का स्वागत नही किया और न ही उन्हे बैठने को कहा। शैल स्वयं ही उसके निकट जा बैठी। "तुम अच्छी तो हो सुषमा···?" वे बोली—"बडी मुरझाई सी दिखाई दे रही हो···?"

"अच्छी ही हूँ····।" सुषमा बोली—"तनिक सिर मे दर्द है···।"

"लो खुश हो जाओ·· " शैल बोली—"मै तुम्हारे लिए एक शुभ सन्देश लाई हूँ ।"

"कैसा शुभ सन्देश· ?" सुषमा ने पूछा।

"तुम्हारे पिता मान गए···" शैल बोली—"बस अब तुम्हारे हाँ करने की देर है···।"

सुषमा सुनकर चुप रही। मुँह से कुछ बोली नही। उसका माथा नीचे झुक गया।

शैल भाभी बोली—"क्यो···तुम क्या सोचने लगी ··? तुम जानती हो मुझे किस-किस तरह से और कितनी दौड-धूप के बाद यह सफलता मिली है। मै तुम्हे प्यार करती हूँ सुषमा। मै तुम्हे बहुत अच्छे रूप में देखना चाहती हूँ। मै चाहती हूँ तुम और सरेन्द्र दोनो एक हो जाओ। दोनो मिलकर साहित्य की सेवा करो। यश प्राप्त करो।" और फिर कुछ रुककर बोली—"तब तुम दोनो मुझे याद तो रखा करोगे···अपने साथ कभी मेरा भी नाम ले लिया करना···।"

सुषमा फिर भी मौन रही।

वे कहती गईं—"मैने सुना है राही जी जितने दिन यहाँ थे, प्राय तुम्हारे यहाँ आया-जाया करते थे। तुम्हारा उनसे कैसे परिचय हो गया ? वे काफी बदनाम है। लोगो मे तरह-तरह की बाते फैली हुई है। आखिर क्यों · क्या तुम कुछ भी नही सुनती···?"

इस बार सुषमा धीरे से बोली—"लोग तो बेवकूफ हैं।"

"हो सकता है" शैल कुछ संभल कर बैठती हुई बोली—"लेकिन तुम्हे तो अपना ख्याल रखना चाहिए···राही जी भी तो मूर्ख हो सकते है। तुम उन्हे मुझसे अधिक नही जानती। अपने कुछ मित्रो के सामने उन्होने कुछ गैर जिम्मेवारी से काम लेते हुए अपना मुँह खोला था। तुम्हारे सम्बन्ध मे कोई अनुचित बात उनके मुँह से निकली थी, जो आग की तरह हर जगह फैल गई।"

"हो सकता है····" सुषमा माथा झुकाए हुए बोली—"स्त्री को बदनाम कर देना पुरुषो के लिए कोई बडी बात नही। लेकिन दीदी··· क्या आपको भी ऐसी गन्दी बातो पर विश्वास है।" वह शैल के मुँह की ओर देखने लगी।

"अरी पगली" वे हँसकर बोली—"तू मुझे इतना नादान समझने लगी अब। मै भला इन फालतू बातो पर कैसे विश्वास करने लगी। हाँ मै तो तुम्हे सचेत रहने को कह रही थी। और ··" वे कुछ रुककर बोली—"अब तो तू हमारे घर आ जाएगी। मै तुम्हे अपने पास रखूँगी। सारी बाते अपने ही आप समाप्त हो जाएँगी···क्यो रहेगी न मेरे पास···?"

"लेकिन दीदी···।" वह कुछ कहती-कहती रुक-सी गई।

"लेकिन क्या···?" शैल बोली—"जरा खुलकर बोलो···मै तुम्हारे मुँह से 'हाँ' सुनने आई हूँ।" वे कुछ और उत्सुकता से बोली—"ठीक से

'हाँ' कहो ताकि मै तुम्हारे पिता से कहकर सारी बातो का फैसला कर सकूँ।"

सुषमा मौन रही। और उसका माथा फिर नीचे झुक गया।

शैल कहती गई —"क्या बात है···क्या अब भी कुछ सोचना बाकी है···?"

सुषमा धीरे से बोली—"दीदी अभी आप यह बात रहने ही दे। मेरा अभी ऐसा कोई विचार नही।"

शैल के हृदय पर एक प्रहार सा हुआ। और उनके मुँह से निकला "क्यो···?" एक रंग उनके चेहरे पर आया और एक चला गया। सुषमा से उन्हे ऐसे कोरे जवाब की आशा नही थी। उन्हे सुषमा के मुँह से निकले शब्दो पर विश्वास नही हो रहा था। फिर उनके मुँह से निकला—"क्यो···? सुषमा तुम कुछ बोलती क्यो नही। कुछ उत्तर दो···।"

किन्तु सुषमा ने चुप साध ली थी।

शैल फिर बोली—"मै तुम से कुछ पूछ रही हूँ सुषमा। कुछ जवाब दो। फिर बोलो, जो तुमने अभी-अभी कहा था···क्या तुम्हारे विचार सचमुच बदल गए है·· यह तुम बोल रही हो या कोई और बोल रहा है···तुम मुझ से नाराज तो नही हो गई'। क्या मेरी बाते तुम्हे बुरी लग गई ··· बोलो···।"

और सुषमा ने अपना चेहरा दूसरी ओर घुमा लिया।

तब शैल भाभी की दशा उस व्यक्ति जैसी थी जिसके मुँह पर किसी ने भरी सभा मे तमाँचा जड़ दिया हो। वह व्यक्ति जिसने किसी का उपकार किया हो और उस उपकार का बदला उसे एक तमाँचा मिले।

शैल को तब कुछ भी न सूझा। वह और क्या बोले···क्या करे। मौन बैठी रह गई। सुषमा के मुँह की ओर देखती रही···देखती रही और फिर अपने माथे की ओढनी ठीक करती हुई उठ खडी हुई। वह धीरे-धीरे द्वार की ओर बढी। द्वार के निकट पहुँच कर उसने मुड कर उसकी ओर देखा और कहा—'सुखी रहो सुषमा ··मै तुम्हे कभी नही भूलूँगी और तुम भी यह न भूलना कि मै एक दिन तुम्हारे पास आई थी और वह भी तुम्हारे लिए···" और शैल भाभी कमरे से बाहर निकल गई। मन ही मन यह शब्द दोहराते हुए · कि सुषमा यह न भूलना, मै तुम्हारे पास एक दिन आई थी, तुम्हारे लिए लेकिन तुमने मुझे आँख उठा कर भी नही देखा। बैठने तक को भी नही कहा। मुझे इसका गुस्सा नही दुःख अवश्य है। मुझे इसका दुःख है कि तुम आवश्यकता से अधिक बदल गई···तुम मेरे लिए सोना थी और कोयला हो गई···भगवान तुम्हे सुखी रखे···।'

शैल सुषमा से मिलकर फिर सीधी घर की ओर चल दी। उसके पिता से फिर दोबारा नही मिली। घर वापस आकर वे खूब रोई। एक अपमान और क्षोभ के कारण। प्यार मे पलने वाली निराशा के कारण। सुषमा से उसे ऐसे व्यवहार की आशा नही थी।

१६

दूसरे दिन शैल सुरेन्द्र के यहाँ गई और उस से पिछले दिन की सारी बाते कह सुनाई। सुरेन्द्र को यह सब जान-सुन कर थोडा आश्चर्य हुआ। किन्तु इतना नही, जितना की शैल को हो चुका था। वे कहने

लगी—"अच्छे सुरेन्द्र तुम्हे जान, सुन कर दुःख तो अवश्य हुआ होगा, किन्तु मै तुमसे कहूंगी, तुम उस मूर्ख लडकी का विचार अपने मन से निकाल दो। वह तुम्हारे योग्य नही। मै विश्वास के साथ कह सकती हूँ कि हमारा उसे बुद्धिमान समझना निरी मूर्खता है।"

सुरेन्द्र ने कहा—"भाभी! हमे उस पर नाराज होने की क्या जरूरत है। यह तो दिल मिलने की बात है। ऐसे काम के लिए मै किसी पर दबाव डालने के पक्ष मे नही। मै नही चाहता कोई ऐसा ढोल मेरे गले मढ दिया जाए, जिसे बजाना मेरे लिये अनिवार्य हो जाए। भले ही उसमे से कोई सुर या ताल निकले या न निकले। प्रत्येक स्त्री या पुरुष विवाह सम्बन्धी बातो मे अपनी इच्छा का मालिक है। किसी को किसी ऐसे काम के लिए, मेरे विचारो मे विवश नही किया जा सकता।"

शैल की आंखो मे आंसू उमड आए। वे बोली—'सुरेन्द्रमैने कभी सपने मे भी नही सोचा था कि वह लडकी मुझे इतना बेवकूफ बना देगी। मै उसका कितना आदर करती थी, कितना प्यार करती थी उसे, और इसके बदले उसने मुझे क्या दिया, यह तुम स्वयं देख लो · ' उसने मेरा अपमान किया है। मै इसे कभी नही भूलूंगी। वह अपने जीवन को सफल बना सकने मे कौन सा तीर मारती है···पर तुम मुझे क्षमा कर दो मेरे अच्छे भैया। मै ही तुम्हारे सामने उसकी इतनी प्रशसा करती थी। मै ही उसके गुण गा-गा कर तुम्हे रिझाती रहती थी। मैने ही तुम्हारे दिल मे एक चिगारी सी भर दी थी, जो सुलग कर ज्वाला बन गई। मै तुम्हे जानती हूँ। तुम बडे ही भावुक हो। तुम इस घटना का बहुत अधिक प्रभाव लोगे। पर मेरे अच्छे सुरेन्द्र तुम उसके बारेमे कुछ भी न सोचना। उस मूर्ख लडकी को भूल जाओ और मुझे क्षमा कर दो···!" वे ओढनी के आँचल से अपनी आँखें पोछने लगी···।

'छी! भाभी ···" सुरेन्द्र बोला—"आप भी कैसी विचित्र बाते

करने लगी। भला कैसी चिगारी और कैसी ज्वाला ? क्या यहाँ देवदास की कहानी दोहराई जा रही है'''क्या लैला-मजनूँ और हीर राँझा के किस्से गढे जा रहे हैं। यह तो मानो इस आर्थिक युग के एक सौदे की बात हे। सौदा निपटा नही और काम बना नही। यह तो एक साधारण सी बात है भाभी' '। मै जानता हूं, सुषमा बहकावे मे आ गई है। उसे अपने भविष्य की उतनी चिन्ता नही, जितनी कि अपने पिता के लिए शराब और अफीम की चिन्ता है।" इतनी बाते कहकर वह कुछ क्षणो के लिए रुका और फिर कहने लगा—"भाभी इससे इन्कार नही कि मैने उसे पा जाने की इच्छा को अपने मन मे अवश्य स्थान दिया था। मैने समझा था, यदि वह मेरे जीवन मे आ जायगी तो मेरा कुछ सँवर जायगा। मुझे अपने साहित्यिक कार्यो मे उस से कुछ सहायता मिला करेगी, और इसी प्रकार शायद मै भी उसके कुछ काम आ सकूँगा। बस इसी एक लक्ष्य को लेकर मै उसकी ओर झुका था। वरना मै अपने आपको देवदास नही बना पाया। हाँ भाभी ! यह तो आप मानेगी ही कि जहाँ दो व्यक्ति, एक पुरुष और दूसरी स्त्री एक जगह मिल बैठते हैं, एक-दूसरे के जीवन मे समा जाते है, वहाँ एक से कई और बाते, कई और आवश्यकताएँ जन्म ले लिया करती हैं। यह तो आपस के इकरार और स्वीकृति की बाते थी। हम नही मिल सके, इसलिये कि ऐसा सयोग नही था। इस मे दुख और गुस्से की क्या बात है ! और फिर वह धीरे से बोला—"दुख सहने के लिए और कई बाते हैं भाभी'''बहुत सारी जिन्दगियाँ बहुत सारे गलत राहो पर भटक रही हैं।"

शैल की आँखो के आँसू थम गए। किन्तु वे चुप न रह सकी, और सुषमा की मूर्खता की चर्चा करती ही रही। शायद इस विचार से कि सुरेन्द्र के मन से उसका विचार बिल्कुल निकल जाए। अत मे उन्होने उसे शीघ्र ही कोई ब्याह कर लेने की राय दी। व स्वय कोई अच्छी लड़की ढूँढ निकालना चाहती थी। बस सुरेन्द्र के 'हाँ' कहने की देर थी।

पर सुरेन्द्र मौन था। वह गहर विचार सागर में डूब गया था। वह स्थिर होकर कुछ सोचना चाहता था।

और जब शैल उस से मिलकर विदा हुई ···उस समय भी कुर्सी पर स्थिर सा बैठा कुछ सोच ही रहा था। उसकी दशा किसी ऐसे रोगी जैसी हो गई थी, जिसे अचानक कोई दौरा पड जाता हो।

सबेरे से सध्या तक वह अपने कमरे ही मे बैठा रहा। जब कही छः बजने को थे, उसकी वृद्ध माता ने उसके कमरे मे प्रवेश किया। और धीरे से बोली—"बेटा आज बाहर नही निकलोगे···? क्या कर रहे हो बैठे-बैठे अन्दर ··?"

वह बोला—"कुछ नही माँ···जरा तबीयत ठीक नही है ··सिर दुख रहा है···।"

माता बोली—"बेटा मै कुछ बोलना नही चाहती थी, किन्तु मुझ से चुप भी नही रहा जाता। मुझ से कोई बात छिपी हुई नही। मै माँ हूँ, मै सब-कुछ जान लेती हूँ। बेटा ! पुरुष, स्त्री की अपेक्षा बहुत कुछ सोच सकता है। ऐसी-ऐसी बातो का दुख नही करना चाहिये। क्या यह एक बहुत बडी घटना है कि एक लडकी ने तुम से ब्याह करने से इन्कार कर दिया···। तुमने उसका आदर किया और उसने तुम्हारा अपमान। यह उसकी मूर्खता है। लेकिन मै तुम्हे बताए देती हूँ—ऐसी मूर्ख स्त्रियाँ जो हमेशा एक दरवाजे से दूसरे दरवाजे झाँकती रहती हैं, उन्हे आखिर पछताना पडता है, और फिर उसी द्वार के चौखट पर अपना माथा पटकना पडता है, जहाँ से कि उन्होने अपना मुँह फेरा था। मूर्ख स्त्रियो की दशा अँधेरे मे भटकने वाले उन दीवानों जैसी है, जो कि जब कोई रास्ता नही मिलता तो पत्थर पर सिर पटक कर जान दे देते है।"

सुरेन्द्र चुप सुनता रहा।

वृद्ध माता कहती गईं—'बेटा तुम शैल की बात मान जाओ। छोड़ो इन बडी-बडी पढी-लिखी लडकियो का ख्याल। उन्हे पैसे वाले घर चाहिये। हम गरीबो के घर उन मे से शायद किसी की भी गुज़र नही हो सकती। उन्हे खाने, पीने, पहनने और प्रत्येक बात की सुविधा चाहिये ·और यहाँ, यहाँ तो उसे सारा घर सँभालना पडेगा बेटा··· तुम शैल से 'हाँ' कह दो बेटा। एक अच्छी सी बहू हमारे घर मे आएगी तो यह घर स्वर्ग बन जाएगा। अब मैं बूढी हो चुकी हूँ। मेरी आँखो की ज्योति कमजोर हो चुकी है। मुझ से अब घर के काम नही होते। मै और कितने दिनो की मेहमान हूँ। मै चाहती हूँ मेरी आँखो के सामने ही सब काम हो जाएँ। एक बहू को इस घर मे हँसते-बसते देख लूँ··· अब और अधिक कुछ न सोचो· " फिर बात बदल कर बोली—"अच्छा अब चलो, कुछ खालो। सवेरे तुमने कुछ मुँह जूठा किया था, तब से अभी तक ऐसे ही बैठे हो। देखो आज पारो ने तुम्हारे मन पसद की खीर बनाई है। उनके पिता चार दिनो के लिए कलकत्ता गए हैं। बेचारी के लिए वर देखने। कितनी सुशील लडकी है यह···मुझे तो बिल्कुल पसद है···देखने मे भी सुन्दर· ·और···"और अचानक वे खडी खडी कमरे से बाहर जाने लगी। द्वार के पास रुक कर बोली—"मैं तुम्हारे लिए खाने को यही भिजवाए देती हूँ।"

वह मुँह से कुछ नही बोला। माता चली गई। उसने एक दीर्घ नि श्वास छोडा और झुक कर मेज की दरार से एक लिफाफा निकाला। उस लिफाफे मे सुषमा का एक फोटो था। वह फोटो हाथ मे लेकर बडबड़ाया "सुषमा तुम जीत गई, तुम जीत गईं—और मै हार गया। मै इस लिए हार गया कि मै मूर्ख सिद्ध हो गया। मैने तुम्हारी ओर हाथ बढाने की मूर्खता की थी···और अब, अब मै एक कहानी बन गया हूँ।"

उसने वह चित्र फिर लिफाफे मे रख दिया। और गोद से उसका

मुँह बद कर दिया। उस पर सुषमा का पता लिखा और दो आने की टिकट साट दी। वह फिर बडबडाया—"कितनी छोटी कहानी थी यह, जो अचानक खत्म हो गई···बिल्कुल अचानक।"

उसी समय द्वार पर आहट हुई। उसने मुँह घुमा कर देखा तो सामने पारो खडी थी। उसके हाथो मे परोसा हुआ थाल। वह धीरे से बोली—"मै अन्दर आ जाऊँ···?"

कुछ क्षणो तक वह उसे एकटक देखता रहा। फिर माथा हिला कर उसने उसे अन्दर आ जाने की अनुमति दे दी।

पारो ने परोसा हुआ थाल लाकर एक स्टूल पर रख दिया और फिर उस स्टूल को सरका कर सुरेन्द्र के सामने ले आई। वह धीरे से बोला—"क्या कमरे मे प्रवेश करने के लिए पूछना भी जरूरी था ··?"

"शायद मुझ से भूल हो गई···" पारो दबे-दबे स्वरो मे बोली—"क्षमा कर दीजिए···फिर ऐसी गलती नही होगी।"

फिर वह परोसा हुआ थाल देख कर बोला—"यह इतना सारा सामान किसके लिए ले आई ···मुझे तो भूख ही नही है।"

उसने पूछा—"क्या हुआ आपकी भूख को···? माता जी कहती थी, आप ने सवेरे से कुछ नही खाया···।"

वह बोला—"हुआ यह है कि मुझे भूख नही है। चूँकि सवेरे से भूख गायब है, इसलिए मैने कुछ नही खाया···।"

वह बोली—"क्यो! कहाँ गई आप की भूख···? भला मनुष्य की भूख भी क्या गायब हो जाया करती है। भूख तो हर एक को लगती है। सभी खाना खाते और पानी पीते है। इसलिए आप को भी जरूर भूख लगी होगी।"

उसने कहा—"अच्छा मैं तुम से बहस नही करूँगा। यह थाल उठा कर ले जाओ और इसका आधा कर के ले आओ।"

वह होठो मे मुस्कराती हुई सी बोली—"जितना आप को खाना है, खा लीजिये न। शेष लौटा ले जाऊँगी।"

वह कुछ खीझ कर बोला—'तुम नही मानोगी···मैं जानता हूँ तुम बहुत जिद्दी हो···" यह कहकर उसने एक चम्मच खीर का मुँह मे डाला। खीर सचमुच स्वादिष्ट बनी थी। वह धीरे धीरे खाने लगा।

पारो निकट खडी उसके उदास चेहरे को भाँपती रही। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे सुरेन्द्र को सचमुच भूख नहीं थी। वह जैसे उसका मन रखने को खा रहा था। परन्तु उसके हाथ का बना हुआ भोजन प्राय स्वादिष्ट हुआ करता है। इसीलिए सुरेन्द्र खा रहा था। खीर के साथ वह पूरी और तरकारी का भी स्वाद ले रहा था। वह खाते हुए भी कुछ सोच रहा था। पारो चुप खडी थी। फिर वह लोटे से एक गिलास मे जल उडेलने लगी।

सहसा सुरेन्द्र ने उससे पूछा—"क्या यह सब तुम ने बनाया है?"

"जी···।" वह धीरे से बोली।

सुरेन्द्र पूरी का एक कौर मुँह मे डालता हुआ बोला—"तुम बहुत अच्छा भोजन बनाती हो· जरा तुम्हारा हाथ तो देखूँ···देखूँ तो तनिक इन हाथो को जिनसे कि तुम इतना स्वादिष्ट भोजन बनाती हो···जरा सामने तो करो···।"

पारो मुस्करा दी। और लज्जा के कारण उसके चेहरे पर एक हल्की सी लाली दौड़ गई।

"देखूँ···।" सुरेन्द्र बोला—"दिखाओ मुझे अपनी हथेली···।"

उसने अपने दोनो हाथ आगे बढा दिए। वे सुन्दर कोमल हाथ, जिनमे काँच की लाल रग की चूडियाँ कगन से अधिक शोभा दे रही

थी। उन गोरे सुन्दर हाथो की हथेलियो पर अकित रेखाये, जो एक बिन्दु मे आरम्भ होती थी और कुछ वक्र धरातलो को मिलाती हुई हथेलियो की सीमाओ मे लुप्त हो जाती थी ··। वह कुछ मुस्कराता हुआ सा बोला— 'तुम्हारे भाग्य बडे अच्छे हैं···।"

"सच ···!" वह भी मुस्करा दी।"

"हाँ, तुम्हारी किस्मत बहुत अच्छी है पारो।" सुरेन्द्र उसके चेहरे की की ओर देखने लगा।

पारो के होठो पर हँसी खेल गई। उसकी नजरे नीचे झुक गई। वह बडे गौर से अपने हाथ की हथेलियाँ देखने लगी।

सुरेन्द्र ने धीरे से उस से पूछा—"ए री पगली तेरे पिता कहाँ गये हैं···?"

यह प्रश्न नही था। मानो पटाखा था, जिसके फूटते ही वह किसी बच्चे की तरह चौक उठी। उसने एक बार उद्विग्नता पूर्वक, किसी भय विह्वल हरिणी की सी आँखो से उसकी ओर देखा और शीघ्रता से कमरे के बाहर निकल भागी। सुरेन्द्र हँस दिया और उसे पुकार कर बोला—"ए री पगली, यह थाल तो उठाती जा मै और नही खाऊँगा। मेरा पेट भर गया है··।"

और वह पगली दीवार की ओट मे द्वार के निकट खडी पसीना-पसीना हो रही थी। उसका हृदय तीव्र गति से धडक रहा था···।

*

उस समय साँझ ढलने लगी थी, जब सुरेन्द्र घर से बाहर निकल कर नगर की सडके नाप रहा था। वह एकान्त, पागलो की तरह बे मतलब ही सडको पर घूम रहा था। उसे हर ओर अधकार और शोकाच्छन्न नीरवता सी छाई दिखाई दे रही थी। सारा नगर उसके लिए कब्रिस्तान सा बन गया था। वह घूमता 'नार्दन' टाऊन की ओर निकल गया। उधर उच्च श्रेणी के लोगो के बंगले थे। और नगर के अन्य स्थानो जैसी घुटन नही थी। बगलो के बरामदो मे विद्युत दीपो का प्रकाश मुस्करा रहा था। गृह वाटिकाओ मे एक रहस्यमयी मौन छाया हुआ था। किन्तु उन वाटिकाओ के पेड ऊँची हवा मे झूम रहे थे। जब जब बयार के झोके उन्हे छेडते और गुदगुदाते थे, वे खिलखिला उठते थे। उनके पत्ते एक विचित्र सी सरसराहट उत्पन्न करने लगते थे। और वहाँ का सारा वातावरण विभिन्न पुष्पो, जल चमेली, गुलाब और रजनीगधा की गध से सौरभ युक्त था।

वहाँ वह उसी वातावरण, उसी प्रशाँत स्तब्धता और शाँतिमय संसार मे खो जाने के लिए चला आया था। वह चाहता था उस सौरभ युक्त वातावरण मे उसकी साँसे भी सुगधित और सुरभित हो जाएँ, उसके पाँव धीरे-धीरे आगे की ओर उठ रहे थे। और ज्यो-ज्यो वह आगे बढता जा रहा था, वातावरण की शाँति और स्तब्धता भग होती प्रतीत हो रही थी। कही से वीणा और सितार के स्वर आते सुनाई दे रहे थे, और कही से रेडियो की सगीत लहरी आती सुनाई दे रही थी। उसके पाँव और शिथिल पडते जा रहे थे। वह अपने आप से पूछ रह

था—"सुरेन्द्र तुम कहाँ भटक रहे हो···किसकी तलाश है तुम्हे···? देखो ! यद्यपि तुम सँभल-सँभल कर धीरे-धीरे चल रहे हो। तथापि पेडो से झड कर धरती पर सोने वाले पत्ते तुम्हारे पैरो तले रौदे जा रहे है। वे तुम्हारा बोझ सह न सकने के कारण 'चर्र चर्र' चीख उठते है . । क्या तुम्हारे इन पाँवो की आहट किसी और के कानो तक भी पहुँचती है ··? एक मुसाफिर घूम रहा है। जिसकी मजिल का कोई पता नही। फिर उस मुसाफिर और आवारा मे क्या अतर है. .? इससे तो अच्छा था किसी वेश्यालय मे चले जाते···।"

'सचमुच मै आवारा हूँ···।' वह सोचता हुआ आगे बढ रहा था। 'मै मूर्ख हूँ।' उसे स्वय अपने आप पर दया आ रही थी—मै कितना मूर्ख हूँ ··मै आकाश की ओर मुँह उठाए, जैसे अपना हाथ फैलाए विधाता से ओस माँग रहा हूँ। 'ऐ ओस की बूँदो तुम मेरी हथेली मे एकत्रित हो जाओ···मै तुम्हे छूकर अपनी प्यास बुझाऊँगा ··ताकि मै सदैव प्यासा और अतृप्त ही रहूँ···मै बहुत बडा मूर्ख हूँ···।'

वह छोटी-छोटी सडको के मोड घूमता रहा। और फिर रायल होटल वाली सड़क पर आ गया। वहाँ से दो फर्लांग की दूरी पर एक चाराहा था और चौराहे के एक ओर एक चर्च। चर्च एक छोटे से उद्यान से घिरा हुआ था। वहाँ बिल्कुल शाँति छाई हुई थी। चर्च की खिडकियो के अन्दर दीप्तिमान प्रकाश के सहारे हाल मे छाई एक प्रशाँत मयी गम्भीरता का प्रभाव मन पर पडता था। चर्च की दीवारे मौन थी। इस मौन के पीछे एक कहानी थी···एक दास्ताँ और युगातीत का वैभव ! इसी प्रकार उसने मन्दिरो और मस्जिदो की दीवारो पर युगो की मौन कहानियो की छाप देखी है। वह सदैव उन्हे देखता है और मनुष्य के विकास को याद किया करता है। और उस दिन भी वह अपने आप को कुछ ऐसे ही विचारो मे उलझा देना चाहता था। क्योकि

वर्त्तमान से वह विरक्त था, भविष्य से अज्ञात किन्तु अतीत के बारे मे वह कुछ अश तक जानता था।

वह धीरे-धीरे आगे बढ रहा था। सडक के किनारे खडे कुछ बरगद के पेडो के मोटे-मोटे पत्ते वायु के प्रहारो से चीखते हुए, 'धप धप' नीचे झड रहे थे। उसे खलील जिब्रान की एक कहावत याद आ गई—जब घास के एक तिनके ने शिशिर मय पत्ते से कहा था। हाँ, शायद यही कहा था कि'''ऐ पत्ते तुम गिरते हुए शोर क्यो मचाते हो। तुम्हारे इस शोर ने तो मेर मधुर सपनो को भग कर दिया' ''

किन्तु उस समय उन झडने वालो पत्तो से इस प्रकार का प्रश्न करने वाला कोई नही था। कोई तिनका उनसे ऐसा सवाल नही कर सकता था।

युगो से धरती घूमती आई है और घूम रही है' 'और घूमती रहेगी और संसार इसे कभी देख सकेगा। संसार ने यह अनुभव किया है, जीवन इसी धरती पर जन्म लेकर फिर विनाश के अन्धकार मे खो जाएगा। इन्सान शायद तब भी इस धरती पर रोता ही था, जबकि वह जँगली कहलाता था और उसकी बुद्धि का विकास नही हो पाया था। और इन्सान आज भी रोता है जबकि वह सभ्यता के शिखर पर है। धरती घूमती है और आकाश के मेघ जल बरसाते हैं। धरती घूमती है और आकाश से बरफ गिरती है। धरती घूमती है तो लू चलती है, आग बरसती है। कभी बसंत आता है और कभी शिशिर। यह तो प्रकृति की आदत है। तब यदि आँखो मे झडने वाले आँसुओ की तरह पेडो से झडने वाले पत्ते अपनी युगो की आदत नही छोड पाए, तो इसमे आश्चर्य क्या है? शायद कोई इन्कलाब इसे नही बदल सकता। लेकिन''''।

वह बरगद के पेडो की छाँव तले से होता हुआ शाल के ऊँचे-ऊँचे पेडो की छाया तले आ गया। शाल के पत्तो को ऊँची हवा मे गाने की

आदत है। चर्च पीछे छूट गया था। और वह आगे बढ आया था। मनुष्य अक्सर खामोशी से निकल कर शोर मे खो जाने का प्रयत्न करता है। इसलिए अचानक उसके कदम तेज उठने लगे थे। वह सडक का एक मोड घूमता हुआ मेन रोड की तरफ बढने लगा था। वहाँ आने-जाने वालो की चहल-पहल थी, शोर था, हगामा था। क्योकि किसी भी नगर की रौनक सडको पर होती है। बडी-बडी सडको और पार्क मे···।

सामने नीचे सडक ढालू थी। दो फर्लांग की दूरी पर 'नोवेल्टी' रेस्टोरेंट की रोशनी जगमगा रही थी। अक्सर लोग नोवेल्टी मे बैठकर भी अपनी परेशान तबियत, अस्वस्थ मन को बहलाने का प्रयत्न किया करते हैं। उसके पाँव भी नोवेल्टी' की ओर उठने लगे।

'नोवेल्टी' मे प्राय उसकी जान-पहचान के मित्र मिल जाया करते हैं और उनकी आपस मे बडी मजेदार बाते हुआ करती है। किन्तु सयोग-वश उस दिन वहाँ कोई नही था। उसने 'काफी' का आर्डर दिया, और हाल के एक कमरे मे बैठा गरम-गरम कॉफी के घूँट निगलता रहा। उसके मस्तिष्क पर छाया हुआ परशानियो का बोझ शायद गरम-गरम काफी पीने से हल्का हो जाता। जिस प्रकार की अक्सर सिर दर्द दूर हो जाया करता है।

किन्तु कॉफी पी चुकने के बाद न तो उसने अपने आप मे कोई स्फूर्ति अनुभव की ओर न परिवर्तन। वह एक साप्ताहिक पत्रिका के पृष्ठ उलट उलट कर उसके चित्र देखने लगा।

अभी उसे बैठे कुछ ही देर हुई थी कि एक स्वर ने उसे चौका दिया—"हैलो मिस्टर सुरेन्द्र···।"

उसने सामने देखा तो हरिचरन कौर खडी थी।

"ओह···। आप···?" उसके मुँह से निकला और मुस्कान उसके चेहरे पर खिल उठी। शायद उस समय चरनी से मिलकर उसे उतनी

ही खुशी हुई, जितनी कि एक असहाय रोगी को किसी डाक्टर की सहायता पा कर होती है। चरनी अपने बहुमूल्य वस्त्रो मे उसे बडी सुन्दर प्यारी लगी। इतनी अधिक अच्छी वह उसे पहले कभी नही लगी थी। कुछ क्षणो के लिए वह मुस्कराता हुआ एक टक उसे देखता ही रहा। फिर उसके मुँह से निकला —"आओ चरन बैठो ··।"

हरिचरन, सुरेन्द्र का ऐसा अच्छा मूड देख कर बहुत खुश हुई। वह एक कुर्सी खीच कर उसके सामने बैठ गई।

सुरेन्द्र ने वार्ता का आरम्भ करते हुए स्वय ही उससे पूछा— "चरन बहुत दिनो के बाद आपके दर्शन हुए, इतने दिनो कहाँ रही आप ·· ?"

वह मुस्काराती हुई बोली—"खूब···। यदि यही प्रश्न मै आप से करूँ तो···?"

"तो मै क्या जवाब दूँगा···मुझे बहुत अच्छे बहाने आते है···।"

"यह तो मै जानती हूँ।" वह कुछ सँभल कर बैठ गई।

"आपकी परीक्षा कैसी रही" वह बोला—"सारे पेपर ठीक हो गए न···?"

"अपनी तरफ से तो सब अच्छे ही किए हैं·· " हरिचरन ने कहा— "लेकिन आप न जाने किस परीक्षा की तैयारी कर रहे थे, जो एक-डेढ महीने के बाद आपके दर्शन हुए हैं···।"

"क्या कहूँ·· ?" वह खिसियाना-सा हो कर बोला—"मै ठहरा एक गरीब स्कूल टीचर ! और स्कूल के टीचर के पास एक बंधा हुआ समय होता है। स्कूल और स्कूल के बाद ट्यूशन। बस इसी मे दिन बीत जाते हैं, और मै किये हुए वायदे भी भूल जाता हूँ।" फिर कुछ बात बदल कर बोला—"अरे हाँ ! यह तो कहिये, क्या मगाऊँ आपके लिये···कॉफी या आइसक्रीम···कोल्ड-ड्रिक लीजिएगा·· ?"

"जो आपका जी चाहे···" चरन बोली—"लेकिन एक शर्त पर, आपको मेरे साथ चलना होगा।"

"कहाँ · ?" सुरेन्द्र ने प्रश्न किया।

हरिचरन कौर ने अपने बेनेटि वेग से दो टिकटे निकाल कर दिखा दी। टिकटे रीगल की थी, जहाँ एक इगलिश फिल्म चल रही थी।

उसने कहा—"फिल्म तो आरम्भ हो चुकी होगी।"

चरन घडी देख कर बोली—"नही ! वास्तविक फिल्म साढे सात बजे शुरू होगी · फिल्म छोटी है · अभी पाँच मिनट बाकी हैं···।"

सुरेन्द्र ने प्रश्न किया—"यह दूसरी टिकट तो शायद आपने किसी और के लिए खरीदी होगी · "

"नही, आप ही के लिए खरीदी है " वह सतोष पूर्वक काफी के गरम-गरम घूँट निगलती हुई बोली—"एक टिकट मेरे लिए है और दूसरी आपके लिये ··"

"आप ने यह कैसे जाना कि मेरी आपकी भेट इस कॉफी हाउस मे होगी और मै आपके साथ पिक्चर देखने जाऊंगा ··"

"अवश्य·· ।" उसने अपनी बात पर जोर देकर कहा—"जब आप कॉफी पी रहे थे, मैंने तभी सडक पर से गुजरते हुये आपको देख लिया था। और· !" वह मुस्करा दी—"मिस्टर सुरेन्द्र आप बैठे क्या सोच रहे थे ··?"

'कुछ भी नही ··" वह धीरे से बोला· 'और उसकी दृष्टि साप्ताहिक मे छपे एक चित्र पर गड गई। रीगल की इन्टरवेल के बाद की बैल बज चुकी थी। हरिचरन ने दो-चार घूँट के बाद ही काफी की प्याली खत्म कर दी थी। कैश्पनटस उसने छुए ही नही थे। तह बोली—"चलिए उठिये अब ··।" उस दिन वह हरिचरन की बात रख लेना चाहता था।

वह उसके साथ सिनेमा जाने से इन्कार नही कर सकता था। वह विवश था, परेशान था और चाहता था , हरिचरन उसके पास बैठी रहे और वे आपस मे बाते करते रहे। इतनी बाते कि इनमे रात बीत जाए। उसे क्षण भर को भी सुषमा के बारे कुछ सोचने का मौका न मिले। हरिचरन कुर्सी पर से उठ खडी हुई। और साथ वह भी हो लिया···।

१८

जब शो समाप्त हुआ, उस समय लगभग रात के नौ बज रहे थे। हरिचरन का शोफर बाहर स्टेड पर कार खडी किए, उसके सिनेमा हाल से बाहर निकलने का इन्तजार कर रहा था। उसकी इच्छा हुई, वह पैदल ही घर जायगी। उसने सुरेन्द्र को साथ चलने के लिये कहा। सुरेन्द्र पर फिर एक निराशा सी छा चुकी थी। उसने हरिचरन को कार ही मे घर चले जाने की राय दी।

हरिचरन ने उससे पूछा—"फिर हमारी कब और कहाँ भेट होगी ·· ?"

वह बोला—"जब और जहाँ आप का जी चाहेगा, वही हमारी भेट हो जायगी···"

वह मुस्करा दी। उसने सुरेन्द्र को दूसरे दिन नौवेल्टी मे मिलने को कहा। नौवेल्टी से होकर उसका बुकस्टाल पर जाने का इरादा था, ताकि वह अपने पुस्तकालय के लिये कुछ पुस्तके खरीद सके। पुस्तको के चुनावो मे वह सुरेन्द्र की भी पसद का ख्याल रखना चाहती थी।

फिर उसने इच्छा प्रकट की, सुरेन्द्र कार मे उसके साथ बैठ जाए। वह उसे रास्ते मे घर तक छोडती जाएगी ··। किन्तु सुरेन्द्र पैदल ही घर जाना चाहता था। और घर वहाँ से लगभग चार फर्लांग की दूरी पर तो था ही, इसलिए उसने पैदल ही चलने की इच्छा प्रकट की। रह-रह कर उसके मन से एक ठडी आह निकल आती थी और उस समय उसे किसी बात का भी होश नही था।

हरिचरन कौर कार मे बैठती हुई बोली—"कल मिलियेगा न ! अपना वायदा भूल तो नही जाइयेगा ··।"

"नही ··।" वह बोला—"अब मै कोई बात मुश्किल ही से भूल सकता हूँ···।" उसके चेहरे पर गहरी उदासी छा गई थी।

कार घरघराती हुई स्टैंड से निकल भागी। वह कुछ क्षण वही खडा, कार की लाल रग की बैक लाईट को अँधेरे मे दूर विलीन होते देखता रहा। और फिर मन ही मन बोला—"चरन आज मुझे तुम से मिलकर अवश्य कुछ सन्तोष और प्रसन्नता प्राप्त हुई है···मै इन क्षणो को जो मैने सध्या के समय तुम्हारे पास बैठकर बिताए, याद रखने का प्रयत्न करूँगा···।"

और वह धीरे-धीरे घर की ओर चला। उसे वे क्षण भी याद आये, जो उसने कभी सुषमा के पास बैठकर बिताये थे। वे क्षण भी उसे स्मरण हैं। किन्तु उन क्षणो की याद अब कितनी तल्ख और कटु हो चुकी है···।" बीते हुए क्षणो की याद क्या सदैव प्रिय लगती है ··? क्या वे हमेशा सुन्दर अतीत की याद दिलाते हैं···? उसे याद है एक दिन जब सुषमा से उसकी प्रथम भेट हुई थी, उसके मन मे आशा का अंकुर उपजा था। एक विकलता ने जन्म लिया था और ज्यो-ज्यो दिन बीतते गये, वह अंकुर परवान चढता गया। और जब वह पौधा, जिसे प्यार और स्नेह के जल से सीचा गया था; पौधे से पेड बन चुका था,

जब उसमे फूल फूट चुके थे। और फलो की उपेक्षा की जा रही थी, उसे कुछ क्रूर लोगो ने जड से उखाड देने का प्रयत्न किया। उस पेड के फूल झड गए। उसकी पत्तियाँ मुरझा गईं, उसकी टहनियाँ सूख गईं। जब उस पेड की जडो मे मिट्टी देने वाला कोई नही था, उसे सीचने वाला कोई नही था···तब शायद हरिचरन ने अन्जाने ही उस पौधे की जडो मे अपने प्यार और श्रद्धा का कुछ अमृत उँडेल दिया था। और वह भी अचानक। शायद भविष्य मे, अतीत की यह घटना उसके हृदय के किसी कोने मे याद बन कर दबी रह सकती थी··।

"आज की यह मनहूस सध्या···।" वह चलता-चलता फिर उन्ही विचारो में खो गया था—'इस मनहूस सध्या मे वह पागलो की तरह सडको पर भटक रहा था। उसकी बेचैन आँखे कैफे मे अपने मित्रो को तलाश कर रही थी। तब उसे कोई भी नजर नही आया था। कोई उससे बाते करने और उसे शान्ति प्रदान करने उसके निकट नही भटका था। तब अचानक हरिचरन की उपस्थिति ने कैसे उसका मूड बदल दिया था। कैसे उसे अधेरे से निकाल कर उजाले मे ला बैठाया था··।

वह सोचता रहा—"हरिचरन एक भावुक लडकी है। प्रत्येक लड़की भावुक हुआ करती है। उनके विचार और भावना रूपी सागर मे हमेशा ज्वार-भाटे आते रहते है। कभी अवसर पाकर उनके दिल की धडकनो को सुन लेना उचित है। और फिर हरिचरन जैसी लडकी··· वह सुषमा से कही अधिक 'फारवर्ड' है। वह सुषमा से कही अधिक और सुन्दर ढंग से सोच सकती है ··' वह यही कुछ सोचता हुआ घर की ओर बढता रहा। अचानक वह सडक पर एक बडे स कोयले से ठोकर खाकर गिरते-गिरते बचा। और वह मन ही मन बोला—"कितने जख्म है··· कितनी चोटे है ·· यह प्यार-प्रीत का मार्ग, इसमे ठोकरे ही ठोकरे है। यह तपस्या और सदाचार का युग नहीं, सघर्ष का युग है। इस भौतिक

युग मे स्वार्थ का एक विशिष्ट स्थान है। यहाँ पहले पहले अपनी आवश्यकताएँ देखी जाती है, तब फिर कुछ और···। पहले अपनी गरज की कसौटी पर कोई बात परखी जाती है और फिर उसे माना जाता है। यदि धरती के रहने वाले स्वर्ग के सपने देख लेते है, तो स्वर्ग के रहने वाले शायद और आगे की नही सोचेगे क्या···? सुषमा और हरिचरन कौर के व्यवहारिक दृष्टिकोण मे इस नाते कोई अतर नही हो सकता। एक गरीब होकर अमीर घर के सपने देखती है। तो सम्भव है कल एक अमीर घर की लडकी, लखपति और करोडपति बनने के सपने देखे। लेकिन सुरेन्द्र, तू तो बस सुरेन्द्र ही है। एक स्कूल का मामूली टीचर। क्लर्क और टीचर बन कर जीवन बिताना शायद कोई सम्मान की बात नही। अध्यापक और क्लर्क तो बेचारे हमेशा दया के पात्र होते हैं।

अचानक उसे शैल भाभी के मुँह से निकले हुए वे वाक्य याद आ गए, जिसमे उन्होने हरिचरन के घर की चर्चा करते हुए कहा था कि उन्हे एक क्लर्क की जरूरत है, जो उनका काम देखे, उन्ही के यहाँ रहे और जिसे वे अपना समझ सके। इसलिये वह अपने मन से पूछ बैठा—"क्यो सुरेन्द्र क्या तुम्हे यह क्लर्की मजूर है?" और फिर वह सोचने लगा—'इस मे बुरा ही क्या है···।'

जब वह घर के सामने पहुँचा, उसकी नजर पारो पर पडी जो घर के बरामदे मे एक कुर्सी पर बैठी, बिजली के प्रकाश मे एक पुस्तक देख रही थी। बाहर घर का फाटक चरमराया तो वह जैसे चौक सी गई, और उठकर अन्दर चली गई। सुरेन्द्र सीधा अपने कमरे में चला गया। उसे यो लगा जैसे माँ सो चुकी हैं, किन्तु पिता जी शायद जाग रहे थे। क्योकि उनकी खाँसी की आवाज आती सुनाई दे रही थी। वह बिना कपडे उतारे ही अपनी चारपाई पर लेट गया और फिर वह सुषमा तथा हरिचरन के बारे मे कई और बाते सोचता रहा।

कुछ समय इसी तरह बीता। सहसा उसके कमरे का द्वार खुला। और उसने देखा पारो सिर पर ओढनी पसारे आँख नीचे किये, कुछ झिझकती और शरमाई हुई सी, एक हाथ मे परोसा हुआ थाल और दूसरे मे पानी का भरा हुआ गिलास लिये कमरे के अन्दर प्रवेश कर रही है। थाल और गिलास को वह मेज पर सजा कर चुपचाप बाहर जाने लगी।

सुरेन्द्र ने आँख के कोने से उसकी ओर देखा, और फिर धीरे से बोला—जरा सुनो तो ···।"

वह गुडिया की भाँति चुपचाप उसके पास आ खडी हुई।

"क्या हुआ है तुम्हे···?" उसने लेटे-लेटे प्रश्न किया। उत्तर में पारो मौन रही।

उसने कहा—"जरा अपनी मुट्ठी तो खोलो। क्या दबा रखा है मुट्ठी मे ?"

उसने नादान बच्ची की तरह अपने दोनो हाथ सामने फैला दिये। उसके मुँह से निकला—"कुछ भी तो नही है।"

सुरेन्द्र उसकी एक हथेली को बडे गौर से देखता हुआ बोला—"अच्छा मै तुम्हारे हाथ की लकीर देखता हूँ···तुम्हारे भाग्य बड़े अच्छे है···।"

पारो के चेहरे पर लज्जा की लाली फैल गई और वह शीघ्रता से कमरे से बाहर जाने लगी।

सुरेन्द्र ने फिर पुकारा—"देखो जरा···।"

इस बार वह द्वार के पास ही रुक गई लौटी नही।

सुरेन्द्र बोला—"यह थाली उठा ले जाओ। मुझे भूख नही है।"

"क्यो···?" पारो के मुँह से केवल इतना ही निकला और वह

कुछ परेशान सी उसकी ओर देखने लगी।

"क्यो का क्या जवाब····" सुरेन्द्र ने कहा—"क्या तुम्हे यह बताना ही होगा कि मुझे भूख क्यो नही है।"

"नही···।" वह बडे नम्र भाव से बोली—"लेकिन पूछने मे हर्ज भी क्या है···? क्या आपको मेरे हाथ का बना खाना पसद नही···?"

"ओह···।" सुरेन्द्र कुछ संभल कर बोला—"तुम तो बहुत दूर चली गईं· ·अच्छा इधर आओ, मै तुम्हे बताता हूँ।"

वह फिर उसके समीप आ खडी हुई।

सुरेन्द्र ने पूछा—"क्या तुम मेरी बात का बुरा मान गई ?"

उसने नजरे झुकाये झुकाये कहा—"नही तो···हाँ यदि आपको मेरी बात बुरी लगी हो तो मुझे क्षमा कर दे।"

'मै सच कहता हूँ, मुझे भूख नही है पारो· ·।' वह बडे ही कोमल शब्दो मे बोला। और उसकी दृष्टि पारो के चेहरे का रग भाँपने लगी।

"मै जानती हूँ" वह धीरे से बोली—"माँ के मुँह से सुना था, आपको किसी बात से गहरा दु ख पहुँचा है। लेकिन···" वह झिझकती हुई सी रुक कर बोली—" ऐसी-ऐसी बातो के कारण लोग क्या खाना पीना भी भूल जाया करते है···?"

"ओ···।" सुरेन्द्र के मुँह से यह अस्पष्ट स्वर निकला। और वह एक टक उसके मुँह की तरफ देखता रहा। फिर धीरे से बोला—"तुम बडी सयानी बाते कर रही हो पारो" और कुछ रुक कर, वह छत की ओर देखता हुआ बोला—"सच है···तुम गलत नही कहती। लेकिन मुझ पर विश्वास रखो, मैं कोई ऐसा मजनूँ तो हूँ नही, जो ऐसी-वैसी बातो के पीछे खाना ही भूल जाऊंगा। वास्तव मे

मुझे भूख नही है। अभी सध्या हो को तो मैने पेट भर खाया था, और अब दस बज रहे है, क्या किसी को इतनी जल्दी भूख लग जाया करती है ?"

पारो अनुरोध भरे शब्दो मे बोली—"कुछ तो खा लीजिये। आप ने तो दिन भर मे केवल एक बार खाया है।"

"अच्छा लाओ एक रोटी खा लेता हूँ···।" वह बोला—"फिर तो मुझ पर नाराज नही होगी···कोई शक नही करोगी न···?"

पारो के होठो पर एक मुस्कान खेल गई। उसने भरपूर नजरों से उसकी ओर देखा और मन ही मन खिल उठी।

सुरेन्द्र चारपाई पर से उठ बैठा और बिना कपडे उतारे व हाथ मुँह धोए थाल पर झुक गया।

पारो देखती रही—उसके खाने के अन्दाज से साफ पता चलता था कि उसे भूख बिल्कुल नहीं है। वह केवल उसकी बात रखने को खा रहा है। वह खडी सोच रही थी, सुरेन्द्र को सुषमा का इतना अधिक दुख मार गया कि उसने खाना-पीना भी छोड दिया। वह सुषमा को अच्छी तरह जानती थी। क्योंकि कभी वे दोनो इकट्ठी एक हाई स्कूल मे पढती थी। सुषमा एक जिद्दी लडकी है। उसमे एक नही कई अवगुण हैं। यदि सुरेन्द्र उस से कुछ भी पूछता तो वह अनेको बाते बता सकती थी। लेकिन वह अपना मुँह खोले तो कैसे ··?

जब सुरेन्द्र किसी प्रकार एक रोटी निगल चुका, तो वह चुपचाप थाल उठा कर उसके कमरे से बाहर निकल गई। वह वहाँ और अधिक ठहरना उचित नही समझती थी।

और कुछ समय पश्चात ··।

जब घडी साढे दस बजा रही थी, सुरेन्द्र चारपाई पर लेटा दिन भर

की घटनाओ पर विचार कर रहा था। उसकी आँखो के सामने बारी बारी तीन चहरे घूम रहे थे। सुषमा, हरिचरन कौर और पारो···।

पारो बेचारी एक वृद्ध सरदार की लडकी थी। वे महाशय एक मिल में फिटर का काम करते थे। और यही काम करते उनकी उम्र बीत गई थी। जब पारो दस वर्ष की थी, तब ही उसकी माँ मर चुकी थी। अब उसकी आयु लगभग बाईस वर्ष की थी। वृद्ध महाशय को उसकी शादी-ब्याह की चिन्ता सता रही थी। वे कई जगह उसके वर की तलाश कर चुके थे। कई लडके मिले पर बात कही भी पक्का नही कर सके। यह सब संयोग की बात थी। वे बेचारे गरीब आदमी थे। लडके वालो के सामने कुछ दब से जाते थे। इस बार वे कलकत्ता एक लडका देखने गये थे। वे बहुत अधिक परेशान थे और चाहते थे जैसे-तैसे हो पारो के हाथ पीले करदे। एक बार उन्होने सुरेन्द्र की माता से सुरेन्द्र और पारो के सम्बन्ध की बात की थी। और वे राजी भी हो गई थी। पर सुरेन्द्र पारो के बारे मे कुछ भी नही सोच सका था। किन्तु उस दिन वह उसके बारे मे कुछ तो सोचने के लिये मजबूर हो गया।

वह सोचने लगा—'पारो सरल स्वभाव की एक भोली-भाली लडकी है। वह शायद सुषमा की तरह चालाक नही और न हरिचरन की तरह बातूनी है। वह सदैव मौन रहती है और ऐसा लगता है, जैसे उसे हमेशा कुछ सोचने की आदत है। लेकिन मैने उसे कभी जानने और समझने का यत्न नही किया। मै यह जानकर भी कि वह क्या चाहती है, हमेशा खामोश रहा हूं। और कई जगह की ठोकरें खा-खा कर अब क्लर्क बनने का निश्चय कर चुका हू। मेरा भी अपना कोई उसूल नही और न मुझ मे स्थिरता है···पारो जैसी अच्छी लडकी कहाँ मिल सकती है··· पारो··। उसने कमरे की बत्ती बुझा कर अपनी आँखे मूँद ली। अचानक बिजली की चमक ने क्षण भर के लिये उसके कमरे मे एक

ज्योति भर दी । बाहर बादल गरज उठे । और कुछ देर बाद 'टपटप' वर्षा की बूंदे टपकती सुनाई देने लगी । घर के अन्दर आँगन मे बँधी हुई बकरी और उसका बच्चा मिमियाने लगा···

"माँ इन्हे कहाँ बाँधू···?" पारो का स्वर सुनाई दिया । फिर जैसे वह उस बकरी और उसके बच्चे को खोल कर बाहर बरामदे मे बाँध रही थी । वह नीद के नशे मे खोया हुआ सा सोच रहा था···"पारो को इस घर के कामो से कितनी रुचि है···।"

बाहर वर्षा और तीव्र हो उठी थी ।

१६

दूसरे दिन सन्ध्या के समय जब स्कूल से छूटकर सुरेन्द्र हरिचरन से भेंट करने के लिए नौवेल्टी की ओर जा रहा था, रास्ते मे बडे पोस्ट आफिस के पास रुक कर उसने वह लिफाफा, जिसमे कि पिछले दिन उसने सुषमा का फोटो रखा था, पोस्ट कर दिया । सयोग से हरिचरन भी उसे वही मिल गई । फिर वे दोनो नौवेल्टी जाने के बजाय प्रीमियर बुकस्टाल की ओर चल दिये । वहाँ उन्होने हिन्दी, इगलिश और पजाबी की कई पुस्तके छाँटी । लगभग एक सौ पच्चीस रुपये का बिल हुआ । वे सारी पुस्तके बडल के रूप मे बाँधकर कार मे रख दी गईं । हरिचरन ने कल सुरेन्द्र को इसी काम के लिये नौवेल्टी मे मिलने को कहा था । बहुत अच्छी-अच्छी पुस्तके खरीदी गई थी । अब उसने हरिचरन से घर जाने की आज्ञा माँगी । हरिचरन ने अनुरोध किया उसे घर तक चलना

होगा। क्योकि उसकी ममी उससे मिलने को बहुत उत्सुक थी। सुरेन्द्र हरिचरन के अनुरोध को टाल नही सका।

जब वे घर पहुँचे, देखा, ममी उनकी प्रतीक्षा मे बाहर बरामदे ही मे एक कुर्सी पर बैठी हुई थी। वे उन्हे देखकर मुस्कराई। फिर सुरेन्द्र का स्वागत करती हुई बोली—"आओ बेटा आओ, तुम तो इधर का रास्ता ही भूल गये···।"

और उत्तर मे सुरेन्द्र के दोनो हाथ नमस्कार के लिये ऊपर उठ गये।

वे क्षण भर के लिये बरामदे की कुर्सियो पर बैठे।

हरिचरन ने ममी से कहा—"ममी मै, मिस्टर सुरेन्द्र की सहायता मे बहुत अच्छी-अच्छी पुस्तके मोल कर लाई हूँ···" और फिर सुरेन्द्र से सम्बोधित हो बोली—"चलिये मिस्टर, पहले मै आपको अपनी लाइब्रेरी दिखाऊँ·····फिर हम नई लाई हुई पुस्तके अल्मारियो मे सजायेंगे।" वे उठकर अन्दर चले गये। नौकर किताबो के बन्डल कार से निकाल कर अन्दर लिए जा रहा था।

हरिचरन कौर की लाइब्रेरी मे लगभग पाँच सौ पुस्तके थी। जिन्हे बडे करीने से अल्मारियो मे सजाकर रखा गया था। पुस्तके भिन्न भिन्न विषयो पर थी और उनका चुनाव बडे अच्छे ढग से हुआ था। सुरेन्द्र हरिचरन के इस उत्साह और रुचि की प्रशसा किये बिना न रह सका। जब नई पुस्तको के बन्डल कार से अन्दर ले आये गये, तब उन्हे खोल-खोल कर पुस्तको को विषय के अनुसार अल्मारियो मे सजा दिया गया। उन्होने शाम की चाय भी उसी कमरे मे बैठकर पी। और फिर फ्लेट की छत पर जा बैठे। ऊपर का वातावरण बिल्कुल स्वच्छ था। मुखद वायु प्रवाहित थी। वहाँ से दूर मॉडेल टाऊन, विद्युत के प्रकाश मे जगमगाता हुआ सा अत्यन्त भव्य प्रतीत होता था। आकाश पर भी

तारे बिलकुल उभर आये थे, और उन्ही तारो की छाया तले बैठे, वे दोनो शायद एक-दूसरे को समझने के लिए कुछ ऐसी बाते करने को उत्सुक जान पडते थे, जिसमे कि वे एक दूसरे के बिल्कुल समीप आ जाते। सुरेन्द्र कह रहा था—"हरिचरन जी पुस्तको से आपकी इतनी अभिरुचि देखकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई है' '।"

वह कुछ भावुकता मे खो कर बोली—"यह सब मैने आपके सम्पर्क मे रह कर सीखा है। यदि मै कवियित्री और लेखिका नही तो क्या ? साहित्य प्रेमी तो बन सकती हूँ।"

"आपके विचार बहुत अच्छे है···" सुरेन्द्र ने कहा—'साहित्य प्रेमी, किसी साहित्यिक से कम नही होता···।"

हरिचरन उन्ही शब्दो मे बोली—"कुछ लोग समार मे ऐसे होते है, जो मर कर भी नही मरते। वे अपने जीवन मे कुछ ऐसा काम कर जाते हैं, जो उन्हे अमर बना देता है। साहित्यकारो की गणना भी कुछ ऐसे ही लोगों मे है। सच पूछिये तो मुझे ऐसे लोगो से सदैव ईर्ष्या होती है।"

सुरेन्द्र बोला—"साहित्य एक साधना है। अमरता के पद को पाने के लिये बडी कठिन तपस्या करनी पडती है। और फिर इस युग मे जब कि पैसे ही का महत्व अधिक हो, पैसा ही सब कुछ गढना, बनाता और बिगाडना हो, वहाँ साधना और तपस्या का मूल्य घट जाता है। किसी के लिये बडा बन जाना, जो कि उसके लिये अमरता का पद है, केवल एक घटना है। आजकल साहित्य के क्षेत्र मे भी बडा पैसे वाला ही बनता है।"

"मै भी ऐसा ही कुछ चाहती हूँ" हरिचरन कहने लगी—"मै चाहती हूँ मै अपने जीवन मे कोई ऐसा काम करूँ, जिससे मुझे अपने

आप मे सन्तोप मिले। मै अति शीघ्र यहाँ एक पुस्तकालय खोलूँगी, और लडकियो के लिए सिलाई इत्यादि सिखाने वाला एक स्कूल। मै इस सम्बन्ध मे आपकी राय लेना चाहती हूँ।"

"अच्छे विचार है···!" सुरेन्द्र बोला—"जो सेवा निष्पक्ष भाव से की जाये, उसका लोगो पर बडा सुन्दर प्रभाव पडता है। लोग अच्छे कामो की सदैव प्रशसा करते हैं।"

वह कहने लगी—"मै चाहती हूँ, मै अपने जीवन मे कुछ करूँ। मै तो बहुत-कुछ करना चाहती हूं। पर क्या करूँ, कुछ समझ मे नही आता, कोई रास्ता नजर नही आता।" उसके शब्दो मे निराशा थी।

सुरेन्द्र भी कुछ निराशा पूर्ण शब्दो मे बोला—'मनुष्य सोचता बहुत है हरिचरन, पर वह उतना कुछ कर नही पाता। कुछ लोग अपनी क्षमता से अधिक सोचने के आदी होते है और वे जितना अधिक सोचते है उतनी ही उन्हे निराशा होती है। मै आपको यह सलाह दूंगा कि आप जो कुछ करना चाहती हैं; वह करे। अधिक सोचा न करे।"

उसने प्रश्न किया—"क्या आपके साथ भी ऐसी ही बात है···?"

सुरेन्द्र ने सक्षेप मे कहा—"जी हाँ, समझ लीजिए कि ऐसी ही बात है।"

'ओह!' उसके मुँह से निकला और वह मौन हो गई।

कुछ क्षण वे इसी प्रकार मौन बैठे रहे। और फिर सुरेन्द्र बात का पहलू बदल कर बोलने लगा—"मिस चरन मै चाहता हूँ, हम एक-दूसरे को आप कह कर सम्बोधित करने का आडम्बर त्याग दे। हम एक दूसरे के बहुत निकट हो चुके हैं।"

हरिचरन के चेहरे पर लज्जा की लाली दौड गई, और उसने

अपना मुँह दूसरी ओर घुमा लिया। सुरेन्द्र फिर उससे बोला—"क्या यह सच नही कि हम एक-दूसरे के बहुत निकट हो गए हैं। और हम और भी निकट हो जाना चाहते हैं ?"

वह चुप रही।

सुरेन्द्र कहता गया—'क्या मेरे इस प्रश्न का तुम्हारे पास कोई उत्तर नही। क्या मुझे फिर तुम्हे 'आप' कह कर पुकारना होगा ?"

तब वह धीरे से बोली—"नही।"

"मुझे अपने ऊपर विश्वास था चरन" वह बोला—"लेकिन शायद तुम्हे अपने ऊपर विश्वास नही था। इसीलिए शायद तुम मुझे 'तुम' कह कर पुकारने का साहस नही कर सकती थी।"

वह बोली—"मुझे अपने ऊपर विश्वास था तभी तो मै रोती रही हूँ। तुमने मुझे रुलाया है···बहुत रुलाया है···।" और कुछ क्षण रुक कर वह बोली—"तुमने इतनी देर मे जो मुझे समझने का यत्न किया इसका कारण मेरी समझ मे नही आया।

"कारण !" सुरेन्द्र बोला—"कारण क्या हो सकता है—यही कि मैने आज तक ठोकरें ही खाई हैं। क्या अपनों से और क्या परायो से। विश्वास सदा मुझे धोखा देता आता है। मै डरता हूँ जिस गुलाब की ओर मै अपना हाथ बढ़ाने की सोच रहा हूँ, कहीं मेरे हाथों में कोई तीखा काँटा न चुभ जाए।"

वह बोली—"कुछ गुलाब ऐसे भी होते हैं जिनके काँटे नही होते। क्या मेरे प्रति तुम्हारा यही अविश्वास था ?"

वह धीरे से बोला—"अशान्त और अतृप्त रह कर तो मनुष्य की आत्मा भी भटकने लगती है। फिर मै तो हाड-माँस का आदमी ठहरा। मेरे सीने मे दिल है। जब तक मनुष्य जीवित रहता है, उसके मन मे

भाव और आशाएँ जन्म लेती रहती है। विश्वास भी बनते-बिगडते रहते है।

"ओह'' ।" हरिचरन के मुँह से निकला—"तुम बडे भावुक हो''' यह मै जानती थी।"

वह बोला—"इसी भावुकता ने तो मुझे नष्ट कर दिया है चरन। मेरी बुद्धि और मन मे सदैव तर्क रहता है। और मै जीवन पथ पर अक्सर भटक जाया करता हूँ।"

हरिचरन धीरे से बोली—"लेकिन अब तुम विश्वास रखो, तुम्हारे मन की जीत होगी। मै अब तुम्हे बिल्कुल नही भटकने दूँगी ''।"

उस समय फ्लेट के पिछवाडे, एक दो मजिले घर से वीणा के मधुर विकल स्वरो के साथ सगीत की करुण लय आती सुनाई दी। किसी लडकी का स्वर था। उसके स्वरो मे वेदना थी। जिसके कारण सारे वातावरण मे एक विरक्तता सी फैल गई थी। प्रत्येक वस्तु वहाँ हरिचरन कौर की तरह सिहरन सी भरती प्रतीत हो रही थी। सुरेन्द्र ने पूछा—"यह कौन गा रही है चरन ?"

उसने उत्तर दिया—"वासन्ती'' ।"

"बहुत अच्छे स्वर है" वह बोला—"मैने सुना है तुम भी अच्छा गा लेती हो '''।"

वह बोली—"कभी सीखने की कोशिश की थी। किन्तु सफल नही हो सकी। जो थोडा बहुत आता था, वह भी भूल चुकी हूँ। यो तो रोना और गाना सभी को आता है।"

फिर वे आपस मे घर की बाते करने लगे। उन दिनो उनका एक लाख का लिया हुआ ठेका खत्म होने जा रहा था। 'रावडकिले' मे उन्हे

एक नया ठेका मिलने की आशा थी। उसके भैया वही [illegible] गए हुए थे। बातो-बातो ही मे उसके पागल भाई की चर्चा चल पडी। अब उसका जनून हद से ज्यादा बढ गया था। वह प्राय नगा हो कर गलियो मे घूमता और आने-जाने वालो को वाही तबाही बकता। उन दिनो उसे एक कमरे मे बन्द रखा जाता था।

हरिचरन की बातो से उसके बी० ए० की परीक्षा का पता चला। यद्यपि उसने पढने-लिखने मे कोई कसर नही उठा रखी थी, लेकिन फिर भी उसे पास होने की बहुत कम आशा थी। अब पढाई से उसका मन उकता गया था।

जब सुपमा की चर्चा चली। तब सुरेन्द्र कुछ सँभल गया। और वह कुछ नपे-तुले अन्दाज मे बातो का उत्तर सक्षेप मे देने लगा। हरिचरन कौर ने कहा—"सुषमा तो बहुत बदनाम हो रही है। जगह जगह उसी की चर्चा हो रही है···।"

इस पर उसने इतना ही कहा—"जमाने की हवा ही कुछ ऐसी है।"

वह बहुत देर तक सुपमा के बारे मे हरिचरन के मुँह से कई प्रकार की बाते सुनता रहा, जिनके कारण सुषमा के प्रति उसके मन मे काफी घृणा समा गई। वे काफी देर तक फ्लेट की छत पर बैठे इसी प्रकार कई तरह की बाते करते रहे। सुरेन्द्र अपने आप को उन बातो मे खो कर बिलकुल भूल ही जाना चाहता था। अपने मन की सारी वेदना, सारी पीडा को···। वह हरिचरन कौर की बातो मे कुछ इतना अधिक खो जाना चाहता था कि फिर उसे 'सुपमा' नाम का कोई भी शब्द चौका न सके। सुषमा के बारे उसके मन मे अब केवल एक विचार था और वह यह कि, वह एक मूर्ख लडकी है। वह एक ऐसी मूर्खा है, जो रोकने

पर भी अधकार की ओर बढती है। तब उसकी सबसे बडी सजा यही है कि उसे अधकार मे ही भटकने दिया जाए।

वीणा के स्वरो के साथ स्वर साधिका के बोल तब भी वातावरण मे सिहरन भर रहे थे। जब वे एक-दूसरे के बहुत निकट थे और उनके हृदयो की धडकने तीव्र हो उठी थी। एक दूसरे के निकट बैठकर जैसे उन लोगो एक-दूसरे के को पा लिया था। यामिनी प्रशान्त थी और सुखद। हरिचरन खुशी के नशे मे डूबी हुई थी। यदि उसके पिता ऊपर छत पर न आ गये होते तो शायद वह उसी प्रकार सुरेन्द्र के निकट बैठ कर सारी रात वार्ता ही मे बिता देने मे प्रसन्नता अनुभव करती। उसके पिता कुछ देर उनके पास बैठे रहे और सुरेन्द्र से इधर-उधर की बाते करते रहे। वे सुरेन्द्र और उनके घर वालो से अच्छी तरह परिचित थे। शैल के यहाँ तो अक्सर उनका आना-जाना रहता ही था। वे सुरेन्द्र मे मिल कर बहुत प्रसन्न हुये। और सब को छत पर से नीचे भोजन वाले कमरे मे ले आएँ। क्योकि भोजन का समय हो चुका था।

उस दिन रात का भोजन सुरेन्द्र ने उन्ही के यहाँ किया। तत्पश्चात् वह दूसरे दिन फिर वहाँ आने का वचन देकर घर लौट आया। पर सध्या के समय उसने हरिचरन को कम्पनी बाग मे मिलने को कहा था।

२०

तीन-चार दिनो के बाद पारो के पिता कलकते से लौट आए। वे पारो के लिये वर ठीक कर आए थे। यद्यपि जैसा लडका वे चाहते थे,

वैसा उन्हे नही मिला था। तो भी वे सन्तुष्ट थे। वह लडका कलकत्ते की एक मिल मे नौकर था। सौ-डेढ सौ रुपये कमा लेता था। उसकी पहली पत्नी मर चुकी थी। जिसमे दो बच्चे थे। वह व्यक्ति पारो की फूफी के गाँव के पास ही का रहने वाला था।

सुरेन्द्र की माता जहाँ एक ओर यह शुभ समाचार सुन कर बहुत प्रसन्न हुई, दूसरी ओर उन्हे हल्का सा दु ख भी हुआ। पसन्नता की बात यह थी कि पारो के हाथो मे ब्याह की मेहदी लगने जा रही थी। उसकी बाहो मे हाथी दाँत का लाल रग का चूडा चढने जा रहा था। वह एक हँसते-बसते घर की शोभा बनने जा रही थी। वह जो अपने पिता के माथे का बोझ थी, उन्हे कई चिन्ताओ से मुक्त कराने जा रही थी। लेकिन दु ख इस बात का था, कि वह ऐसी भोली और प्यारी लडकी को स्वय अपनी बहू बनाने मे सफल नही हो सकी थी। वह ऐसी बहू कहाँ पाती, जिसका नाक नकशा, बोल चाल, और स्वभाव भी पारो जैसा हो। जो पारो की तरह माथा झुका कर चलती हो। माता को मालूम था, पारो सुरेन्द्र के प्रति अपने मन में कितना स्नेह रखती थी। लेकिन सुरेन्द्र····? माता का मन भर-भर आता था। बेटे ने पढ लिख कर सब कुछ गँवा दिया। दो कौडी की अकल भी उसे नही आई···वह लेखक और कवि क्या बना, उसने तो सारी दुनिया को ही पागल बना दिया।'

कलकत्ते से लौट कर पारो के पिता ने सुरेन्द्र की माता से कहा—"बहन मेरा यहाँ अपना और है कौन···? आप ही लोग तो हैं। पारो आपकी भी उतनी ही है, जितनी कि मेरी। मैंने इस पगली के लिये बहुत-कुछ सोचा, बहुत जगह आस लगाई और अंत मे जहाँ इसे इसके भाग्य ले गये, मै वही सौप आया। अब शेष कार्य तो आप ही लोगो को करना होगा। जो लेना-देना है, जैसे इसके लिये कपडे, गहने इत्यादि बनवाने हो, पारो से पूछ कर आप ही सब ठीक कर ले।

जितने रुपये लगेंगे, मैं लगाऊँगा। इसके सिवा मेरा दुनिया में और है कौन ···?"

तब माता की आँखें डबडबा आई थीं। वे भर्राये हुए स्वरों में बोलीं—"भाई तुम क्यों परेशान हो रहे हो। भगवान की कृपा से जहाँ इतना सारा काम हुआ, वहाँ बाकी काम भी ठीक हो जायगा समय तो आए। भगवान करे, यह शुभ समय जल्दी ही आए, और हम अपनी बिटिया रानी को दुल्हन बनी, पालकी में बैठी देखें। भगवान ने कैसा सुन्दर रूप दिया है इसे। बिल्कुल लक्ष्मी का स्वरूप मालूम होता है। जिस घर में जायेगी, वहाँ राज करेगी और···" इतना कहते कहते उनकी आँखों से आँसू टपक पड़े···और वे कहती गई। "भाई यदि इसकी माँ जीवित होती, तो तुम्हारे घर कितना आनन्द होता। वह तो ब्याह की खुशी में अभी से मंगल गीत गाने लगती। वह सारे मुहल्ले वालों का मुँह मीठा कराती ।"

पारो का पिता भर्राये हुए स्वरों में बोला—"कर्मों के खेल हैं बहन। ऐसे मौके पर, अपने पराये, अगले और पिछले, सभी याद आया करते हैं। किसी को हम तार देकर बुलवा लेते हैं और किसी को चिट्ठी भेज कर। लेकिन कुछ लोग हमसे बिछुड़ कर इतनी दूर चले गये होते हैं जहाँ न तो तार पहुँचता है और न चिट्ठी और न दूसरे प्रकार का कोई समाचार। पारो की माँ तो मुझे भी याद आती है। लेकिन मैं कठोर हो उसे भूल जाने की कोशिश किया करता हूँ। लेकिन अब इस शुभ अवसर पर तो मैं उसे याद ही करना चाहता, हूँ, भूलना नहीं चाहता। मैं पारो की माँ के सारे गहने पारो को सौंप दूँगा। जब पारो मुझ से दूर चली जाएगी, तब इस घर में माँ-बेटी की एक याद के सिवा मेरे पास और क्या रह जाएगा ?"

माता ने आशय पूर्ण शब्दों में पूछा—"भाई क्या तुम अपने घर में अकेले रह सकोगे ? कौन तुम्हारी सेवा करेगा···क्या दामाद को अपने

पास नही रखोगे ? तुम उसे यही-कही नौकरी दिलवा देना ।"

"पारो के पिता बोले --अब मेरी अपनी ही नौकरी और कितने दिन है···? यही साल-छ. महीने होगी। इसके बाद मै स्वय यहाँ से गाँव चला जाऊँगा। जो जहाँ भी रहे, सुखी रहे। मेरी भगवान से यही प्रार्थना है।"

"हाँ भाई सब अपने-अपने घर सुखी रहें···"

माता ने कहा, और गहरी चिन्ताओ मे खो गईं।

उस दिन पिता के कलकते से लौट आने के बाद पारो को फिर अपने घर का काम-काज सँभालना पडा। किन्तु वह संध्या के समय सुरेन्द्र के घर, माता के काम मे हाथ बँटाने के लिये फिर चली आई। किन्तु माता ने उसे किसी काम मे हाथ नही लगाने दिया। वे उसे अपने पास बैठा कर बोली—"बिटिया जब तू कल यहाँ से चली जाएगी तब कौन मेरा काम मे हाथ बँटायेगा ? इसलिए तू मुझे ही मेरा काम करने दे। यदि मै आराम से बैठूँगी तो मुझ मे आलसपन आ जायेगा।"

पारो बोली—छि माँ, घर मे बहू-बेटियाँ काम करे तो क्या बडे बूढो को आलस हो आता है ?"

बिटिया ! माता स्नेह-पूर्वक उसकी ओर देखकर बोली—"जहाँ जाओ सुखी रहो। तू कितनी अच्छी है"और उन्होने उसकी बलाएँ ली।

पारो का माथा नीचे झुक गया।

माता कहती गई —"तू दूर चले जायेगी हम से···कभी याद किया करेगी न···?"

पारो की आँखो में आँसू छलछला आए। वह चूल्हे के निकट बिखरी हुए राख पर उँगलियाँ फेरने लगी। सहसा उसे कुछ स्मरण हो आया और वह बाएँ हाथ की हथेली की रेखाये देखने लगी। तभी टप

से आँसू की एक बूँद, उसकी आँखो से नाता तोड उसकी हथेली पर गिर पड़ी ।

माता कह रही थी—"स्त्रियो के जीवन मे यह एक महान दिन होता है बेटी । और ब्याह के बाद उसका एक नया जीवन आरम्भ होता है ।"

और 'टप टप' कई आँसू उसकी हथेली और नीचे राख पर टपक पडे···।

"एक जीवन, एक जीवन के किनारे··· उसका अत और फिर एक नया जीवन ··और उसके पश्चात···" माता कहती गई ·· "सैकड़ो समस्याये···अनेको सघर्ष···यह सब-कुछ जीवन मे रच कर जीवन को एक मजिल तक पहुँचा देना है। आँसू और मुस्कुराहटे···दु ख और सुख, इन सब से मिल कर यह जिन्दगी बनती है । तुम सदा सुखी रहो, सदा सौभाग्यवती बनी रहो···" मेरी भगवान से यही प्रार्थना है · ।"

"माँ···," इस बार पारो के मुँह से यह शब्द निकला और वह दोनो हाथ से अपना मुँह छिपाकर रोने लगी ।

"रो मत बेटी···" माता उसे दुलारने लगी । प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा और फिर उसे ससुराल की बाते समझाने लगी । वहाँ कैसे रहना चाहिये, किस प्रकार लोगो से व्यवहार करना चाहिये । इस प्रकार की अनेको बाते माता भाव के आवेश में उसे बताती गई । वे स्वयं व्यथा मे डूबी हुई थी । मन अवसाद से भरा हुआ था । वे चाहती थी, पारो आज सारी रात उनके पास बैठी रहे ताकि वह अपने जीवन के सारे अनुभव शब्दो द्वारा उसके कानों मे उँडेल दे। किन्तु शायद पारो ये बाते सुनने को तैयार नहीं थी । वह रो रही थी । माता भी अपने आप को न रोक सकी और उनकी आँखे भर आईं । और पारो उनसे लिपट कर धीरे-धीरे सिसकियाँ भरने लगी । माता उसके रोने को

समझती थीं। पर अन्जान बनी रही। वे अब मुँह से कुछ नही कह सकती थी। कहने को अब कुछ शेष भी नही रह गया था। वे मौन, प्यार से उसके सर पर हाथ फेरती रही। और कुछ देर बाद वे बड़ी कठिनाई से कह सकी—"चुप रह बेटी चुप रह ··" किन्तु वे स्वय अपने आँसू रोके न रोक सकी ··।

शोक···उनके आँसुओ को वहाँ देखने वाला कोई नही था। न पारो के पिता, न सुरेन्द्र के पिता और न सुरेन्द्र और न शायद पारो की माता की आत्मा। बहुत देर तक इसी प्रकार एक-दूसरे से लिपटी रोती रही। और उनकी अतृप्त भावनायें उनका मन कुरेदती रही···।

२१

सुरेन्द्र ने जब पारो की मगनी और बैसाख महीने मे उसके ब्याह की बात सुनी तो, उसके दिल मे एक धक्का सा लगा। उसे ऐसा लगा जैसे उसके हाथ से कोई वस्तु छीनी जा रही है। कई प्रकार के विचार उसके मन मे उठे। किन्तु थोडी देर बाद उसने अपने मन पर विजय पा ली। क्योकि अब वह किसी की याद को लेकर, उसके बारे मे सोचना, और मगज़मारी करना ठीक नही समझता था। सुषमा से निराश होकर, उसकी मूर्खता देखकर, और हरिचरन के यहाँ जाने से पहले उसने यह निर्णय कर लिया था, अब अपने आपको इच्छाओ का दास बनाना ठीक नही। बेकार किसी विचार और आशा के साथ अपने आप को बाँधना मूर्खता है···। जीवन मे घटनाएँ सागर की लहरो की तरह कभी

उभरती हैं और कभी अन्तराल मे खो जाती है। कभी इनका महत्व होता है, और कभी नही भी। मनुष्य को नियति के प्रहार सहने पडते हैं। नियति की धारा में मनुष्य का अस्तित्व एक तरणी की भाँति है। यह धारा चाहे किसी को बहा ले जाये। जिस किनारे चाहे लगा दे। आशा और निराशा का प्रश्न ही नही। प्रत्येक वस्तु का अत एक मजिल है। जहाँ विभिन्न वस्तुये एक-दूसरे मे मिलकर अपना अस्तित्व खो देती हैं।

इतना कुछ सोच कर वह फिर सोचता था, शायद मै पलायन वादी बन गया हूँ···मै संघर्ष और प्रगति से घबराने लगा हूँ। मैने जीवन को जुआ समझ लिया है। नियति जिस पर अपना पाँसा फेकती रहती है और मनुष्य हमेशा हारता रहता है···।' वह यह सब कुछ जानता था। लेकिन वह किसी भी सुषमा, किसी हरिचरन, और किसी भी पारो के प्रति सघर्ष शील बनाना उचित नही समझता था। क्यो कि उसने बार बार यह सोचा था, जीवन मे किसी एक वस्तु को महत्व देना उचित नही।

किन्तु हरिचरन से उसकी मुलाकात रोज होती थी। वह कभी उससे घर मे मिलता और कभी पार्क मे। कभी वे इकट्ठे सिनेमा जाते और कभी नदी के किनारे विहार को। जहाँ उनके शब्दो मे मुर्दे बोला करते हैं।

हरिचरन के पिता ने हाल ही मे, नगर से पाँच मील दूर जगल के निकट नीबू, लीची और अमरूद इत्यादि का एक बहुत बडा बागान खरीदा था। एक दिन वे वहाँ घूमने गए। वहाँ उन्होने जी भर कर पकी हुई लीचियाँ खाईं, और जब वापस लौटने लगे, बहुत सारे नीबू अचार के लिये तोड़ते लाये।

एक दिन वे जगल की सैर को गये। शिकार खेलना तो उनमें से

कसी को भी नही आता था। लेकिन फिर भी वहाँ खूब आनन्द रहा। रिचरन ने एक कोल स्त्री से फूलो की माला तैयार करवाई और ुरेन्द्र के गले मे पहना दी। सुरेन्द्र ने कुछ पेडो के रगीन पत्ते लेकर नसे उसकी वेणी सजा दी। उसने मानो आशा और निराशा के लोक निकल कर विस्मृति के ब्रह्मांड मे खो जाने का प्रयत्न किया। उसने ाहा वह हरिचरन के विचारों, उसके मोह···उसके बाहुपाशो मे बँधकर पने आपको भूल जाये। न उसे अपनी यात्रा का ख्याल रहे और न जिल का। न उसे अपने आप की सुध रहे और न अपने-परायो की। से ऐसा बनने मे एक प्रकार का सन्तोष मिल रहा था।

किन्तु उसके मन मे फिर भी एक प्रकार का अविश्वास घर कर ाता। उसे अपनी आँखो के सामने कोई भी वस्तु विश्वास जनक प्रतीत हीं होती थी। क्या यह धरती, क्या यह चाँद-सूरज और सितारे, क्या ह आकाश और क्या यह धरा, सुषमा, हरिचरन, और राही जी, था प्रेमीजी सभी उसे अविश्वास ही के रूप जान पडते थे। उसके लिये छ विश्वास योग्य और सत्य था, तो केवल एक विचार और जिज्ञासा ो भावना। जीवन कुछ पा जाना चाहता है। कुछ ढूँढना चाहता । किन्तु वह वस्तु अगोचर है। आँखे उसे देखना चाहती हैं। कान सके दिल की धड़कने सुनना चाहते हैं, और हाथ उसे स्पर्श करना ाहते हैं। लेकिन वह नजर आकर भी नज़र नही आती। अवसाद की नी कुहर उसकी आँखो के आगे छाई हुई है, वह किसी वस्तु को साफ ौर से देख भी नही सकता।

एक दिन प्रेमी जी से उसकी भेट हुई। उम्होने बताया, आजकल ुषमा जी-जान से साहित्य रचना में सलग्न है। वह धडाधड़ कविताये ौर कहानियाँ लिख रही है। उसकी एक-आध रचना अच्छी-अच्छी त्रिकाओ मे आ चुकी है। राही जी उसके लिये बहुत-कुछ कर रहे हैं।

वह ये सारी बाते सुन कर पहले तो मौन रहा। फिर धीरे से बोला—"अच्छी बात है, मुझे यह जान कर खुशी हुई।"

प्रेमी जी बोले—"यार तुम तो उसे बिल्कुल भूल ही गये···?"

उसने उत्तर मे कहा—"मै कभी किसी को नही भूलता मेरे भाई··· कोशिश करता हूँ, तो भी नही भूल पाता। लेकिन यह तो कहिये क्या जीवन मे सारी बाते याद रखने की होती है···?"

"अवश्य···।" प्रेमी जी बोले—"तब तुम कलाकार काहे के हो··· ।"

और वह उत्तर मे बिल्कुल मौन रह गया। उसे इतना मालूम था कि आजकल सुषमा और राही जी मे बडे जोरो का पत्र व्यवहार हो रहा है। और लोगो मे कई प्रकार की चर्चाये हो रही है। यद्यपि वह ऐसी बातो पर विश्वास नही करता था, किन्तु सुषमा को इतना अधिक अबोध भी नही समझता था। उसके प्रति उसके मन मे अब वह पहले जैसा आदर नही रह गया था।

प्रेमी जी की बातो का वह कोई प्रभाव नही लेना चाहता था। किन्तु फिर भी कुछ तो उसे सोचना ही पडा···वह कितनी नादान और मूर्ख लडकी है। वह किस प्रकार आँखे मूँद विनाश के पथ पर चल रही है। न जाने इसका अंत कैसे और कहाँ होगा···।

प्रेमी जी से हुई इस मुलाकात को काफी दिन बीत गये। कई दिनो तक उस पर इन बातो का प्रभाव रहा और धीरे-धीरे वह सब कुछ भूल जाने का प्रयत्न करता रहा। इसी बीच वह हरिचरन के और निकट होता गया। हरिचरन का अनुरोध था वह मास्टरी छोड दे। लेकिन वह ऐसा करने को तैयार नही था। स्कूल के बच्चो की परीक्षाये निकट थी। ऐसी दशा मे वह स्कूल बिल्कुल नही छोड़ सकता था। वह हरिचरन

बहुत घुल-मिल गया था। वह जानता था, वह क्या चाहती है। किन्तु क बात फिर भी उसके सामने स्पष्ट नही थी। याने स्पष्ट होकर भी ष्ट नही थी। हरिचरन जो चाहती है, वह उसे कैसे मिल जायगा। योकि उसके माता-पिता बिल्कुल मौन थे। दिन बीतते जा रहे थे और न्हे उनके सम्बन्ध मे कुछ कहना चाहिये था, लेकिन वे मौन थे।

सुषमा से एक कटु अनुभव प्राप्त कर चुकने के पश्चात्, स्त्री नाम ो वस्तु से उसका विश्वास उठ गया था। स्त्री उसके लिये एक समस्या न गई थी। किसी भी स्त्री के बारे कोई निर्णय कर लेना उसके लिये ासान नही था। वह डरता था। कही आगे चलकर हरिचरन भी षमा ही न बन जाये। इसलिये कभी-कभी उसके मन मे हरिचरन के ति एक खिचाव सा आ जाता। कई बार उसकी इच्छा हुई, वह उससे ह दे ···"हरिचरन मै तुम्हारे मुँह से स्पष्ट रूप से कुछ सुनना चाहता ···बोलो हम एक-दूसरे से इस प्रकार कब तक मिलते रहेगे···कब हम नो एक हो जायेगे···वह घड़ी कब आएगी···बोलो कब···?"

लेकिन फिर वह सोचने लगता—'ऐसी भी क्या जल्दी है। रिचरन शायद अपना बी. ए. का परीक्षाफल देख रही है···शायद उसे स समय की प्रतीक्षा है। जब वह मास्टरी का काम छोड़ कर उसके केदारी के कामो मे अच्छी तरह हाथ बँटाने लगेगा और एक प्रकार अपने पैरो पर खडा हो जायगा। अपना मुँह खोलकर अपनी हमन्यता को चोट नही पहुँचानी चाहिये। इससे अपनी ही हँसी उड़ती ।'

इस प्रकार उसके मन में कई संघर्ष जन्म ले चुके थे। और दिन ातते जा रहे थे। वही दुनिया थी, वही लोग थे। पर उसे बहुत कुछ दला-बदला सा नजर आता था। इधर एक लम्बे समय से उसकी खनी विश्राम ले रही थी। उसने लिखने-पढने की ओर ध्यान दिया।

मने बीते दिनो की विशेष घटनाओ को एक उपन्यासिका के रूप मे पि-बद्ध करना आरम्भ कर दिया'' ।

× × ×

एक दिन जब वह हरिचरन के साथ टहल रहा था, उसने अपने लिखे जाने वाले इस उपन्यास की चर्चा की । हरिचरन बहुत प्रसन्न हुई । उसने पूछा—"यह पुस्तक छपेगी कहाँ ''?"

उसने कहा—"पहले पुस्तक लिख लूँ फिर प्रकाशक से बात करूँगा ।"

हरिचरन ने पूछा—'प्रकाशक इसके लिये तुम्हे देगा क्या '''?"

उसने उत्तर दिया—"यही दो-चार सौ रुपये और क्या...?"

हरिचरन हँसती हुई बोली—"अच्छा तो मै तुम्हे इस पुस्तक के पाँच सौ रुपये दूँगी और मै इसे खुद छापूँगी ''क्या मंजूर है'''?"

वह हँस दिया ।

हरिचरन ने पर्स से एक सौ का नोट निकाला और उसे देती हुई बोली—"लो यह 'एडवांस'''''।"

उसने हँसते हुए कहा—"मैं' एडवांस' नही लेता'''इसे रखो अपने पास । जब पुस्तक लिख लूँगा और वह छप जायेगी, तब मुझे जो देना होगा, दे देना '''।''

और वे दोनो खिलखिला कर हँस दिये'''।

कुछ क्षण पश्चात् हरिचरन कुछ गंभीर होकर बोली—'क्या तुम अपनी पुस्तके स्वयं नही छाप सकते सुरेन्द्र ''क्या तुम्हे इसके लिये प्रकाशको की खुशामदें करनी पड़ती है''''?"

"खुद पुस्तके छापने के लिये रुपया चाहिये। और प्रकाशको द्वारा पुस्तक छपवा लेने के पश्चात् रुपयो ही के लिये उनकी खुशामद करनी पडती है। इस युग मे जिनके पास रुपया-पैसा तथा इसी प्रकार के अन्य साधन है, साहित्य की उच्च पदवी भी वे ही खरीद सकते हैं।"

"तो तुम प्रकाशको का मुँह क्यो देखते हो ? क्यो नही अपना काम शुरू कर देते। इसीलिये मै कहती हूँ तुम नौकरी छोड दो ··।"

सुरेन्द्र हरिचरन की यह बात सुन कर कुछ सोचने लगा। और कुछ क्षण पश्चात् कुछ स्पष्ट हो बोला—"कुल सौ-सवा सौ रुपये तो मिलते है। क्या उन्हे भी ठुकरा दूँ ···? पुस्तके छापने के लिये रुपया चाहिये रुपया। मैने तो कभी यह सपना देखा था कि मेरा अपना प्रेस हो और अपना प्रकाशन। मै कोई अखबार निकालूँ और पत्रिका। अपनी और उन गरीब साहित्यिको की पुस्तके प्रकाशित करूँ, जिनमे प्रतिभा है पर जिनके पास पैसा नही। लेकिन शेखचिल्ली के सपने भी कभी पूरे हुए है क्या···?"

"ऊँह ! क्या यह भी कोई बड़ी बात है···?" हरिचरन कुछ लापरवाही से बोली—"तुम घबराओ नही। अपना उपन्यास अति शीघ्र समाप्त करो। हम यह काम भी जल्दी ही शुरू कर देगे।"

सुरेन्द्र मन ही मन फूला न समाया। क्या वह हरिचरन के मुँह से कुछ और भी स्पष्ट बात सुनना चाहता था···? हरिचरन इससे और अधिक स्पष्ट और क्या बोल सकती थी। इससे अधिक तो शायद 'स्क्रीन' के परदे पर ही कुछ पात्र स्पष्ट हो आपस मे बातें करते हैं। साधारण जीवन मे नहीं ··।

वह कुछ बनता हुआ बोला—"तुम्हारा भी किस मनहूस से वास्ता पड़ा है हरिचरन। मै लज्जित हूँ···!"

उत्तर मे हरिचरन के चेहरे पर एक गर्व मिश्रित मुस्कान खेल गई।

उस दिन उन्होने टहलते-टहलते भविष्य के कई एक कार्य-क्रम निर्धारित कर लिये। चूंकि हरिचरन भी सुरेन्द्र के साथ रह कर कुछ तुकबन्दी करने लगी थी, इसलिये भविष्य के सुन्दर सपने उसके लिये कुछ कम आकर्षण नही रखते थे। उसे अमर बनने की चाह थी। उसके विचारो में, रुपये पैसे के जरिये सब कुछ बना जा सकता था।

जब वे घूम फिर कर घर लौटे, वहाँ भी उन्होने एक जगह बैठकर काफी बाते सोची। सयोगवश उस दिन हरिचरन का पागल भाई भी सुरेन्द्र के पास आकर बैठ गया। वह कुछ होश में था। हरिचरन की अनुपस्थिति मे वह सुरेन्द्र से बाते करता रहा। उसे प्रथम बार यह अनुभव हुआ कि हरिचरन का भाई पागल नही, बल्कि पागल बना दिया गया है। इस अनुभव के पश्चात् उसे हरिचरन के परिवार वालो पर बहुत क्रोध आया। ग्लानि और क्षोभ से उसका मन भर आया। उसे शैल भाभी की बाते याद आ गई। उसने अनुभव किया, वह कैसे कृत्रिम लोगो का दोस्ती का दम भर रहा है, जो अपने स्वार्थ के पीछे अधे होकर सब कुछ करने को तैयार हो जाते हैं। जिन्हे लालच मे आकर अपना पराया कोई भी नही सूझता। उस दिन जहाँ उसे हरिचरन की बाते सुनकर एक विशेष प्रकार का आनन्द मिला था, वहाँ दूसरी ओर उसके भाई की करुण कहानी सुन कर उसके मन पर एक बहुत बड़ी ठेस पहुँची थी !

*

*

२२

इसके दूसरे दिन सुरेन्द्र को घर के किसी काम से शैल के यहाँ जाना पडा। जब से वे सुषमा के यहां से लौट कर आई थी, उनकी दोबारा भेट नही हुई थी। सध्या का समय था जब सुरेन्द्र वहाँ गया। शैल अपने बगीचे मे बैठी गुलाब के कुछ नए पौधो की क्यारियाँ सजा रही थी। सुरेन्द्र को देख कर जहाँ वे प्रसन्न हुई, दूसरी ओर उन्होने उसके लगभग एक महीने तक न आने की शिकायत की। उन्होने कुछ चिंतित हो पूछा—"क्या सुषमा का तुम्हे इतना गम मार गया जो मिलने तक न आए···।"

'मै तो उसे भूल चुका हूं" उसने नि.सकोच हो कर कहा—"गम और दुख किस बात का भाभी···? मेरे सामने तो इस घटना का महत्व एक आँधो जैसा है, जो आई और हमारी आँखो मे धूल झोकती हुई आगे निकल गई। एक जीवन मे ऐसी अनेको घटनाएँ पनप सकती हैं। किसी से शिकायत कैसी और शिकवा कैसा···?"

शैल बोली—"किन्तु मै इस दुःख और अपमान को कभी नही भूल सकूँगी···।"

"बजाए इसके कि जख्म कुरेदे जाँय" वह बोला—"अच्छा तो यह है कि इसका नाम ही न लिया जाए। हमारे लिये अन्य ऐसी अनेको बाते हैं जिन पर गभीरता से विचार किया जा सकता है।"

"हाँ प्रयत्न तो ऐसा ही होना चाहिये" शैल ने दीर्घ निःश्वास छोडा।

"भाभी···।" सुरेन्द्र ने गुलाब का एक फूल तोडते हुए कहा—"मैं सच कहू···। नारी के प्रति मेरा विश्वास उठ गया है। मुझे प्रेम कथाओं पर भी विश्वास नही। मै नही समझता, कौन थी हीर और कौन था राँझा। कौन था मिर्जा कौन थी साहबाँ। और किस सस्सी ने किस पुन्नु के लिए आँसू बहाये थे। मेरे लिये तो जीवन का एक उद्देश्य है। मैंने सुषमा की इच्छा क्यो की थी, वह तो आप जानती ही हैं। मैं जीवन मे कुछ करना चाहता हूँ। कुछ कर सकने ही मे मुझ वास्तविक सतोष मिल सकता है न कि सुषमा को पाने मे। इसलिये यदि वह मेरे पास न आ सकी तो इसका मतलब यह नही कि मेरे काम रुक गये। मेरे विचार कुठित हो गये, और मै अंधेरे मे भटकने लगा। नही! मुझे जो कुछ करना चाहिए था, वह मै कर रहा हू। मै और भी बहुत कुछ करना चाहता हूँ। बस मेरे लिए यही प्रेम है। और कर्म इसकी साधना। सुषमा मेरी एक मजिल भी है, जो अब मुझसे बहुत पीछे छूट गई है और मै बहुत आगे निकल आया हूँ।"

"बहुत गूढ बनने लगे हो अब···" शैल मुस्कराती हुई बोली। और गृह-वाटिका से निकल कर गुसलखाने मे हाथ धोने चली गई। वह वही टहलने लगा। यासमीन के फूलो की सुगंध से वातावरण महक रहा था। थोडी देर मे शैल बाहर जाने के लिये तैयार होकर निकल आई। और बाहर कोलतार से बनी सडक पर जब वे धीरे उत्तर पश्चिम की ओर खुले मैदानो की तरफ बढ रहे थे, शैल ने कहा—"सुरेन्द्र तुम्हारे भैया को भी सुषमा की इस हरकत पर दु.ख हुआ। और अब वे उसका नाम सुनना भी पसन्द नही करते।"

सुरेन्द्र बोला—"भाभी वह दिन दूर नही, जब सुषमा को अपने

आपसे घृणा होने लगेगी। जीवन मे भूल सब करते है। किन्तु बुद्धिमान एक बार गलत रास्ते पर चल कर चेत जाता है, और मूर्ख अपनी भूलो को बार-बार दोहराता रहता है।" उसकी नजरे आकाश की ओर उठ गई, जहाँ कुछ काले-काले मेघ घिर चले थे। और जिसके कारण सध्या का झुट-पुटा कुछ गहरा हो गया था। वह आगे कहने लगा—"भाभी अब उसकी बाते छोडिये। हमे उसका नाम तक नही लेना चाहिये।"

कुछ क्षणो तक वे मौन टहलते हुए आगे बढते रहे। दूर सामने एक पर्वत की वृहद श्यामल छाया, जैसे उचक-उचक कर उन्हे निहार रही थी। और उस गिरि के पार अस्त होते हुए सूर्य की लालिमा, क्षितिज का सुहाग बन कर मुस्कराती दिखाई दे रहीथी। वह एक टक उसी ओर देखता रहा। पक्षियो के वृन्द तेजी से उमी ओर उडे चले जा रहे थे। यदि आगे सध्या रात मे बदलने वाली न होती तो अवश्य ही इसी प्रकार विहार करते हुए वे नदी के किनारे चले जाते। नदी के उस पार जगल का दृश्य बहुत सुहावना होता है। जब कभी किसी ने नदी के एक किनारे खडे होकर अपने मुँह से एक स्वर, एक ध्वनि निकाली है, उसकी प्रति-ध्वनि दूसरे किनारे से अवश्य आई है। पर वे नदी के किनारे से काफी दूर थे। उनके स्वर, उनके पैरों की आहट केवल उस निस्तब्ध वातावरण में गूँज रही थी। शैल सकोच भरे शब्दो मे कह रही थी—"सुरेन्द्र, मै सुषमा की मौसी के यहाँ गई थी। वे मेरी बडी इज्जत करते हैं। उनसे पता चला, सुषमा इन दिनो किसी से मिलती-जुलती नही। उसका अपने पिता से अभी झगडा हुआ है। राही जी इन दिनो बम्बई मे हैं। उनके पत्र सुषमा को अक्सर आते रहते हैं। सुना है बम्बई ही में कही उसके ब्याह की बात चल रही है···।"

किससे···?" उसने प्रश्न किया।

वे बोली—इतना अभी मालूम नही···।"

"छोडो भाभी इन बातो को···" उसने रखाई से कहा। और दो फर्लांग तक जाकर वे वापस मुडे। कुछ दूर लौट आने पर वे एक पुल पर बैठ गए।

शैल कुछ गभीर होकर बोली—"इस जीवन में कुछ भी नही है सुरेन्द्र। और जो कुछ है भी वह सब मिथ्या है। यह याद रखो मनुष्य की भावनाएँ सदा अतृप्त रहती हैं।"

वह बोला—"मै ऐसी कोई भी बात नही सोचता भाभी। हाँ कभी-कभी यह सोचा करता हूँ बहुत ही अच्छा होता यदि मै पढा न होता, बल्कि मेरी गणना मूर्ख और जाहिलो मे होती। मै लेखक या कवि, या और भी जो कुछ लोग मुझे समझते हैं, मै बिल्कुल न होता। न मुझ मे भावुकता होती और न मै बुद्धि द्वारा किसी वस्तु पर तर्क करता। मै निरा जाहिल और मूर्ख होता। तब मुझे कोई सुषमा, कोई भावना, कोई वस्तु बिल्कुल परेशान न करती। मै काम करता, खाता और आराम की नीद सोता। मुझे तो ऐसा लगता है जैसे यह सारा शोक सताप, दुख, वेदना और अवसाद, यदि मुझ मे कुछ है तो सब मेरे अपने दिमाग की उपज है।" वह कुछ क्षणो के लिए रुक कर बात का रूप बदलते हुए कहने लगा—'हाँ भाभी अब मैने तो अपने आपको एक धारा मे एक तूफान के आसरे छोड दिया है। वह मुझे चाहे जहाँ बहा ले जाए और चाहे जिस किनारे लगा दे···।"

"अरे तुम आशावादी···" शैल कुछ ऊँचे स्वरो मे बोली—"तुम्हारे अन्दर इतनी निराशा घर कर गई···"

वह बोला—"हाँ ··! मै तो आज आप को एक मजेदार बात सुनने आया हूँ ··।

"अच्छा जरा बोलो तो, मैं भी सुनूँ···" उन्होंने उत्सुकता प्रकट की।

सुरेन्द्र ने पिछले दिनो हरिचरन से की गई भेटो की चर्चा आरम्भ कर दी। उसने बताया, कैसे इधर एक महीने से उसकी उससे मुलाकाते बढ गई है। किस प्रकार वह उसके घर आया-जाया करता है, और किस तरह वह उसके बिल्कुल निकट आ गई है। उसने बातो ही बातो मे हरिचरन के पिता, याने ठेकेदार साहब की प्रशसा की, और कहा—'वे बडे ही सरल स्वभाव के सादे आदमी हैं।' ठेकेदारनी जी के प्रति अपना श्रद्धा प्रकट करते हुए वह बोला—'ममी बड़ी ही मिलनसार है और सदैव उसे घर आने का निमत्रण देती रहती है ···" हरिचरन की कुछ त्रुटियो की ओर सकेत करते हुए वह बोला—'यद्यपि वह कुछ बातूनी है और एक साथ बहुत सारी बाते सोचने की आदी है, फिर भी यह मानना पडेगा कि उसमे कुछ कर सकने की क्षमता और रुचि है। उसे अपने रुपये-पैसे का घमड है, पर वह बडी ही सहृदय और सुशील है। उसने शैल से बताया—'हरिचरन के माता-पिता उसे शीघ्र ही उन दोनो के बारे अपना कोई फैसला दे देगे। और फिर वह बोला—"आप का इस विषय मे क्या विचार है ··?"

शैल ने स्पष्ट हो प्रश्न किया—"तुम मुझे एक बात बताओ, क्या हरिचरन को तुम चाहते हो···?"

वह कुछ बौखला सा गया। उसके मुँह से निकला—'मतलब···?"

"मतलब साफ है···?" शैल बोली—" मै जानती हूँ, यह चाहने, न चाहने और प्रेम जैसी वस्तु पर विश्वास नही रहा। फिर क्या है तुम्हारे मन में बोलो—कौन सा लोभ है, जो तुम्हारा मन उस ओर फेर रहा है···?"

"भाभी···।" उसके मुँह से निकला "शायद आपको मेरी बाते अच्छी नही लगी···"

"नही !" वे बोली—"मैंने स्पष्ट हो तुम से एक प्रश्न किया

है·····इसका उत्तर दो·····तभी मैं तुम्हे अपनी कोई सही राय
सकती हूँ।"

"इतना तो आप समझ गई होगी भाभी" वह बोला—"कि मै कभ
स्वयं किसी के दरवाजे पर नही गया। किसी ने खुद मेरा दरवाजा खट
खटाया है; और मैने मन के द्वार खोल दिये। वह हृदय जिसमे वीरानी
घर कर गई हो, जो सूना हो, यदि उसमें कोई भावना, कोई इच्छा औ
मोह आबाद होने लगे, तो मै कैसे उसे निकाल दूँ ··?"

"तुम कुछ अहवादी होते चले जा रहे हो···" शैल बोली—"तुम
एक सौदा कर रहे हो। लेकिन सौदा करने और निर्णय करने से भी
पहले यह सोचा है कि हमारी औकात क्या है···? वह एक बड़े घर की
लडकी है। उनका हजारो-लाखो का कारोबार चलता है। कार, मोटर
चाकर, अच्छा खाना और अच्छा पहनना, तुम क्या उसे अपने यहाँ
ला कर स्वय सुखी, और उसे सुखी रख सकोगे ·?"

"ये सब तो मैने सोचा ही नही है भाभी···" वह बोला—"और न
सोचना चाहता हूँ ·। मै तो उनका क्लर्क बन जाऊँगा। आपको याद
होगा, आपने ही तो कहा था उन्हे अपने घर के लिये एक क्लर्क की
जरूरत है ·!"

शैल को यह बाते सुनकर दु ख हुआ। वे बोली—"तुम इतना गिर
कर सोचने लगोगे, ऐसा मै भूल कर भी नही सोच सकती थी। तुमने
यह बात मन मे आने दी, इसका तो यह मतलब है कि तुम एक हरिचरन
के पीछे, एक बडी कोठी के पीछे, अपने वृद्ध माता-पिता को त्याग कर
उनका घर जमाई बनना चाहते हो···है न···?" और फिर वे कुछ कठोर
शब्दो मे बोली—"तुम एक महीने के अन्दर-अन्दर इतने निर्लज्ज हो
गये···। आश्चर्य है मुझे। शायद इसी लिये मुझे मुँह नहीं दिखाते
थे··।"

वह खिलखिला कर हंस पड़ा—"वाह ? आप बिगड गईं न भाभी । अरे, यह तो केवल एक अनुमान है । किन्तु आपने यह कैसे सोच लिया कि मै माता-पिता और आप से दूर हट रहा हूं । हमारे अपने घर का नक्शा भी तो बदल सकता है...।"

"तुम मूर्ख हो ·" वे बोली—"तुम कुछ समझते नही । तुम्हारे पास वैसे साधन नही । और जो तुम इसके लिए दूसरे का हाथ देख रहे हो, वह तुम्हारी कुबुद्धि का परिचायक है । तुम और अधिक मूर्ख न बनो···"

सुरेन्द्र ने कहा—"मै तो आपसे सलाह लेने आया था, कि यह काम कैसे हो...? भाभी ! सच पूछिये तो अब मै आँख मिचौनी के खेलो से ऊब गया हूं । चाहता हूँ किसी का बन जाऊँ और कोई सचमुच मुझे अपना बना ले । हरिचरन कौर कोई बुरी लडकी नही···।"

शैल के मुँह से निकला—"लेकिन तुम उसे मन से नही चाहते, यह मै जानती हूँ !"

वह बोला—"अपने मन को मै खुद भी नही समझ पाता भाभी, मै क्या करूँ··· !"

"तो ठहर जाओ···" वे बोली—"मै अपनी ओर से इतनी जल्दी अभी कोई फैसला नही दे सकती । तुम माता-पिता से इसकी चर्चा करो । दो-चार दिनो के बाद मै स्वय घर आऊँगी । तब तक शायद तुम अपने मन को समझा सको ··!" वे मुस्करा दी ।

फिर वे वहाँ कुछ देर तक मौन बैठे रहे । अँधेरा पूरी तरह घिर आया था और सडको की बत्तियाँ जगमगा उठी थी । इतने मे शैल का कुत्ता किसी ओर से निकल आया । शैल उससे लाड करने लगी । सुरेन्द्र हरिचरन की स्मृति मे खो गया । और फिर कुछ क्षण बाद वह धीरे से बोला—"मेरा मन इस जगह से ऊब चुका है भाभी, मै इस जगह से कही दूर चला जाऊँगा ।"

शैल बोली—"अच्छा विचार है, मै भी तुम्हे यही सलाह दूँगी ·"

शैल का यह व्यग्य सुनकर वह बोला—'आप बडी कठोर है भाभी···"

"हाँ कभी हो जाती हूँ" वे धीरे से बोली—'और यदि इससे भी कठोर बात सुनना चाहते हो तो सुनो और लिख लो, हरिचरन तुम से कभी ब्याह नही कर सकती !"

वह जैसे चौक कर बोला—"क्यो ·· ?"

और शैल निश्चिन्त भाव से बोली—"समय तुम्हे स्वय इसका उत्तर देगा ।"

इतना सुन कर वह मौन हो गया । फिर वे दोनो उस स्थान से खडे हुए और धीरे-धीरे घर की ओर लौटने लगे । उस समय कुछ ठडी हवा बहने लगी थी । आशा थी आकाश पर घिरे हुए बादल बरसेगे । शैल कहने लगी, यदि वर्षा हुई तो उनके रोपे हुए गुलाब के नये पौधे एक-दो दिन ही मे जड पकड लेगे । पर सुरेन्द्र सोच रहा था, यह सम्भव नही हरिचरन के हृदय मे रोपा गया उसका प्रीत का पौधा जड पकड सके, और वह अपनी इच्छाओ मे सफल हो सके । शैल की बाते उसके मस्तिष्क मे गूँजती रही । एक संघर्ष ने उसके अन्दर जन्म ले लिया था । वह अस्थिर हो उठा था । उस मुसाफिर की तरह, जो किसी मार्ग पर चल रहा हो, और बहुत दूर जा चुकने के बाद ही फिर अचानक उसे इस बात का ज्ञान हो कि यह रास्ता गलत है, और वह अपने लक्ष्य की ओर बढने की अपेक्षा, उससे दूर हटता जा रहा है ।

कई प्रकार की बाते उसके मन मे उठी, और वह सोचने लगा, बेचारो और कल्पनाओ की दुनिया मे रह कर हो यदि हम किसी वस्तु को एक विशिष्ट रूप और अन्दाज मे देखने का प्रयत्न करते रहे तो शायद यह एक गलती है । हमे यथार्थ के निकट होकर उसे कुछ परखकर

फिर उसके बारे मे कोई निर्णय करना चाहिये। अगले हफ्ते स्कूल की परिक्षाएँ आरम्भ होने वाली थी। उसने सोचा अब वह हरिचरन से कुछ दिनो के बाद साफ-साफ यह बात पूछ लेगा कि वे कब एक जीवन मे आ रहे है···।

२३

हरिचरन के पिता ने एक वर्ष पहले एक कारखानादार से, उसके मजदूरो तथा अन्य कर्मचारियो के लिये कुछ नये क्वार्टर बनाने का ठेका लिया था। टेडर लगभग एक लाख रुपये का था, जिसमे उन्हे लगभग तीस हजार की बचत तो जरूर होती। वह काम वे काफी दिनो पहले खत्म कर चुके थे। लेकिन कम्पनी की ओर से अभी तक उनके बिल की अदायगी नही हुई थी। कम्पनी के नियुक्त किये गये कुछ इजीनियरों और अफसरो ने उन मकानो मे कई नुक्स निकाले थे। मकानो की बनावट ठीक नही थी और उन पर निश्चित रकम भी खर्च नही की गई। अधिक मुनाफे का ख्याल रखकर वे सस्ते ही मे खडे कर दिये गये थे। इसलिये कम्पनी मुकर्रर रकम की अदायगी से इन्कार कर रही थी और मामला कोर्ट मे चला गया था। लगभग छ महीने बीतने को आये, कोई फैसला होता नजर नही आता था। इससे उन्हे काफी आर्थिक हानि हो रही थी। वे केस को लम्बा होने देना नही चाहते थे। उन्होने कम्पनी के कुछ अफसरो को रिश्वत दी और कई जगह सिफारिश से काम लिया।

एक दिन निरजन सिह, हरिचरन का भाई जब कारखाने के कुछ अफसरों से मिलकर दफ्तर से बाहर निकल रहा था, उसकी नजर एक

ऐसे व्यक्ति पर पडी, जो सफेद साफा बाँधे, आँखो पर चश्मा लगाये, टेबुल पर झुका कुछ लिख रहा था। निरंजन पहले भी कई बार उस व्यक्ति को देख चुका था। लेकिन कभी उसने उससे साक्षात्कार करने या कुछ बाते करने की आवश्यकता अनुभव नही की थी। यद्यपि वह उसे पहचानता था और शायद बचपन मे वे कभी इकट्ठे खेल भी चुके थे। अचानक उस दिन उसे सब कुछ याद आ गया। वह उसके पास गया, और उससे हाथ मिलाया, और कुछ बनता हुआ सा बोला—'यार तुम तो अब बाबू होकर हमे भूल ही गये।"

इन्द्रजीत ने बडे आदर से उसे एक कुर्सी पर बैठ जाने को कहा। और फिर रस्मी तौर पर पूछा—"कहिये कैसे आना हुआ····? भाई अब तो आप बहुत बडे ठेकेदार हो गये, गरीबो से कैसे मिल सकते है आप···"

"नही ऐसी बात नही···" निरंजन सिंह ने कहा और फिर कुछ मुँह बना कर बोला—"यह साली ठेकेदारी भी एक झझट ही है। न दिन को चैन और न रात को आराम। जब देखो परेशानी। जेब से पैसे खर्च करो और फिर बिल की वसूली के लिये मालिको के यहाँ सौ-सौ चक्कर काटो·· !"

इन्द्रजीत ने पूछा—"वह आपके केस का क्या हुआ ?"

"यदि तुम लोग सहयोग दो तो आज-कल ही मे फैसला हो जाये" वह बोला—"इ जीनियर को तो मैने राजी कर लिया है, और अब कुछ और लोगो मे बाते करनी हैं·· " फिर वह कुछ बदल कर बोला—"अरे यार तुम तो हमारे यहाँ कभी आते ही नही···"

"आपने मुझे याद कब किया···?" इन्द्रजीत मुस्कराता हुआ सा बोला—'फिर आप बडे आदमी ठहरे और मै गरीब। आऊं भी तो कैसे···?"

"अरे छोडो यार इन बातो को ··" निरजन उससे हाथ मिलाता

हुआ बोला—'आज आओ हमारे यहाँ। वहाँ हम इतमिनान से बाते करगे" मै तुम्हारा इन्तजार करुंगा। और हाँ देखो दफ्तर से छूट कर सीधे हमारे यहाँ आ जाना, मै कार भिजवा दूँगा।"

इन्द्रजीत बोला—"नही, कार की क्या जरूरत है। मैं वैसे ही आ जाऊँगा···!"

"नही तुम्हे कार पर ही आना होगा···" निरजन ने कहा—"ताकि संध्या की चाय मे तुम हमारे साथ शरीक हो सको। और देखो···" वह धीरे से बोला—"तुम से एक बहुत ही जरूरी बात करनी है!"

इन्द्रजीत फिर मुस्कराने लगा।

निरजन फिर उससे एक बार हाथ मिलाता हुआ, वहाँ से विदा हुआ।

× × ×

और सध्या के समय पाँच बजे, जब इन्द्रजीत दफ्तर से बाहर निकला, उसने सडक के किनारे निरजन की कार खड़ी देखी। उसे विश्वास हो गया, निरजन सचमुच उसका इन्तजार कर रहा है। वह धीरे-धीरे उस ओर बढा, और जब कार के निकट पहुंचा, उसने देखा अन्दर एक युवती कार के हैण्डिल पर बाँहे टेके, हथेली पर चेहरा टिकाये, किसी गहरी मुद्रा मे खोई सी मूर्ति बनी बैठी थी। उसके सिर के बाल बडे सुन्दर ढग से सँवारे गये थे। पीछे जूडे मे खोसे हुये चम्पा के फूल और भी सुन्दर लग रहे थे।

'मुझे शायद धोखा हुआ' यह सोच कर वह सडक की दूसरी ओर मुडने लगा। अचानक उसे निरंजन का स्वर सुनाई दिया—"अरे भाई इन्द्र कहाँ चले?" उसने घूम कर देखा। निरजन कार के पास खडा था। कार मे बैठी हुई युवती कुछ सँभल कर उसकी ओर अनिमेष निहार रही थी। उसकी आँखो मे एक उत्सुकता थी और मादकता। इन्द्रजीत की नजरे नीचे झुक गईं···!"

निरंजन दो पग आगे बढा और उसे कार तक ले आया। फिर वे दोनो उसके अन्दर बैठ गये। सामने बैठी हुई युवती ने निरंजन से पूछा—"सीधे घर चले भैया···?"

निरंजन ने कहा—"हाँ! जरा प्रभा स्टोर से होते हुये जाएंगे···!"

उसके लिए अब यह स्पष्ट हो गया कि सामने बैठी हुई युवती कौन है। बहुत पहले उसने एक बार उसे देखा था, पर आश्चर्य है कि आज वह उसे पहचान ही नही सका।

कार सडक पर दौडने लगी। निरंजन ने इन्द्रजीत से पूछा—"मित्र, आज यदि तुम दफ्तर से सीधे घर नही गये तो तुम्हारी माता जी तुम्हारे इन्तज़ार मे परेशान तो नही हो जायेगी····?"

"नही···!" इन्द्रजीत बोला—"मै शीघ्र ही घर लौट जाऊँगा!"

निरंजन सामने बैठी हुई युवती से बोला—"सुन रही हो न हरिचरन···!" और फिर वह इन्द्रजीत से सम्बोधित हो, मुस्कराता हुआ कहने लगा—"हम तुम्हे जल्दी नही जाने देगे मेरे मित्र!"

सामने की सीट से हरिचरन बोली—"भैया आज तो हमारा कमला थियेटर मे नृत्य देखने का भी प्रोग्राम है। बडे-बडे कलाकार यहाँ आये हुए हैं। टिकटे खरीदी जा चुकी है···!"

"हाँ बहन···!" निरजन के मुँह से निकला और इन्द्रजीत की ओर देख-देख कर मुस्कराता रहा।

इन्द्रजीत एक सीधा-साधा, सरल स्वभाव का युवक, वह भी मुस्करा कर चुप रह गया। वह एक बहुत भले घर का लडका था। उसके पिता स्वर्गीय अमीर सिह नगर के एक अच्छे भद्र पुरुष माने जाते थे। वे एक मिल मे फोरमैन थे और मुनासिब आय मे अपना सीधा-सादा जीवन बिताते थे। उन्हे सगीत से अपार प्रेम था और वीणावादन मे नगर मे उनका कोई सानी नही था। धार्मिक विचारो के आदमी थे। अपना

.. लतू समय कीर्तन इत्यादि मे बिताते थे ! प्राय· लोग उनका कीर्तन और मगीत सुनने के इच्छुक रहते ।

इन्द्रजीत की माता एक भले घर की शिक्षित महिला थी। उनका जन्म बरमा मे हुआ था। उनके पिता बरमा के एक प्रसिद्ध ठेकेदार थे। और वे अपने पिता की अकेली एक सन्तान थी। अत व्याह के समय ठेकेदार महाशय ने अपनी लडकी के नाम बहुत सारा धन लगा दिया था। सरदार अमीर सिह ने अपने जीवन मे कभी अपनी पत्नी अवतार कौर के धन को छूने की आवश्यकता अनुभव नही की थी। भगवान की दया से उनके पास बहुत-कुछ था। उनके तीन बेटे थे। बडा लडका एक कारखाने मे काम करता था, जहाँ उसे दो-तीन सौ रुपये वेतन मिल जाता था। मंझला भी उसी कारखाने मे, और वह भी उतना ही कुछ कमा लेता था। बडा लडका अपनी शादी के कुछ दिन बाद ही पिता से अलग हो गया था। और मंझले को सरदार अमीर सिह ने स्वय अलग कर दिया था, क्योकि बुरी सोहबत मे बैठने के कारण उसे शराब इत्यादि की लत पड गई थी, और नगर मे काफी बदनाम हो चुका था। वे मंझले लडके से बहुत दुखी थे। यहाँ तक कि बात-चीत भी नहीं करते थे। तीसरा लडका, जो तब छोटा था, और एक मिडिल स्कूल मे पढता था, वह था इन्द्रजीत। वे उसे बहुत प्यार करते थे। उसे सदा नेक रहने का आदेश देते।

अभी इन्द्रजीत बारह वर्ष का ही था कि एक दिन सरदार अमीर सिह को भगवान के यहाँ से बुलावा आ गया। कहते है, उन्हे अपनी मृत्यु का ज्ञान कुछ पहले ही से हो गया था। एक दिन सवेरे उनकी छाती मे हल्का सा दर्द उठा और तीव्र हो उठा। डाक्टर बुलवाये गए। लेकिन सरदार ने उनकी तजवीज की हुई दवा खाने से इन्कार कर दिया और सुखमनी साहब का पाठ सुनने की इच्छा प्रकट की। और फिर उसी रात पौ फटने से पहले, 'जगत जलन्दा राख ले अपनी कृपा धार···!'

का पवित्र वाक्य मुख से उच्चारण करते हुए हमेशा के लिए मौन हो गए।

पति की मृत्यु के बाद श्रीमती अवतार कौर अपने आप को इस ससार मे एक प्रकार से एकान्त और नि सहाय सी समझने लगी। दो बडे लडके उनके निकट होकर भी उनसे दूर थे। बडा अपनी पारिवारिक दुनिया मे मस्त था। छोटा हमेशा लूट कर खाने के फेर मे नज़र आता, और बहुएं उन्हे कभी खातिर मे नही लाती थी। ले-दे कर उनके निकट एक इन्द्रजीत था। अभी वह मिडिल स्कूल मे पढ रहा था। उसमे उन्हे भविष्य की कुछ आशाएं थी। उन्होने उसकी शिक्षा जारी रखी।

कुछ दिनो के पश्चात् सरदारनी अवतार कौर के परिवार मे एक शोक जनक घटना घटी। उनका मँझला लडका, जो अब मद्यपान के साथ-साथ आवारा स्त्रियो के सग भी घूमने लगा था, एक दिन अपने ही एक साथी की छूरी का निशाना बन गया। इस प्रकार वह बेमौत मारा गया। श्रीमती अवतार कौर मन मसोस कर और कुछ आँसू बहाकर मौन हो रही।

एक वर्ष के बाद उनका बडा लडका अपने श्वसुर के बुलावे पर नई नौकरी के लोभ मे उनके पास अफ्रीका चला गया। श्रीमती अवतार कौर अब इन्द्रजीत के साथ एकाकी रह गई। वही उनके लिये अब वर्तमान और भविष्य का सहारा था। उन्होने उसे मैट्रिक तक पढाया। कुछ अपनी कोशिशो से इन्द्रजीत ने पजाब विश्वविद्यालय से 'ज्ञानी' का कोर्स भी पास कर लिया था। फिर इसके बाद वह मिल के दफ्तर मे क्लर्क लग गया।

श्रीमती अवतार कौर उसे बहुत प्यार करती थी। और ऐसा योग्य पुत्र पा, जो अपनी सारी कमाई लाकर उनके हाथ मे धर देता था, अपने पिछले सारे दुख भूल चुकी थी। वह इन्द्रजीत, जो उनकी आँखो का तारा था, जिसके खाने-पहनने से लेकर, प्रत्येक बात का वे ख्याल रखती थी।

उनकी अनुमति के बिना वह कहीं नहीं जाता था। लेकिन उस दिन वह निरजन के आग्रह पर माता से बिना आज्ञा लिये ही उनके घर चला गया।

कार दौड़ी चली जा रही थी। उसने देखा, हरिचरन कार 'ड्राईव' करने में बड़ी दक्ष थी। भरी सड़क में भी वह कार तेजी से चलाने में नहीं घबराती थी। प्रभा स्टोर के सामने कार रुकी। निरजन किसी काम से स्टोर में चला गया। इन्द्रजीत मौन अपने स्थान पर बैठा रहा। उसे अपने आप में कुछ अजीब सा लग रहा था। वह सड़क सड़क पर चलने वाले लोग, सारा बाजार और फिर···अचानक हरिचरन ने अपना पूरा चेहरा उसकी ओर घुमाया, और कुछ क्षणों तक उसकी ओर देखती रही। फिर मुस्कराते हुए, मुँह घुमा कर वह सामने की ओर देखने लगी। इन्द्रजीत को सबसे अधिक हरिचरन ही विचित्र प्रतीत हुई। वह मुँह घुमा कर बाहर स्टोर की ओर देखने लगा। उसका हृदय तीव्र गति से धड़क रहा था। फिर अचानक वह चौंक सा गया। हरिचरन धीमे, किन्तु मधुर कोमल स्वरों में बोल रही थी— 'भैया अभी आ जायेंगे ·!"

"जी ··· ?" कुछ घबराहट में उसके मुँह से केवल इतना ही निकला। उसने देखा हरिचरन के होठों पर एक चंचल मुस्कान खेल रही थी। उसने फिर अपने वही शब्द दोहराए—"भैया बस अभी आ जायेंगे !"

"जी···!" इस बार उसने सन्तोष का साँस लिया। इतने में निरजन बडल थामे, जल्दी-जल्दी डग भरता हुआ आया और कार में बैठ गया। उसने कहा—"चलो हरिचरन ज़रा जल्दी करो·····!"

कार घरघराई और सड़क पर दौड़ने लगी।

निरजन ने इन्द्रजीत से पूछा—"क्या सोचने लगे भाई ?"

वह फिर जैसे चौंक सा गया—'नहीं·· कुछ नहीं··· " और फिर मोटर से बाहर झाँकने लगा। उस दिन उसे प्रत्येक वस्तु गति मान नज़र

आती थी। सडक पर प्रत्येक वस्तु उसे दौडती दिखाई दे रही थी। क्या आदमी और क्या दूकान इत्यादि। क्या बिजली के खम्भे और क्या पेड, बल्कि सडक भी दौडती दिखाई दे रही थी। धरती घूम रही थी और कार दौडी चली जा रही थी···।

२४

हरिचरन कोर के यहाँ उस दिन इन्द्रजीत की बडी आव भगत हुई। उसने उसके सारे परिवार के साथ बैठ कर सध्या की चाय पी और फिर उनके साथ एक आई हुई नृत्य मडली का विशेष नृत्य देखने गया।

फिर जब नौ बजे के लगभग वह उनके साथ उनकी कोठी पर लौटा, सारे परिवार के साथ भोजन किया। इसके बाद निरजन और ठेकेदार साहब उसे एक अलग कमरे मे ले गये और घर-बार की बाते करने लगे। ठेकेदार साहब को इन्द्रजीत के पिता से अपनी पुरानी मैत्री का गर्व था। वे इन्द्रजीत से उसकी माता के सरल स्वभाव की प्रशसा करते रहे। फिर उन्होने कम्पनी के साथ चलने वाले केस की चर्चा छेड दी। इन्द्रजीत ने इस केस के बारे मे, दफ्तर मे सारे कागजात देखे थे। इसलिये उसने उन्हे कुछ भेद की बातें बताई। साथ यह भी कहा कि कम्पनी की पोजीशन इस मामले मे ठीक नही है और वह केस हार सकती है। ठेकेदार साहब ने उस युवक से अनुरोध किया, वह जिस प्रकार हो सके उनकी सहायता करे।

इन्द्रजीत उनके व्यवहार से अति प्रसन्न था। उसने उन्हे हर प्रकार की सहायता देने का वचन दिया। निरंजन सिह ने दफ्तर के ऊंचे ओहदे-दारो को रिश्वत देकर अपनी ओर ही कर लिया था। उनके क्या इरादे

थे, वे भी उसने कह सुनाये। इससे इन्द्रजीत को अपनी नौकरी चले जाने का भी कोई भय नही था। इसलिये वह और भी अच्छी तरह उनकी सहायता को तैयार हो गया।

ठेकेदार साहब ने निरजन के साम ने इन्द्रजीत की खूब प्रशसा की और कहा—"मै जानता था निरजन, इन्द्रजीत एक समझदार पिता का योग्य पुत्र है। यदि हम इसे अपने दफ्तर का कुछ भार सौप दे, तो हरिचरन का काम काफी हल्का हो जाए। यह भी अपना आदमी है, कोई पराया नही।हम इससे मिलकर बहुत खुश हुए हैं।" ठेकेदार साहब फूले नही समा रहे थे।

इन्द्रजीत आँखे नीची किये उनकी बाते सुन रहा था।

ठेकेदार साहब ने पूछा—"बेटा तुम्हारी शिक्षा ··?"

वह बोला— 'अंग्रेजी मे तो मै मैट्रिक तक ही पढा हूँ लेकिन पजाबी साहित्य मे मैने एम. ए कर लिया है।

"ठीक है ·· " जैसे उन्हे इतना सुनकर बहुत सतोष हुआ। और फिर बोले—"बेटा यह भी तुम्हारा अपना ही घर है। फुर्सत के समय यहाँ आ जाया करो। हम भी तुम्हारे अपने ही है। शरमाने की कोई बात नही।"

'जी···!" उसके मुँह से निकला। और उसने घर जाने की आज्ञा मागी। किन्तु कुछ देर उसे वहाँ और बैठना पडा और इधर-उधर की बाते होती रही। फिर ठेकेदार साहब ने निरंजन को उसे कार मे घर छोड आने को कहा।

जब वह उनके घर से बाहर निकल रहा था, हरिचरन उसे कोठी के बरामदे मे एक आराम कुर्सी पर बैठी एक पत्रिका पढती दिखाई दी। उसने देखा वह कनखियो से उसकी ओर देख रही थी। उसके होठो पर मुस्कान नाच रही थी। जैसे वह अति प्रसन्न हो। खुशी से उसका अग-अंग फडक रहा हो।

फिर जब वह कार में बैठा गेट पार कर रहा था, उस समय उसने हरिचरन में एक विशेष उत्सुकता देखी। वह कुर्सी से उठकर, बरामदे में सीढ़ियों के पास आ खड़ी हुई थी और उन्हें जाता देख रही थी। वहाँ से विदा होते हुये उसे ऐसा लग रहा था, जैसे वह वहाँ अपनी कोई वस्तु छोड़े जा रहा है। उसके मन पर एक अजीब सी उदासी छा गई थी। कार दौड़ रही थी और धरती डोल रही थी। नभ पर दीप्तिमान तारक और नक्षत्र भी मानो डोल रहे थे। उसने दूर पश्चिम की ओर पहाड़ों पर दावानल लहराती हुई देखी · !

× × ×

जब वह घर पहुचा, उसने देखा माता बरामदे में एक आराम कुर्सी पर बैठी-बैठी, शायद उसकी बाट जोहती, सो गई थी। उसके पाँव की आहट पा कर वे चौंकी। उनके मुँह से निकला—"बेटा इन्द्रजीत·· ·· !"

उसके मुँह से निकला—"जी····· !"

"आज इतनी देर कैसे हो गई बेटा—?" उनके मुँह से निकला—"मैं कब से बैठी तुम्हारा इन्तजार कर रही हूँ !"

वह बोला—"माता जी आज मुझे ठेकेदार सुन्दर सिंह अपने यहाँ ले गए थे। उन्हीं के यहाँ देर हो गई।"

श्रीमती अवतार कौर ने पूछा—"कौन सुन्दर सिंह बेटा ?"

तब उसने उनसे सारी बातें कह सुनाईं। ठेकेदार साहब के घर के प्रत्येक व्यक्ति के बारे उसने थोड़ा-बहुत परिचय दिया। जी खोल कर उनकी प्रशंसा की। श्रीमती अवतार कौर सब कुछ समझ गईं। वे ठेकेदार साहब और उनके परिवार को अच्छी तरह जानती थीं। सब-कुछ सुन चुकने के बाद उनके मुँह से केवल इतना ही निकला—"बेटा वह काफी अमीर आदमी है और हम गरीब—वैसे वे अच्छे आदमी हैं !"

माँ-बेटा बरामदे से अन्दर कमरे में आ गये। फिर वे कुछ देर कमरे

मे बैठे बाते करते रहे ! इन्द्रजीत ने अपनी माता को उनके बारे और भी बहुत सारी बाते बताई, जिनसे कि वह हरिचरन के यहाँ विशेष रूप से प्रभावित हुआ था। जब माता से आज्ञा ले वह अपने कमरे मे सोने के लिए गया, हरिचरन का चेहरा उसकी आँखो के सामने घूम रहा था। उसकी खामोशी, उसका मुस्कराना, उसका हंसना और फिर गंभीर हो जाना। उसकी बाते और उसकी अदा; सब कुछ उसकी आँखो के आगे घूम रहे थे। वह हरिचरन के बारे मे बहुत-कुछ सोच रहा था। सोचता ही रहा। नीद उसकी आँखो मे उड चुकी थी · !

२५

सप्ताह भर मे स्कूल की परिक्षाये समाप्त हो गईं। सुरेन्द्र के सिर से एक प्रकार का बोझ टल गया।

विगत घटनाओ के आधार पर वह एक उपन्यास लिख रहा था। वह स्कूल से घर आकर अपना अधिक समय उसी मे लगाता था। उसे उपन्यास अति शीघ्र समाप्त कर देने की धुन थी। उन दिनो जो आनन्द उसे विचारो और भावो की दुनियाँ मे खोकर मिलता था, वह शायद किसी और काम मे नही।

उसे हरिचरन से मिले लगभग दो सप्ताह बीत गए थे। इस बीच न जाने उसे उसकी याद क्यो नही आई, और यदि आई भी तो केवल कुछ क्षणो के लिए, जैसे कोई किसी दूर के परिचित व्यक्ति का नाम सुन कर क्षण भर के लिए उसे याद कर ले। उसमे यह हल्का सा परिवर्तन क्यो आ गया था, क्यो कोई नैसर्गिक शक्ति उसे कुछ और ही सोचने पर मजबूर कर रही थी ? यह सब वह समझने मे असमर्थ था।

इसी बीच शैल एक दिन उनके यहाँ आईं। बातो-बातो ही मे उन्होने हरिचरन के बारे मे पूछा। वह बोला—"भाभी क्या बताऊं कई दिनो मे उससे भेट नही हुई ..... आप ही ने तो मना किया था।"

"मैने तुम्हे उसमे मिलने से मना किया था ? ?" वे चमक कर बोली—"धत् पगले ! भला मै क्यो मना करने लगी। मै उसे उतना बुरा नही समझती, यदि हो सके तो तुम उससे ब्याह कर लो.....!"

"क्या ऐसा हो सकता है ..?" उसने प्रश्न किया और फिर अपने आप ही बोला—"मुझे स्वय विश्वास नही। मेरा मन कहता है, उस ओर देखना और हवाई किले बाँधना मूर्खता है।"

"खैर छोडो।" शैल ने इस बात मे कुछ और रुचि प्रकट नही की और फिर घर की बातो के पश्चात् वे सुपमा के बारे मे बोली—"आज-कल उसकी कोई खबर नही मिलती। सुना है नौकरी की तलाश मे है, पर कही नौकरी मिल रही।"

वह सुन कर चुप रहा। उसकी आँखो के सामने सुपमा का चेहरा घूम गया। क्षण भर के लिए उसने अपनी आँखे मूँद ली। और फिर उसने शैल से नई-नई पुस्तको की चर्चा छेड दी।

जब वे वहाँ से चली गई, सुरेन्द्र ने पारो को अपने पास बुलाया। अब वह बहुत कम उसके कमरे मे आती-जाती थी। वह बहुत कम किसी से बोलती थी। उसके चेहरे पर अक्सर एक उदासी सी छाई रहती थी।

पारो को सुरेन्द्र के बुलाने पर आश्चर्य हुआ। आज तक स्वय उसने, उसे अपने पास कभी नही बुलाया था। पहले वह यही कुछ सोच कर असमजस मे पड गई, न जाने सुरेन्द्र ने किसलिए उसे बुलाया है। जाये या न जाये, फिर अब उसे उसके सामने जाते हुए एक लज्जा सी अनुभव हो रही थी। किन्तु वह इस बुलाहट पर उसके कमरे मे जाने से इन्कार भी नही कर सकती थी। वह दो घटे बाद, उसके पास कुछ झिझकती हुई सी गई।

सुरेन्द्र ने उसे एक कुर्सी पर बैठ जाने को कहा, और फिर उस से पूछा—"कैसी हो पारो · ?"

पारो को उसका यह प्रश्न कुछ रहस्यमय प्रतीत हुआ। उसने कुछ घबराहट मे अपने आप को देखा और फिर बोली----

अच्छी हूँ·· ·· मै बिल्कुल अच्छी· · · "

वह बीच ही मे बोला—"तुम बहुत दुबला गई हो··· ·तुम्हारा चेहरा उतरा-उतरा सा दिखाई देता है···क्यो, क्या बात है···?"

"कुछ भी तो नही..."वह उन्ही स्वरो मे बोली—"आप···आपको शक हो रहा है, मै मै तो बिल्कुल अच्छी हूँ···।"

"देखो···किसी बात पर अधिक सोचना ठीक नही होता···।" वह उसके मुँह की ओर गौर से देखता हुआ बोला—"समझी · ?"

पारो की आँखे फर्श पर गड गईं। फिर सुरेन्द्र ने उससे पूछा—"सुषमा तो तुम्हारी सहेली है न पारो···?"

"जी ··!" एकाएक वह ऐसी चौंकी, जैसे कोई नगी पीठ पर शीतल जल के छीटे पडने पर चौक उठता है, एक सिहरन सी उसके शरीर मे दौड गई।

वह बोला - 'तुमने एक बार कहा था·····सुषमा तुम्हारी सहेली है·····।"

"जी हाँ कभी थी !" उसके उत्तर मे कुछ रूखापन था।

उसने पूछा—"क्या तुम एक बार उसे यहाँ बुला सकती हो···?"

"क्यो · ?" इस बार पारो की नजरें ऊपर उठी और सुरेन्द्र के चेहरे पर गड गईं ! सुरेन्द्र माथा झुकाये एक पुस्तक के पृष्ठ उलट रहा था, जैसे वह उसमे कोई रखी हुई वस्तु ढूँढ रहा हो।

वह बोला—"एक काम है···!"

"लेकिन · !" पारो ने कहा—"वह एक अरसे से मेरे यहा नही आई। दो साल बीत गये, जब वह अतिम बार मेरे यहाँ आई थी। मेरी और उसकी भेट को काफी दिन बीत गए हैं। शायद वह मुझे भूल गई हो·· !"

सुरेन्द्र ने कहा—"तुम उसे बुलाओगी, तो वह तुम्हारे पास जरूर आएगी· ··!"

पारो के मुँह से निकला—"शायद...!"

सुरेन्द्र ने कहा—"हाँ···मेरे लिए एक बार प्रयत्न करो...!"

"अच्छा···!" एक क्षीण स्वर उसके मुँह से निकला, और मौन हो गई। जैसे एक वेदना, एक पीडा और एक उच्छवास बाहर निकलने के लिए उसके मन मे करवटें ले रहा था, उसने एक निःश्वास छोडा। फिर कुर्सी पर से उठ कर बाहर जाने लगी। सुरेन्द्र बोला—"अरे सुनो····· तुम चली कहाँ ?"

वह द्वार के निकट जाकर रुक गई। और मुँह घुमा कर बोली—"मुझे काम है···!"

"बैठो। चली जाना···!"

वह फिर आकर कुर्सी पर बैठ गई।

सुरेन्द्र बोला—"अच्छा सुषमा को तुम्हे अपने यहाँ बुलाने की आवश्यकता नही।" और मुँह ही मुँह मे फुसफुसाया—"क्या जरूरत है उसे यहाँ बुलाने की···क्या सम्बन्ध है हमारा उससे·· ···?" कुछ ऊँचे स्वरो में बोला—"पारो अब मै मास्टरी का काम छोडने जा रहा हूँ ···।"

"क्यो···?" जैसे पारो को यह सुन कर आश्चर्य हुआ।

"यहाँ अब दिल नही लगता—" वह बोला—"मै यहा से कही दूसरी जगह चला जाऊँगा।"

पारो आगे कुछ नहीं बोली।

सुरेन्द्र बोला—"नगर में प्रदर्शनी लगी है।"

तुमने शायद अभी तक नही देखी·····?"

पारो ने माथा हिला कर कहा—"नही।"

वह बोला—"आज तुम्हे अपने साथ ले जाऊँगा, चलोगी···?"

वह मरे हुए स्वरो मे बोली—"मेरी तबियत खराब है।"

सुरन्द्र अनुरोध भरे स्वरो मे बोला—"नही तुम्हे मेरे साथ चलना होगा। मै माँ से कहकर तुम्हे तुम्हारे पिता जी से आज्ञा दिला दूँगा।"

वह चुप रही।

फिर सुरेन्द्र बोला—"मुझे एक गिलास पानी ला दो। प्यास लगी है·····।"

वह उटकर पानी लाने चली गई। सुरेन्द्र माथा झुकाए विचारो मे खो सा गया। वह अपने मन मे जो अशान्ति सी अनुभव कर रहा था, वह बढती ही जा रही थी। शाँति चाहता था, किसी की बातो मे खो कर, किसी के विचारो मे खोकर, किसी की स्मृति मे खोकर, लेकिन उसे शाँति कही भी नही मिल रही थी। पारो पानी का गिलास भर लाई। इसकी उसे सुध नही थी। और जब उसने उसके मुँह से 'पानी' का शब्द सुना, वह चौक सा गया। पानी का गिलास उसने पारो के हाथ से ले लिया। वह कमरे से बाहर चली गई। उसने पानी बिना पीये गिलास पास के टेबुल पर रख दिया। वह चारपाई पर लेट गया। उसकी नज़रे छत पर गड गईं। और फिर सोचता रहा —"यह जीवन, ये भावनाएँ, ये अवसाद, यह घनीभूत पीडा·····क्या सब कुछ मेरे सहचर हो गये है···? इसीलिए शायद मे किसी न किसी आशा को मन मे पालता रहता हूँ। लेकिन अब मै कुछ भी नही चाहता। मेरे लिए ससार मे कुछ भी नही है। मुझे शर्म आती है, मैं किस से क्या कहूँ, किसी से क्या माँगू!"

वह काफी देर तक इसी प्रकार कई प्रकार की बाते सोचता रहा। और इसी बीच उसे हल्की सी झपकी आई, वह सो गया।

और फिर जब उसकी आख खुली, तब दिन ढल चुका था। टेबुल पर रखी घडी पाँच बजा रही थी। उठ कर उसने स्नान किया, कपड़े बदले और जलपान की प्रतीक्षा करने लगा।

कई दिनो के बाद फिर पारो उसके लिए नाश्ता लेकर आई। वह नाश्ता रखकर जब जाने लगी, तब सुरेन्द्र ने उससे पूछा—"तैयार हो न जाने के लिए···?"

"कहा...?" पारो जैसे कुछ समय पहले की सारी बाते भूल गई थी—"कहाँ जाने के लिये कह रहे है आप···?"

वह बोला—"प्रदर्शनी देखने····?"

"मै नही जाऊंगी·····।" कहकर वह उल्टे पाँव वापस लौट चली !"

सुरेन्द्र ने कहा—"तो यह नाश्ता भी लेती जाओ ··इसकी जरूरत नही·····!"

उसके पाँव रुक से गये। वह धीरे से वापस मुडी। उसके निकट आ कर बोली—"आप मुझ पर इतना नाराज क्यो होते हैं···?" उसकी आँखो मे आसू थे—"आप मुझे अपने साथ मीना बाजार मे क्यो ले जाना चाहते है ··आप मुझ पर इतनी कृपा क्यो कर रहे है ·· ?"

वह एक साथ कई प्रश्न कर गई। फिर कहने लगी—"क्या मै आपके साथ प्रदर्शनी मे घूमती हुई अच्छी लगूँगी···? आप · आप···" और फिर उसने अपने दोनो हाथो से अपना चेहरा छिपा लिया। वह रुँधे हुए कठ से बोली—"मुझे क्षमा कर दीजिए। मेरा जी ठीक नही है। मै जाती हूँ ··मुझे क्षमा कर दीजिए !" वह तेजी से कमरे से बाहर निकल गई। उसने सुरेन्द्र को बोलने का अवसर तक नही दिया। जैस एक तूफान सा आया, और कई फूल, कई कलियाँ, कई कोपले, पौधे से विलग होकर धरती पर गिर पडी। सरेन्द्र भी निःसहाय सा, हारा सा, ग्लानि मे डबा

हुआ सा औंधे मुँह चारपाई पर गिर पड़ा। उसका चेहरा तकिये मे छिप गया था। उसे कुछ दिखाई न पड़ता था। उसके मन मे जैसे उस समय कोई कह रहा था—'काश ! तू इसी तरह पड़ा रह जाए, तू फिर कभी न उठ सके, तुम्हारी आँखे फिर कभी किसी को न देख सके। जिसे भी तुम्हारी इन आँखों ने देखा और परखा है, वे सब 'झूठ' निकले, सत्य किसी मे भी निहित नही।'

कुछ समय बाद वह घर से नाश्ता किये बिना बाहर निकल आया। वह अपनी परिचित सडके नापता हुआ, प्रदर्शनी मे पहुच गया। वहाँ उसे स्कूल के कुछ साथी मिल गये। वह उनसे अपना पिंड छुडाना चाहता था, और अकेले ही घूमना चाहता था, लेकिन उनसे उसे छुट्टी नही मिल सकी। वह बहुत देर तक प्रदर्शनी मे घूमता रहा, कभी मैसूर, बनारस और काश्मीर के कपडो की दुकानो के सामने, कभी खिलौनो और औषधियो की दुकानो के आस-पास। कुछ समय उन्होंने रेस्टूरेन्ट मे बैठकर बिताया और फिर खेल, तमाशो की दुनिया के आप-पास घूमते रहे। अचानक हरिचरन कौर उसे एक व्यक्ति के साथ घूमती हुई दिखाई दी। वह अपने साथियो से विलग हो खिचा-खिचा सा उसकी ओर बढा। निकट जाकर उसने धीरे से कहा—"हेलो···चरन !"

हरिचरन कुछ इस तरह चौकी, जैसे उसने कोई जोर का धमाका सुन लिया हो—"सुरेन्द्र ··!" धीरे से उसके मुंह से निकला। फिर कुछ सँभल कर बोली—'ओह···! तुमने तो मुझे चौंका ही दिया·· बहुत दिनो के बाद देखा। कहाँ थे तुम इतने दिन ?"

'बीमार था ! उसने बहाना तराशा ··!"

"ओह !" वह खिलखिला कर हँस पडी—'बडे दु ख की बात है···!" उसकी हंसी मे कृत्रिमता थी—"ओह !" शीघ्र ही वह स्वर बदल कर फिर बोली—'सॉरी' मै तो आप लोगो को 'इन्ट्रड्यूस' कराना भूल ही गई···" इन्द्रजीत की ओर सकेत करती हुई बोली—"आप हैं इन्द्रजीतसिह

और आप हैं···।" सुरेन्द्र की ओर देखकर मुस्कराती हुई बोली—'हमारे एक मित्र, कवि, लेखक और···"

"और एक पागल···?" शेष सुरेन्द्र ने पूरा कर दिया। इन्द्रजीत से उसने हाथ मिलाते हुए कहा—"आप से मिलकर मुझे बडी खुशी हुई। यह मुलाकात सदा याद रहेगी।" और फिर उसने हरिचरन को हाथ जोडते हुए कहा, "अब चलूँ···हम फिर मिलेंगे!" हरिचरन मुँह से कुछ नही बोली। उसके होठों पर एक व्यगपूर्ण मुस्कान खेलती रही! उसने भी अपने दोनो हाथ जोड कर उसके नमस्कार का उत्तर दे दिया। फिर वह उस युवक के साथ आगे बढ गई। सुरेन्द्र कुछ क्षणो तक वही खडा रहा, फिर प्रदर्शनी से बाहर निकल आया। उसका पैदल चलने को जी नही चाहता था, इसलिए वह एक टैक्सी मे बैठ गया। टैक्सी वाले ने पूछा—"कहाँ चलूँ साहब ··?"

उसने कहा—'आर्क रोड !"

टैक्सी वाले को कुछ आश्चर्य हुआ, क्योकि वह स्थान वहा से लगभग पाँच-छै फर्लांग पर ही था। किसी को सिर्फ इतनी दूर जाने के लिये टैक्सी पर दो-तीन रुपए खर्च करने की जरूरत नही होती। इसलिए उसने सुरेन्द्र को बडे गौर से देखा और टैक्सी स्टार्ट कर दी।

अब वह अपने घर के द्वार के सामने खडा था, उसका अन्दर जाने को जी नही चाहता था, और सोच रहा था—'कहाँ जाऊँ?" ठीक उसी समय पास की एक मिल ने नौ बजे का भोपू बजाया। वह सोचने लगा, 'घर छोड कर कहाँ जाया जा सकता है · घर मे ही शान्ति है · घर ही मे सुख और आराम भी मिल सकता है···घर जीने के लिए है ··घर मरने के लिए है · !

थका-हारा सा वह बडे द्वार को पार कर अपने कमरे मे आ गया। वहाँ वह एक खिडकी के सामने खडा हो गया। उसकी नजरें एक घने

तरह दिखाई दे रहा था। लेकिन उसकी आँखो के सामने मीना बाजार के दृश्य घूम रहे थे। हरिचरन घूम रही थी। उस युवक का मुस्कराता हुआ चेहरा घूम रहा था···यह सब क्या है ? उसकी समझ मे कुछ भी नही आ रहा था। अचानक कमरे के दरवाजे चरमराये। उसने चौकते हुए पीछे मुड कर देखा···पारो खडी थी। वह पूछ रही थी—"मै अन्दर आ जाऊँ ···?"

वह कुछ रुखाई से बोला—"पूछने की क्या जरूरत है···बिना पूछे भी आ सकती हो···।"

पारो निकट आकर बोली—"माँ जी का सिर दुख रहा था, इसलिए वे सो गई हैं। मै भोजन परोस लाऊँ···?"

वह उसी तरह रुखाई से बोला—"मेरा भी सिर दुख रहा है, मुझे भूख नही है।"

पारो मौन रह गई। कुछ क्षण चुपचाप खडी रही। फिर धीरे से बोली—"क्या आप मुझसे नाराज हैं···?"

"क्यो···?" वह कहने लगा, "मुझे क्या अधिकार है तुम पर नाराज होने का···!"

"मुझे क्षमा कर दीजिए···!" पारो के मुँह से केवल इतना ही निकला और वह दयनीय दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी।

"किस लिये···?" उसने फिर प्रश्न किया।

पारो बोली—"मै प्रदर्शनी देखने आपके साथ जाना चाहती थी··· लेकिन फिर भी नही जा सकी।"

"तो फिर क्या हुआ···?" वह कुछ निश्चिन्त भाव से बोलने का प्रयत्न करने लगा—"प्रदर्शनी तो अभी कई दिनो तक रहेगी, तुम कभी किसी के साथ देख आना।" और फिर कुछ रुक कर वह बोला—"अच्छा अब तुम जाओ···!"

"लेकिन···!' पारो अभी आगे कुछ कह भी नही पाई थी कि वह बोला—"कह दिया न कि मुझे भूख नही है ··जाओ अब। मै कल सवेरे तुम से बाते करूँगा···!"

तब वह कुछ निराशा और शोक मे डूबी हुई सी, मुँह से बिना कुछ कहे कमरे से बाहर चली गई। सुरेन्द्र उसे जाता देखता रहा। क्षण भर के लिए उसके मन मे कुछ विचार उठे उसने अपने आप से पूछा—'सुरेन्द्र तू कठोर है या यह दुनिया···? तूने तो अपने आप को मझधार मे छोड दिया था। लेकिन समय और घटनाओ की हर उठती हुई लहर अब तेरे अस्तित्व को उलट देने के लिए तत्पर दिखाई देती है·· क्यो ?'

और उसने अपने आप से कहा—"इसलिये कि तू मूर्ख है !"

वह बिना कपडे उतारे चारपाई पर धँस गया। वह और कुछ सोचने से असमर्थ था···।

२६

दूसरे दिन सवेरे जब सुरेन्द्र अपने कमरे मे बैठा चाय पी रहा था, उसकी माता ने उसे बताया कि पारो के पिता पारो के ब्याह के लिए गहने इत्यादि लाने जा रहे है, इसलिए उसे भी उनके साथ जाना होगा। वह सुन कर चुप रहा। इतवार का दिन था और स्कूल से छुट्टी। वह सोचने लगा—'शायद आज के दिन ब्याह-शादी के लिए गहने ही खरीदे जाते है···क्या यह काम मुझे ही करना था ?'

माँ ने पूछा—"क्या सोचने लगे···?"

वह फिर भी चुप ही रहा।

"जाने के लिये तैयार हो जाओ।" कहती हुई, वे उसके कमरे से चली आईं।

कुछ देर बाद पारो के पिता ने उसके कमरे मे प्रवेश किया। वे बोले—"सुरेन्द्र तुम्हे मेरे साथ जरा बाजार तक चलना होगा।"

"बैठिये ··" वह बोला—"अभी चलते है···।" कह कर वह सिर पर साफा बाँधने लगा।

"मै जरा घर से हो आऊँ" पारो के पिता बोले—"तुम भी वही आ जाना···।"

उसके मुँह से निकला—"अच्छा।"

और कुछ देर बाद जब वह तैयार होकर उनके घर की ओर गया, पारो उसे अपने घर के बरामदे मे खडी मिली। वह धीरे से उससे बोला—"मै तुम्हारे पिता के साथ बाजार जा रहा हूँ। यदि हो सके तो दोपहर को आकर जरा मेरी एक बात सुन जाना···।"

उत्तर मे पारो कुछ नही बोली। उसका चेहरा अलसाया हुआ था और आँखे लाल नजर आती थी। जैसे वह सारी रात किसी कारण जागती और रोती रही हो। सुरेन्द्र ने उससे और कुछ नही कहा।

वह उसके पिता के साथ सर्राफ की दूकान पर गया। उस बडी दुकान मे लगभग दो हजार के सुन्दर और नये 'डिजाइन' के आभूषण खरीदे गये। एक गरीब पिता इससे और अधिक अपनी बेटी को क्या दे सकता था। उन गहनो के खरीदने और पसन्द करने मे सुरेन्द्र की इच्छा काम करती रही।

माँ उन गहनो को देख कर बहुत खुश हुई। किन्तु जब उन्होने पारो को अपने पास बुला कर, उसकी पसन्द या नापसन्द की बात पूछी, तो वह ओढनी के आँचल से अपनी आँखो के आँसू पोंछने लगी। वह मा के

पास कुछ ही क्षणो तक बैठी रह सकी और फिर उनके पास से उठ कर चल दी। माँ अपनी छाती से बल खाकर निकलती हुई आह न रोक सकी। उन्होने दु ख मे डूबी हुई एक गहरी साँस ली।

दोपहर के समय पारो सुरेन्द्र के सामने खडी थी। वह प्रश्न कर रहा था—"क्या तुम्हे गहने पसन्द···आए···?"

उसने कोई उत्तर नही दिया।

सुरेन्द्र ने फिर कहा—"गहने मेरी पसन्द के खरीदे गये हैं। दूकान मे कई नये-नये डिजाईन के गहने थे। जी चाहता था सारे ही समेट लूँ। तुमने देखा न वह कंगन कितना सुन्दर है। मुझे इसका यही डिजाईन पसन्द था। क्या तुम्हे मेरी पसंद अच्छी लगी···और वह नेकलेस कैसा है···? जरा पहन कर तो दिखाओ···!"

वह इतना कुछ सुन कर भी मौन रही। उसकी आँखो मे आँसू एकत्रित होते रहे।

"तुम चुप क्यो हो···बोलती क्यो नही···? यदि पसन्द नही है तो हम लौटा आयेगे। तुम जैसे कहोगी, वैसे ही ले आएँगे। तुम्हे कैसे डिजाईन पसन्द हैं, बोलो···?"

फिर भी वह उत्तर में मौन थी, ओर उसकी आँखो के आँसू उसकी गोरी गोरी गाल पर ढुलक आये थे। उसने ओढनी के आँचल से अपने आँसू पोछ डाले।

सुरेन्द्र उसे बाँह से पकड़ कर पास एक कुर्सी पर बैठाता हुआ बोला—"यहाँ बैठो और मेरी बातो का जवाब दो···। क्या तुम्हारे मुँह मे जबान नही···तुम बोलती क्यो नही···? कुछ तो बोलो···!"

तब वह कही बोली—"आपने मुझे किस लिये बुलाया था, सो कहिये।"

"हाँ, वह भी कहूँगा" सुरेन्द्र बोला—"पहले यह तो बताओ, तुम्हे यह गहने पसन्द है न···?"

"मै नही जानती····" वह विरक्त भाव से बोली—"अच्छे ही होगे · !"

"तो तुम्हे पसन्द है····हैं न···?" सुरेन्द्र हंसता हुआ बोला—"बड़ी देर मे बोली···!"

और वह मौन रही !

तब सुरेन्द्र कुछ गभीर होकर बोला—"देखो पारो, तुम न जाने मन मे क्या-क्या सोचती रहती हो । मै जानता हूँ इस जीवन मे एक नही कई चिन्ताएं हैं और कई बाधाएँ भी जो मनुष्य को, क्या तुम्हे और क्या मुझे; बहुत-कुछ करने, सुनने, बोलने और सोचने से भी रोके रखती हैं । हम शिक्षित होकर और बहुत आगे बढ कर भी भाग्य और सस्कारो पर भरोसा करने लगते हैं । हम सोचने के लिए मजबूर हो जाते हैं, जैसे हमारे कर्म होगे, वैसा ही फल भोगने को मिलेगा । वैसा ही हमारा सयोग होगा । जब तक हम पूर्णत अपने आप को नही बदल लेते, अपने विचारो के साथ-साथ समाज को नही बदल देते, एक चिन्ता, एक निराशा, एक असन्तोष हमारे मन पर धरना मारे बैठा ही रहेगा । हम चाहते हैं सब कुछ बदल जाए । हम अपनी इच्छा से सन्तोष पूर्वक अपना जीवन बिता सके, जो अच्छा हो वही कर सके, और हमारी आँखों से आँसू न निकले, हम मन मसोस कर न रह जायँ । हमे पश्चाताप न हो ! लेकिन अभी हम ऐसा-कुछ करने से मजबूर हैं । इसमे हमारे मानसिक विकारो का भी हाथ है । हम किसी बात का अति शीघ्र निर्णय देने के लिए मजबूर हो जाते हैं । हमे अपनी दुर्बलताओ को भी दूर करना है । तुम्हारे लिए आभूषण लाये गये है, जानती होगी किसलिये···! कुछ दिनो के बाद तुम यहाँ नही रहोगी, यहाँ से दूर चले जाओगी । तब तक शायद मै भी यहाँ नही रहूँगा, इसलिए जी चाहता है तुम से दिल खोल कर दो-चार बाते कर लूँ । मै देखता हूँ, तुम अक्सर सोचती रहती हो ! बहुत सोचती हो, और क्या सोचती हो, यह मुझ से छिपा हुआ नही !

लेकिन मै सब कुछ जान कर भी खामोश रहा और खामोश हूँ, वह केवल इसलिये कि मै कई कारणो से, कई बातो मे अपने आप को मजबूर पाता हूँ ! मै आशा करता हूँ तुम जहाँ जाओगी, वहाँ खुश रहोगी और जिस घर मे जाओगी, उस घर के लोगो को भी खुश रखने का प्रयत्न करोगी। यही एक स्त्री का कर्त्तव्य हुआ करता है और यही आदर्श ! मैने तुम्हे यही-कुछ कहने के लिये बुलाया था और मुझे कुछ नही कहना। तुम चाहे इसे मेरा आदेश समझ लो, चाहे विनय और चाहे एक ऐसे आदमी की फालतू बकवास, जो अपने बारे मे कभी कुछ सजीदगी से नही सोच सका। तब मै भला तुम्हे क्या समझ सकता हूं। और शायद मै इस योग्य भी नही····· !" उसका माथा नीचे झुक गया !

कुछ समय तक कमरे मे मौन छाया रहा। सुरेन्द्र को अनुभव हो रहा था, जैसे उसने जो कुछ कहना था, कह चुका। और कोई बात शेष नही रह गई। जब रात का अँधेरा छा जाता है, तब कोई अपनी आँखो की तीव्र दृष्टि से अँधेरे की छाती चीर कर सूर्य का प्रकाश ढूँढने लगे तो यह उसकी मूर्खता है। अब शायद वह अपनी बातो से कोई भी अन्य बात, कोई परिस्थिति बदल नही सकता !

पारो माथा झुकाये सोच रही थी, 'मै क्या बोलूँ। मै आज तक अपने मुँह से कुछ बोलने मे समर्थ नही हो सकी। मेरी आँखो और आँसुओ की भाषा पर किसी ने कभी ध्यान नही दिया—परिस्थितियो और मजबूरियो ने सदैव मेरा दम घोटा। मै सिसकती रही, किसी ने मेरे रोने की आवाज नही सुनी। जो किसी ने सुनी भी, तो वह मेरे लिए कुछ भी नही कर सका। अब मै क्या बोलूँ, कुछ भी तो नही बोला जाता ···!' वह चुप रही। इस बार उसकी आँखो से आँसू नही टपके। उसकी नजरो को धुँधला करते रहे। वे बेशर्म आँखे, जो सदैव कुछ न कुछ कह दिया करती थी, तब वे भी जैसे कुछ झिझकने सी लगी थी।

फिर उस मौन को भग करते हुए सुरेन्द्र बोला—"तुम्हे काम होगा पारो ··अब तुम जा सकती हो····।"

वह फिर भी कुछ क्षण वहाँ बैठी रही। फिर उठ कर चल दी। सुरेन्द्र ने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

× × ×

सध्या के समय उसे हरिचरन के यहाँ जाने का ख्याल आया। लेकिन प्रदर्शनी का दृश्य उसकी आँखो के आगे घूम रहा था। उसके मन मे एक संघर्ष उठ रहा था, वह जाए या न जाए। कल का अपमान और तिरस्कार वह भूला नही था। उसके मे मन एक क्षोभ था और गुस्सा भी। लेकिन उसे कुछ बीती हुई बातो का ख्याल था। वह नही चाहता था कि एक लम्बी कहानी, इस जरा सी बात से बिगड जाए। वह इसकी तह तक जाना आवश्यक समझता था। वह जानना जाहता था, आखिर हरिचरन उससे बनने क्यो लगी। ऐसी बेरुखी का क्या कारण हो सकता है ·· और वह युवक · वह कोन था····? वह सब कुछ जानने का इच्छुक था ·· · ।

वहाँ जाते हुये वह अपने साथ अपना वह उपन्यास भी लेता गया, जिसे वह लिख रहा था। और जिसे एक दिन हरिचरन ने सुनने की इच्छा प्रकट की थी।

जब वह वहाँ पहुँचा, उसने देखा, हरिचरन की कोठी के सामने कुछ कारे खडी थी। कुछ लोग पैदल भी आ-जा रहे थे। कोठी की छत पर चाँदनी लगी हुई थी। वहाँ कुछ रंगीन रोशनियाँ भी जग मगा रही थी, वह समझ न सका, बात क्या है। पर इतना तो स्पष्ट था कि आज हरिचरन के यहाँ कोई उत्सव है। लेकिन कैसा उत्सव और कैसी पार्टी? उसने वहाँ ठहरना उचित नही समझा। वह किसी बिन बुलाये मेहमान की तरह उस घर मे प्रवेश करना अपना अपमान समझता था। हरिचरन

ने ऐसे अवसर पर उसे भुला दिया · यह एक दूसरा आघात था, जो उसके मन पर लगा ।

वह ज्यो ही वापस मुडने को था, एक टैक्सी ड्राईवर अपनी टैक्सी उसके निकट लाता हुआ बोला—"सरदार साहब क्या वापस लौट चले ·· क्यो···?" और फिर वह आप ही बोला—"ओ···! शायद मेरी तरह आपको भी निमत्रण नही मिला होगा ।"

वह खिलखिला कर एक व्यगात्मक हँसी हँसने लगा—"देखिये साहब ये अमीरो की लडकियाँ, क्षमा कीजिएगा सब नही, यही कुछ-एक कितनी बेहया होती हैं । ये कब किसी से आँख मिलाती हैं, और कब तोते की तरह आँखे फेर लेती हैं, कुछ पता नहीं चलता । आपकी तरह इसने मुझे भी भुला दिया है । पार्टी मे शरीक होने का निमंत्रण भी नही दिया । अरे फिर क्या हुआ यदि मै कोई पढा-लिखा और अप्टूडेट नही हू तो, आदमी तो हूँ · ! हम बडे लोगो मे न बैठते, कही और बठकर चाय पी लेते । और फिर जो भरकर आशीर्वाद देते—"हरिचरन तुम सुखी रहो । तुम्हे, तुम्हारा नया साथी मुबारक हो ! तुम्हारी मगनी की पार्टी के बाद फिर हमे तुम्हारे ब्याह की पार्टी भी शीघ्र ही मिले ।· तुम खुश रहो, सदा सुखी रहो ··।' लेकिन ये एक ऐसी बेवफा, ऐसी कठोर लडकी है, जिसने न केवल मुझे; बल्कि आप जैसे शरीफ आदमी को भुला दिया ।" वह फिर खिलखिला कर हँसा ! कुछ उसके और भी साथी, जो कुछ दूरी पर खडे थे, वे भी हँसते दिखाई दिए !

सुरेन्द्र को यह सब बहुत बुरा लगा । उसे शक हुआ, जैसे यह व्यक्ति पागल है । किन्तु दूसरे ही क्षण वह सोचने लगा, अगर यह पागल होता—तो भला कौन इसे अपनी टैक्सी चलाने को देता और ये विशेष कर मेरे ही पास आकर ऐसी बाते क्यो करता···? जरूर ही कोई बात है । और वही बात जान लेने की इच्छा से वह धीरे से उस ड्राईवर से बोला—"भले आदमी, तुम बिना कुछ सोचे समझे फालतू बाते कर रहे हो । एक अच्छे आदमी के मुँह से यह बाते अच्छी नही लगती···।"

"बेशक !" ड्राईवर बोला—"मै आपकी बात मानता हूँ। लेकिन शायद आप नही जानते कि वह छोकरी मुझ से अपना किया गया वायदा भूल गई है····!"

"कैसा वायदा ···?" सुरेन्द्र बोला—"जरा धीरे बोलो···!"

"आप नही समझेगे ··!" वह धीरे से बोला—"हरिचरन बडी बेवफा है···।"

सुरेन्द्र मौन हो उसके मुँह की तरफ देखता रहा। वह कहता गया—"जब यह छोकरी मुझे राँची बहका कर ले गई थी, तब के वायदे। और फिर वे वायदे, जो इसके बूढे बाप ठेकेदार ने मुझ से किये थे। आज मुझे पाँच सौ रुपये चाहिये। आज ही तो मौका है।" वह हँसा—"आज मेरा एक-दो सौ से मुँह बद नही होगा। मुझे पाँच सौ चाहिये पाँच सौ, वरना इन सब की सारी पोल खोल दूंगा। मैने नही, इसने मुझे बहकाया था। और हमने सात दिन " वह धीरे से बोला—"सात दिन तो हमने राँची ही मे बिता दिये थे। उसने मुझसे कैसे-कैसे वायदे किये थे, और आज···· आज इसकी मगनी हो रही है। खुशियाँ मनाई जा रही है। आज इन्होने एक लाख का केस जीता है। मै पाँच सौ रुपये लिये बिना आज यहाँ से नही जाऊँगा। आप खडे देखते रहिये, कैसा वार करता हूँ !" वह फिर खिलखिला कर हँस दिया।

सुरेन्द्र ने सब-कुछ सुना। वे बाते जो एक अरसे से उसके कानो मे अफवाहो के रूप मे गूँज रही थी। उसे ड्राइवर पर दया आई और कुछ हँसी भी। वह मुँह से बिना कुछ बोले, वहाँ से चल दिया। ड्राइवर ने उस से कहा—'जरा ठहरिये साहब ! तमाशा तो देखते जाईये···!"

लेकिन उसने उसकी बातों पर कान नही धरे ! वहाँ एक क्षण के लिये भी, उसके लिये खडा रहना दूभर था···!

*

२७

इस घटना को पन्द्रह दिन बीत गये। इन पन्द्रह दिनो मे हरिचरन के प्रति सुरेन्द्र के मन मे हजारो बाते आई, लेकिन उसने किसी से कुछ नही कहा और न वह हरिचरन के घर की ओर ही गया। उन्ही दिनो स्कूल मे लम्बी छुट्टियाँ हो गई। उन छुट्टियो मे वह नगर से बाहर चला जाना चाहता था। वहाँ उसका मन ऊब चुका था, माता-पिता के अतिरिक्त वहाँ उसे कोई अपना नजर नही आता था। हर ओर, कृत्रिमता झूठ, फरेब और धोखा। अब इन सबके आघात सहने की शक्ति उस मे नही रह गई थी।

एक दिन उसकी मुलाकात प्रेमी जी से हुई। प्रेमी जी की लेखनी उन दिनो बडी तेजी से चल रही थी। किन्तु उस मुलाकात मे वे सदैव की भाँति प्रसन्न दिखाई नही दिये, बल्कि कुछ उदास नजर आये। उन्होने स्वय ही उससे हरिचरन की चर्चा छेड दी और निराशा पूर्ण शब्दो मे बोले— 'हरिचरन बडी अजीब लडकी है मिस्टर सुरेन्द्र। मै आज तक उस लडकी को नही समझ पाया। यह कारोबारी अधिक है या कि दार्शनिक अधिक। उसकी समझ का स्टेण्डर्ड क्या है, मै तो इसका भी अन्दाज नही लगा सका। आप तो यह जानते ही होगे कि उसकी मगनी एक मामूली क्लर्क के साथ हो गई है··· ·!''

सुरेन्द्र ने निश्चेष्ट भाव से पूछा—"कौन है वह···?"

"आप नही जानते···" वे तेजी से बोले—"मिल का एक मामूली क्लर्क है···उसने हरिचरन के पिता के हक मे एक केस मे झूठी गवाही दी थी और उन्हे कुछ गुप्त बाते बताई थी। उसी के जरिये वे एक लाख का केस जीत गये है।

"हागा····!" सुरेन्द्र अधिक कुछ नही बोला। प्रेमी जी ने एक ठडी साँस ली—"कैसे-कैसे लोग हैं इस दुनिया मे, जो समझ मे नही आते।

सुरेन्द्र फीकी सी हँसी हंस दिया।

वे बोले—"सब किस्मत की बात है भाई···!"

"हाँ नसीब ही की बात है ··!" सुरेन्द्र प्रेमी जी के हल्के-हल्के व्यग को समझ रहा था। वह खुल कर उनसे कोई बात नही करना चाहता था। प्रमी जी की जबानी ही उसे उस दिन पता चला, सुषमा बडी मुश्किलो मे है और नौकरी के लिए मारी मारी फिरती है, पर उसे नौकरी कही नहीं मिल रही।

उसके घर का खर्च बढ गया था, क्योकि उसका बाप अब शराब आवश्यकता से अधिक पीने लगा था। वह घर मे हमेशा अपने बूढे बाप से झगडती थी, और भाई से भी, जो कि घर से पैसे चुरा कर नाटक और सिनेमा इत्यादि देखता था। आवारा औरतो के पीछे घूमता था। स्वय उसका मेल-जोल मुहल्ले के एक बगाली लडके से बढ चला था, जिसके कारण वह पहले से भी अधिक बदनाम हो रही थी। वह उस लड़के के साथ बडी आजादी से खुली सडको पर घूमती, और सिनेमा इत्यादि जाती। वह युवक प्राय उसके यहाँ आकर घंटो उसके कमरे मे बैठा रहता। प्रेमी जी इन सारी बातो के खिलाफ थे। उन्हे उस युवक से बहुत घृणा थी। उनकी नजरो मे वह एक लुच्चा था। सुषमा का उससे मिलना जुलना उन्हे बिल्कुल पसन्द नही था। उनके कहने के मुताबिक सुषमा उससे 'सिविल मेरिज' करने की इच्छा से, अपने बूढे बाप से झगड़ भी चुकी थी। लेकिन उसकी शादी की बात, राही जी द्वारा बम्बई के किसी बलबीर सिह नाम के युवक से चल रही थी। उनकी नजरो मे बलबीर सिह नेता अधिक था और साहित्यिक कम। पार्टी के कामो मे एक दो बार जेल की भी हवा खा चुका था।

प्रेमी जी के पास खबरो का काफी बडा भडार था। वे सारी बाते

एक हद तक थी भी सच्ची। क्योकि इस प्रकार की बाते सुरेन्द्र पहले शैल के मुंह से सुन चुका था। वह प्रेमी जी की बाते मौन रह कर सुनता रहा, और मन मे सोचता रहा—'बातो का अत कभी नही होगा। बोलने वाले चाहे थके या न थके, लेकिन सुनने वाले के कान पक जाएँगे।' वह उस दिन प्रेमी जी की इतनी सारी बातो से परेशान हो उठा था।

प्रेमी जी से इस भेट के दूसरे ही दिन, उसने अपने एक मित्र सुनील के यहाँ, जो कि आसनसोल के निकट एक गाँव मे रह रहा था, जाने का निश्चय कर लिया। सुनील एक सफल चित्रकार था। उनके मामा एक 'रिटायर्ड' जज थे। उन्होने कलकत्ते से आकर उस गाँव ही मे, जो कि उन्होने खरीदा था, एक पक्का घर बनवा लिया था। गाँव के आस-पास की काफी जमीन उन्ही की मिल्कियत थी। उनका अपना लडका कोई नही था। एक लडकी थी, जो कलकत्ते मे एक सम्पन्न घर मे ब्याही गई थी। सुनील अपने मामा ही के पास रहता था। किसी जमाने मे सुरेन्द्र और वह विश्व-विद्यालय मे सहपाठी रह चुके थे। उन्हे एक दूसरे को मिले, अब लगभग डेढ वर्ष बीत चुका था। सुनील का अनुरोध था, सुरेन्द्र एक बार उसके गाँव अवश्य आए। उसने कई वायदे किये थे, लेकिन कभी कोई वायदा पूरा नही कर सका। इस बार छुट्टियो मे उस का वही जाने का इरादा था।

मित्र के गाँव जाने से पहले वह अपनी माँ को यह वचन देता गया कि वह पारो के ब्याह के समय घर वापस लौट आयेगा। वह मित्र के यहाँ दस-पन्द्रह दिन से अधिक किसी हालत मे भी नही ठहरेगा।

जिस दिन वह वहाँ से रवाना हुआ, पारो बीमार थी। उसने सोचा, जाने से पहले वह एक बार उससे मिल ले। फिर न जाने क्या सोचकर वह उससे बिना भेट किये ही वहाँ से चल दिया। हाँ, उसके पिता से मिल कर उसने पारो के लिए कोई अच्छा डाक्टर बुला लेने को अवश्य कहा था।

यह भी एक असामयिक घटना थी कि उस दिन जब वह तीसरे दर्जे के कम्पार्टमेंट मे अपना सामान रखवा कर प्लेटफार्म पर घूम रहा था, उसकी नजर हरिचरन पर पडी, जो दूसरे दर्जे के कम्पार्टमेंट मे सवार हो रही थी। वह बिल्कुल नये और भडकीले कपडो मे सबके आकर्षण की वस्तु बनी हुई थी। वह शायद अकेली ही कही का सफर कर रही थी, क्योकि और कोई उसके साथ नजर नही आ रहा था। यहाँ तक कि कोई उसे स्टेशन तक छोडने भी शायद नही आया था। उसे देख कर सुरेन्द्र ने अपना मुँह दूसरी ओर घुमा लिया। वह प्लेटफार्म पर एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक, कुछ विचारो मे खोया सा धीरे-धीरे घूमता ही रहा। अचानक उसके मन मे एक बात आई, और वह घूमता-घूमता हरिचरन के कम्पार्टमेंट मे दाखिल हो गया।

हरिचरन उसे देख कर चौकी, और कुछ क्षणो तक उसकी ओर देखती रही। सुरेन्द्र ने देखा, उस कम्पार्टमेंट मे हरिचरन के अतिरिक्त और कोई नही था। वह उसके सामने वाली बेंच पर बैठ गया। उसने देखा वह कुछ झेप सी रही थी। वह मुस्कराता हुआ बोला—"यह एक अजीब सी बात है कि तुम भी यहाँ मौजूद हो ··कहाँ की तैयारी है ··।"

उसने धीरे से कहा—"पटना···।"

"अकेले ही···?"

"हाँ ··!" उसकी बातो से बेरुखी जाहिर हो रही थी।

"मेरी ओर से तुम्हे बधाई···!" सुरेन्द्र मुस्कराया।

"कैसी बधाई···?" उसने कुछ बनते हुए पूछा।

"मँगनी की···!"

"ओह ··!" जैसे यह बात उसे अच्छी नही लगी।

वह कुछ सँभल कर बोली—'लेकिन तुमने बधाई कुछ देर से दी है, और कुछ बासी मालूम देती है।"

"नही बासी तो नही है, ताजा ही है ··" व्यंग का उत्तर सुरेन्द्र ने व्यग ही से दिया—"तुम मुझे निमत्रित करना भूल ही गई थी। वरना मुझसे यह चूक हरगिज न होती।"

"खैर, इसके लिये आपका धन्यवाद !" वह चुप हो गई।

सुरेन्द्र सोचने लगा, अब आगे क्या बात करे। जब उसे कुछ नही सूझा तो वह पूछ बैठा—'पटना किस काम से जा रही हो ?"

"प्राइवेट काम है···" वह कुछ नीरस शब्दो मे बोली। फिर वे कुछ क्षण तक मौन रहे। इस मौन को इस बार हरिचरन ने ही भग किया। वह बोली—"मैंने आप की एक शिकायत सुनी है·· !"

"क्या ?"

'शैल आपकी भाभी लगती है न···?"

"हाँ !" उसने कहा—"यह तो तुम जानती ही हो।"

"उन्हे मेरे मामले मे बोलने का क्या अधिकार है ··?"

"क्या कहा उन्होने· ·?"

"यह बात आपसे छिपी हुई तो नही होगी···"

'मै सुनूँ तो बात क्या है··· !"

"मैंने आपसे यह कब कहा था, मै आपके जीवन मे आना चाहती हूँ ?"

"क्या तुम्हे अपने आप और अपनी बात पर शक है···?"

"क्या मुझे अपने आप और अपनी बात पर भी सदेह हो सकता है···?"

"लग तो ऐसा ही रहा है। जब मनुष्य और विशेष कर स्त्री अपनी कमजोरियो को छिपाने का प्रयत्न करे, अपनी गलतियो पर पर्दा डालने की कोशिश करे, तब आत्म प्रवचना से बढकर उसके पास और कोई उपाय नही होता !"

"तो मानो यह बात सच है, आप मेरे प्रति इस भूल का शिकार थे कि मै "

"ठहरो···यह भूल कैसी। तुम अपने मन से पूछो, क्या यह सच नही था। मुझे और किसी बात का भी दु ख नही। पर इसका अवश्य दु ख है कि तुम मुझे मूर्ख बनाने का प्रयत्न कर रही हो···।"

"मुझे भी इस बात का दु ख है कि आपने मेरे बारे मे इतना अधिक सोच लिया। जरा ख्याल किया होता, यह सब कैसे सभव हो सकता है····।"

"हरिचरन, मै सच बात कहूँ ··।" सुरेन्द्र कुछ गम्भीर होकर बोला—"मै निश्चयात्मक रूप से तुम्हारे बारे मे आज तक कभी कुछ नही सोच सका। इसलिये सभव-असभव की मेरे पास कोई बात ही नही रही। जब-तब तुमने मुझे कुरेदा, मै तुम्हारे बारे मे कुछ सोचने लगा। लेकिन सोच कर भी कभी किसी नतीजे पर नही पहुँच सका। इसलिये तुम मेरे और अपने आप के अतर को स्वय समझ सकती हो! मै तुम्हे विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि शैल भाभी से मैने केवल उतनी ही बाते की थी, जितनी कि एक व्यक्ति अपने परिवार के दूसरे व्यक्ति से कर सकता है। उन पर जो दोष तुम लगा रही हो, यह सरासर अन्याय है! उन्होने तुम्हारे बारे मे कही कुछ नही कहा होगा!"

"खैर जो भी हो यदि मै आइदा फिर फालतू सुनूँगी तो चुप नही रह सकूँगी। वह चाहे आपके मुँह से या किसी और के मुँह से। किसी को मेरे बारे मे बेकार चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नही!"

"क्या तुम अब मुझे इतना गिरा हुआ समझने लगी हो। तुम समझती होगी शायद मै तुम्हारी मँगनी का समाचार सुन कर, तुम से बहुत नाराज हो गया हूँ और अब शायद मै तुम्हारे नाम का गलत प्रचार करूँगा, जिससे तुम्हारी बदनामी होगी। लेकिन याद रखो, मुझे ऐसी बातों से तुम्हारी बदनामी की अपेक्षा अपनी बदनामी का अधिक भय है। मुझे लोग जानते है, और बहुत दूर-दूर तक जानते हैं।"

"हाँ, यह तो मै जानती हूँ, आप कवि है, कथाकार हैं और कलाकार

भी। देवता नही है, आदमी है! मै यह जानती हूँ, आप साधारण पुरुषों की अपेक्षा कही अधिक जटिल हैं। आप किसी भी लडकी को देख कर यह समझने लगते हैं कि वह लडकी आपसे प्रेम करती है। और फिर मन मे ख्याली पुलाव पकाने लगते है। लेकिन इसका नतीजा यह निकलता है कि आपको निराश होना पडता है।"

"यह तुम्हारा भ्रम है ··! वह मूर्ख होगा, जो धतूरे के फूल को फूल समझ कर सूँघता होगा' !" कहता हुआ क्रोधवश अपनी जगह से उठ खडा हुआ, और कम्पार्टमेंट से नीचे प्लेटफार्म पर उतरता हुआ बोला— "तुम अब आपने को छल सकती हो चरन, पर मुझे नही। आज मै तुम से और अधिक बाते नही करना चाहता। मुझे तुम्हारे श्वासो से दुर्गन्ध आ रही है। मै तुम से फिर कभी मिलूँगा···!" और वह नीचे प्लेटफार्म पर उतर कर अपने कम्पार्टमेंट की ओर चल दिया। उसका मन कुछ हल्का हो चुका था···!

२८

कफे···!

वह देख रहा था, वही कॉफी हाऊस है, वही हॉल है, और वही वातावरण। जिस कोने मे वह अड्डा जमाये बैठा था, उस ओर की कुर्सिया अब भी खाली पडी थी। उसके देखते-देखते एक युवक उधर आया, और एक कुर्सी पर बैठ गया। युवक ने बैरे से कोल्डकॉफी लाने को कहा और फिर वह एक साप्ताहिक पत्र के पृष्ठ उलट-उलट कर उसमे नव विवाहित जोडो के चित्र देखने लगा।

वह कुछ क्षणो तक उस युवक की उत्सुकता भाँपता रहा। फिर

होठो मे मुस्करा दिया। वह सोचने लगा, जिन्दगी मे कितने ही चेहरे मनुष्य की आँखो के सामने आते हैं। कई पहचान मे आते है और कई नही। कई याद रह जाते है और कई स्मृति पट से मिट जाते हैं। कोई भूले हुए चेहरो की याद मे नही खो जाता। और कुछ लोग ऐसे हैं, जो भूल कर भी कभी कोई चेहरा याद नही करते। शायद वही जीने का सही सलीका जानते है। फिर हरिचरन और सुरेन्द्र का सम्बन्ध ही क्या था। वे एक दूसरे से मिले, कुछ हंसे, कुछ रोये और फिर एक दूसरे से अलग हो गए···!

× × ×

सुरेन्द्र अपने मित्र के गाँव पहुंच गया। वह गाँव एक पहाड की तराई मे आबाद था। गाँव से कुछ दूर जगलो का सिलसिला शुरू हो जाता था। पहाड से उतर कर बडे-बडे नाले जगल की ओर बहते दिखाई देते थे। उनमे साल भर तक कुछ न कुछ जल अवश्य रहता था। गाँव के आस-पास फैले हुए खेतो मे प्राय: धान बोया जाता था। कही-कही सब्जी तरकारी भी लगा दी जाती थी। वैसे हर ओर हरियाली ही हरियाली दिखाई देती थी।

सुनील के मामा की बाडी, गाँव के उत्तर की ओर थी। और उसके चारो ओर लगभग एक एकड धरती, पक्की ईंटो की छ फीट ऊँची दीवार से घिरी हुई थी। उसके अन्दर एक वाटिका थी। गृह वाटिका भिन्न-भिन्न प्लाटो मे बँटी हुई थी। एक तरफ केले के पेड थे और दूसरी ओर कटहल के। एक तरफ आमो के वृक्ष, तो दूसरी ओर लीची के। कुछ क्यारियाँ फूलों की भी थी, जिनकी मधुर गध से सारा वातावरण महकता रहता था।

सुरेन्द्र को वह स्थान अत्यन्त रम्य लगा और सुनील जैसे मित्र का सग। वह वहाँ जाकर एक हद तक पीछे की बाते भूल सा गया। उसने अपनी पूरी दिलचस्पी के साथ, वहाँ उस वातावरण मे खो जाने का

प्रयत्न किया। सुनील ने उसे अपनी नयी-नयी कृतियाँ दिखाई। उसकी कला-कृतियो पर टैगोर स्कूल की छाप थी। अभी हाल ही में दिल्ली मे होने वाली एक कला प्रदर्शनी मे, उसके नये चित्रो की बडी प्रशसा हुई थी। उसने सुनील के साथ बाहर के रम्य स्थान देखे, जहाँ उसने आकाश की छाया तले बैठ कर प्रकृति के अनुपम चित्र खीचे थे। वह उसके साथ जंगलो की सैर को जाने लगा। पहाड पर चढ कर पर्वत की ऊँची हवाओ मे प्रकृति का वह सगीत सुना, जिसे मनुष्य आदि काल से सुनता आया है। जिसकी लय और ताल के माधुर्य मे, एक युग बीत जाने के बाद भी आज कोई अन्तर नही आया। वही शाँतमय मँजा हुआ राग, और वही स्वर···मनुष्य इसे सुनता ही रहता है और यह सगीत उसे पुराना नही लगता, इससे उसका मन नही भरता।

वहाँ सुरेन्द्र ने कुछ नई कविताएँ रची। उन कविताओ की गहराईयो मे डूब कर सुनील ने उसके भावो को अपनी तूलिका द्वारा चित्रो मे आँक दिया।

सुरेन्द्र को अपनी लेखनी के लिए उस गाँव मे बहुत कुछ बिखरा पडा दिखाई दिया। वह गाँव, गाँव के वासी, उनका रहन-सहन, उनकी सभ्यता, उनका आचार-व्यवहार, सब उसके लिए एक आकर्षण होकर रह गया था।

लेकिन इन बातो के बावजूद कभी वह स्थान उसे पराया-पराया सा भी लगने लगता था। उसे ऐसा अनुभव होने लगता, जैसे वहाँ उसका अपना कोई नही। वह लोगो मे अनजान सा बना फिरता है। न तो लोग उसे पहचानते हैं और न जानने की इच्छा रखते हैं। न वहाँ के नदी-नाले और जंगल उसे जानते हैं, और न ऊँचे पर्वत उसके आह्वान को सुन कर, प्रतिध्वनि के रूप मे उसका उत्तर देते हैं। उसके लिये वहाँ सब कुछ पराया था। उसकी आँखो के सामने कभी सुषमा, कभी पारो और कभी माँ का चित्र खिंच जाता, और वह कुछ उदास हो जाता।

एक दिन सुनील ने उससे पूछा—"मित्र तुम कभी बहुत उदास नजर आने लगते हो·····क्या बात है, क्या यहाँ तुम्हारा दिल नही लगता !"

उसने उत्तर मे कहा—'नही बंधु, ऐसी बात नही। कभी-कभी जब कुछ घूमते-घूमाते और लिखते-पढते थक सा जाता हूँ तो ऐसा नजर आने लगता हूँ।"

सुनील ने पूछा—"एक बार तुमने मुझे अपनी एक मित्र लडकी के बारे लिखा था। उसकी बहुत प्रशसा की थी तुमने। नाम शायद सुषमा लिखा था। वह कैसी है, क्या करती है, फिर तुमने कभी उसकी चर्चा नही की ?"

वह धीरे से बोला—"अच्छी है और मजे मे रहती है···।"

"तुम उससे ब्याह क्यो नही कर लेते ? क्या यह सम्भव नही···।"

"उसका ब्याह हो चुका है·····।"

"ओह !" सुनील अपने उक्त प्रश्न को अपनी भूल समझ कर बोला—"क्षमा करो मेरे मित्र, मेरा यह प्रश्न कुछ उचित नही था।" फिर वह कुछ क्षण मौन रह कर बोला—"हम लोगो का भी क्या जीवन है मित्र ! ठीक दूर ही चमकते हुए सुन्दर लगते हैं। किन्तु स्वयं हम अपने लिये जैसे अर्थ हीन है·····।"

सुरेन्द्र बोला—"हाँ भाई हमे इसी तरह जलते और सोचते रहने का ही वरदान मिला है। इससे बढ कर हम अपनी प्रशसा और क्या कर सकते है !"

गाँव मे दस-बारह दिन रह चुकने के बाद ही उसकी तबियत कुछ ज्यादा उकता गई। उसकी वापस घर चले जाने की इच्छा हुई। किन्तु कुछ कारणो से वह ऐसा नही कर सका। जब से वह गाँव आया था, उसने घर केवल एक ही पत्र डाला था, पर घर वालो ने उसका कोई उत्तर नही भेजा था। पूर्णिमा की पारो का ब्याह था। जिसके केवल दो दिन शेष रह गये थे। तब तक उसे अवश्य ही घर लौट जाना चाहिये

ा। वह माँ को पारो के ब्याह मे लौट आने का वचन देकर आया था। कन्तु दो ही दिन और वह उस गाँव मे ठहर जाना चाहता था। केवल ो दिन और···! वह पारो के ब्याह के समय, वहाँ उस वातावरण से दूर हना चाहता था। उसे वह ब्याह होता देखने की कोई इच्छा नही थी। ाह अपने मन मे एक बेचैनी, एक शून्यता सी अनुभव कर रहा था। ह क्या करे···इस गाँव से भी कही दूर चला जाए ·पर कहाँ···? सका मस्तिष्क काम नही कर रहा था। फिर उसने सोचा पटना जाना ाहिये। वहाँ कुछ प्रकाशको से मिलकर कुछ पुस्तको का मामला तय रना चाहिये। दूसरे दिन उसने सुनील से पटना जाने की आज्ञा माँगी। ुनील ने उसे दो ही दिन और ठहर जाने का आग्रह किया। मित्र की ात उसने रख ली। लेकिन वह गाँव अब उसके लिए एक कैद थी। यह ो दिन उसके लिए पहाड थे।

ठीक दूसरे दिन उसे डाक मे एक लिफाफा मिला। उस पर पारो के ाथ का पता लिखा दिखाई दिया। वह समझ गया, चिट्ठी माँ ने ही भेजी । कुछ उत्सुकता से उसने लिफाफा खोला। उसमे दो पत्र थे। पहला त्र माँ की ओर से था। कुशल समाचार के बाद उस शीघ्र ही घर ौट आने की ताकीद की गई थी। पत्र में घर की कुछ बाते थी और फर अत मे लिखा था 'पारो अभागिनी की मँगनी टूट गई है और ब्याह ही हो रहा···।' यह पढ कर उसके मन पर एक आघात सा पहुंचा। ह समाचार पा कर उसे कुछ आश्चर्य सा हुआ· ·उसे उन पक्तियो पर श्वास नही हुआ। उसने एक बार, दो बार, यहाँ तक कि कई बार उन क्तियो को पढा और कई प्रश्न उसके मन मे उठ खडे हुए। क्यो, क्या ात है पारो की मँगनी अचानक कैसे टूट गई···पारो का ब्याह क्यो नही ा रहा ? क्या हुआ पारो को और क्या हुआ पारो के मगेतर को···?

उसने शीघ्र ही दूसरा पत्र खोला। पत्र के नीचे पारो का नाम था। श्चय ही वह पारो का पत्र था। जो बिल्कुल सीधे-सादे तरीके से लिखा

गया था। न पत्र पर कोई तारीख थी और न उसे किसी तरह का सम्बोधन किया गया था। लिखा था—

"मै आपको यह पत्र लिख रही हूँ। मै आपको कैसे और किस प्रकार सम्बोधित करूँ, कुछ समझ मे नही आ रहा। आपके, यहाँ से चले जाने के बाद सब के लिए घर वीरान सा रहा। माँ जी अलग चिंतित हैं और पिता जी अलग। वे आपके लौट आने की प्रतीक्षा मे हैं। आप कब वापस लौटेंगे, पता दीजिये ? मेरे पिता जी भी आप को बहुत याद करते हैं। न जाने क्यो वे भी आपके शीघ्र ही लौट आने की प्रतीक्षा किया करते हैं।

"राही जी, वही सुषमा के मित्र, आज कल फिर यहाँ पधारे हुए हैं। सुषमा और राही जी के नाम की आजकल बडी अजीब सी चर्चा चल रही है। आप शायद वह चर्चा सुननी पसन्द नही करेंगे। वे बहुत ही बदनाम हो रहे हैं। कभी-कभी उनकी चर्चा मे आपका नाम भी आ जाया करता है। राही जी एक दिन आप से मिलने के लिये घर आये थे। पर आपकी अनुपस्थिति की खबर पाकर लौट गए। मै कुछ तगडी नही रहती। प्रायः बुखार हो आता है। मुझे यहाँ कुछ भी अच्छा नही लगता। पिता जी ने निश्चय किया है, वे मुझे देश, मेरी फूफी के पास छोड आएँगे। शायद मे कुछ ही दिनो मै यहाँ से चली जाऊँ। मुझे भी आपकी प्रतीक्षा है। जाने से पहले मै आप स एक बार मिल लेना चाहती हूँ। 'क्यो ··?' यह भी मेरी समझ मे नही आ रहा। जैसा आपने माँ जी की चिट्ठी से जान लिया होगा, आप का वह आशीर्वाद, आपके वे स्नेह भरे मगल कामना सूचक वाक्य, जो उस पन्द्रह-बीस दिन पहले की एक दोपहर से निरतर मेरे कानो मे गूँजते रहे थे, अचानक मेरे मन मे पैठ कर गुम से हो गए है। और बस केवल यहां तक ही आप मुझे याद आ रहे हैं। यह एक आश्चर्य की बात है कि आप द्वारा लाए गए आभूषण उसी तरह पडे ही रह गये। न यहाँ ढोल बजे और न शहनाई। न ब्याह के गीत गाये गए और न

बारात आई ! पारो कँवारी की कँवारी रह गई । और पारो, याने मै बहुत खुश हूँ । इन सारी बातो का जो कारण मैं समझ पाई हूँ, वह यह कि कलकत्ते वालो के मन मे मेरे प्रति कुछ असन्तोषजनक बाते पैदा हो गई थी । उन्होने जाने कैसे मेरे और आपके प्रति कुछ सदेह प्रकट किया था । जिसे सुन कर पिता जी गुस्से को सँभाल न सके और उन्होने उन्हे मेरा रिश्ता देने से इ कार कर दिया । वे अब मेरे बारे में बहुत चिन्तित हैं । कई दिनो से वे अच्छी तरह भोजन भी नही कर रहे । वे बहुत दुखी हैं । मै उनसे कुछ कहूँ भी तो क्या कहूँ । मुँह मे जबान रखकर भी कुछ बोलने से मजबूर हूँ । यद्यपि उनका दु:ख देख कर मुझे भी दु:ख होता है, पर जो कुछ हुआ है, उसकी मुझे लेश मात्र भी चिन्ता नही । इस घटना से तो मुझे एक प्रकार की प्रसन्नता ही हुई । न जाने क्यो मुझे ऐसा लग रहा है, जैसे मै एक बधन से मुक्त हो गई हूँ । 'जैसे जिसके सस्कार हो, उसे वैसा ही कुछ नसीब होता है···!' एक दिन आप ही ने मुझे इन शब्दो पर विश्वास दिलाया था । इसलिये मै अपनी आज की परिस्थिति मे सतुष्ट हूं । आप कब आ रहे हैं ? मै यहाँ से जाने से पहले आपके एक बार दर्शन कर लेना चाहती हूँ । केवल एक बार । फिर न जाने आप से कब मिल सकूँ··· ।

उत्तर की प्रतीक्षा मे ·····

पारो"

पत्र बहुत अधिक लम्बा नही था । पर उसमें अनेको बाते थी । नई और पुरानी, भविष्य और वर्तमान की बाते···! पत्र समाप्त करने के बाद भी उसकी दृष्टि कागज के उस टुकडे पर गड़ी रही, और एक-एक करके पिछली सारी घटनाएँ उसकी आँखो के सामने आने लगी । उसकी आँखो के सामने हरिचरन थी, पारो थी और फिर राही जी और सुषमा भी । उन सबका जीवन और उनके जीवन का उतार-चढाव···।

वह सोचने लगा, किसी राही जी के आने से, उसे क्या और कोई सुषमा, किसी गलाजत के ढेर मे पडी गलती रहे, उससे उसका क्या

सरोकार ? किन्तु पारो···? पारो के साथ कैसा अन्याय हुआ·· पारो के लोगो ने क्या कह दिया···? उनकी बातो का इतना अधिक दूषित प्रभाव उस पर पडा कि वह उस स्थान को त्यागने को तैयार हो गई। ऐसे अन्याय क्यो···?उसकी पुकार थी, वह एक बार उससे मिलना चाहती है, केवल एक बार और अतिम बार···। उसे ऐसा लग रहा था जैसे पारो, उससे दूर खडी ऊँचे स्वरो मे उसे पुकार रही है। यह उसक अनुरोध है, उसकी पुकार है···। वह सोचने लगा अब मै क्या करूँ उसने फिर एक बार वह पत्र बडे गौर से पढा। उस पर विचार किया और फिर सुनील से बोला—"सुनील, मेरे बन्धु ! मुझे एक जरूरी काम आ पडा है। मैं कल अवश्य ही यहाँ से घर वापस लौट जाऊँगा !"

सुनील उत्तर मे बोला—"जैसी तुम्हारी इच्छा · !"

वह दिन उसने बडी बेचैनी से काटा। सध्या के समय अकेला ह पहाड़ की ओर निकल गया। वहाँ वह एक ऊँचे से टीले पर बैठ गया पेड-पौधे और टीले, यहाँ तक कि वहाँ की प्रत्येक वस्तु पर कुहासे क चादर सी तन रही थी। सारे वातावरण पर एक रहस्यमय चुप्पी छ रही थी। सारे खेत, जैसे दिन ढलते ही सो गये थे। वह पहाड की ओ आँखे गाडे बैठा था। उसके मन मे कई प्रकार के भाव उठ रहे थे। काश वह भी एक पत्थर होता, इसी अटल-अचल की तरह, और कोई स्व उसे चौका न पाता। अनेको भाव उसकी छाती न कुरेदते, अनेको भाव उ सघर्ष मे न डाल देते। इस पहाड से टकराने के लिए कितने तूफान उठ हैं। कितने बादल इस पर गरजते है, कितनी बार इसकी छाती पर बिजल गिरती है। किन्तु इस पर लेश मात्र भी इनका प्रभाव नही पडता। पहा तुम युग-युग से अटल हो ·· तुम महान हो···तुम विशाल हो···इसीलि तुम्हारे सामने सबका मस्तक नत हो जाता है। तुम मुझे भी अपने जैस बना दो। मुझे यही जड कर दो·· मै भावुक हूँ। भावुकता का यह घु मुझे अन्दर ही अन्दर चाट रहा है। मेरा खून पी रहा है। मुझे जर

कर दो, पत्थर बना दो···!' और उसकी आँखो के सामने धीरे-धीरे दावानल की प्रज्वलित रेखाएँ उभरने लगी। मानो कही छिपी ज्वाला-मुखी के मुँह से लावा फूट निकला हो और छोटी-छोटी नालियो मे बहने लगा हो···।

वह देर तक वहाँ बैठा यह सब कुछ देखता रहा। आस-पास के गड्ढो और नालो मे धीरे-धीरे मेढको के टर्राने और गीदडो के 'हुआ हू' की आवाजे आने लगी थी। उसे कई दिनो, कई महीनो और वर्षो के बाद यह अनुभव हुआ, जैसे वह फिर मुर्दो की बस्ती मे आ गया है। वातावरण मे खामोशी थी, लेकिन मुर्दे बोल रहे थे। दूर से उसे सुनील की आवाज आती सुनाई दी, जो उसे पुकार रहा था, जो शायद उसे ढूँढने निकला था। चूँकि अँधेरा घना होता जा रहा था, उसे घर लौट जाना चाहिये था। आवाज आ रही थी—"भाई सुरेन्द्र तुम कहाँ हो···?" किन्तु उत्तर मे वह मौन था।

× × ×

२९

यह सच है, राही जी अब फिर उसी नगर मे घूमते-फिरते दिखाई दे रहे थे। इस बार लोगो ने फिर उनका पहले जैसा ही स्वागत किया था। उनमे वही उत्साह था और वही पहले जैसी श्रद्धा। वैसी ही साहित्य गोष्ठियाँ बैठ रही थी और उसी प्रकार छोटे-मोटे कवि सम्मेलनो का आयोजन हो रहा था। साथ-साथ साहित्यिको के एक वर्ग मे, सुषमा और राही जी के बारे मे विचित्र प्रकार की चर्चा चल रही थी। कुछ लोगों के विचार मे, राही जी अब अपने गुप्त प्रेम को अन्तिम शिखर तक

पहुँचाने के लिये ही इस बार वहाँ पधारे थे। उनके विचारो मे राही जी अब शायद सुषमा को अपने साथ दिल्ली ही ले जाना चाहते थे। उनके कुछ निकटवर्ती लोग भी इसी प्रकार की बाते करते थे।

राही जी एक होटल मे ठहरे हुए थे। पर एक प्रकार से वे सुषमा के यहाँ ही रहते थे, क्योकि उनका अधिक समय उसके यहाँ ही बीतता था। वे प्राय. सवेरे के गए संध्या तक, और कभी-कभी बहुत रात तक उसके पास बैठे बातो मे खोये रहते।

जिस बलवीरसिह नाम के युवक से सुषमा के ब्याह की बात चल रही थी, वह समाप्त हो चुकी थी। बलवीर सिह ने उससे ब्याह करने से इन्कार कर दिया था, और वे पत्र जो सुषमा ने उसे बीच-बीच मे लिखे थे; उसने लौटा दिये थे।

एक दिन जब बलबीर सिह की चर्चा चल रही थी, राही जी ने सुषमा से कहा—"सुषमा तुम नालायक आदमी को भूल जाओ। मुझे तुम्हारी असमर्थताओ का ज्ञान है। मै तुम्हे अपनो से अधिक प्यार करता हूँ और यह प्यार मत्रो की नाई पवित्र है। उतना ही पवित्र, जितना कि एक भाई और बहन के बीच हो सकता है। तुमने मुझे भाई कहा और मेरा यह कर्तव्य हो गया कि मै तुम्हे बहन समझूँ। तुम्हे सुखी देखूँ। जो तुम्हारे भलाई के लिए हो, वही कर सकूँ। और मैंने तुम्हारी बेहतरी के लिए, मुझसे जो कुछ हो सका मैंने किया। लेकिन मै वह कुछ भी न कर सका, जो कुछ कि मै चाहता था। बलवीर को मे एक योग्य पुरुष समझता था। एक साहित्यिक और सब से बढकर एक इसान! लेकिन वह भी कुछ ऐसी ही कमजोरियो का शिकार है, जैसे कि आजकल के युवक प्राय: देखे जाते हैं। उसने तुम्हारे अन्दर कई त्रुटियाँ निकाल कर, तुम से शादी करने से इन्कार कर दिया है। तुम उसे पसद नही। अच्छा है कि तुम भी उसका ख्याल भूल जाओ।"

सुषमा बोली—"उन्होने ऐसी सजा मुझे क्यो दी···?"

'तुम इसे सजा क्यो समझती हो और इतनी निराश क्यो हो ··? ऐसे कामो के लिए कोई किसी को मजबूर नही कर सकता, यह उसकी मर्जी का सवाल है।"

"लेकिन आपने तो ···"

"हाँ···!" राही जी बीच ही मे बोल उठे—"मैने ही तुम दोनो का परिचय कराया था। मैने ही तुम्हे एक पत्र मे लिखा था वह एक सफल कवि और कथाकार है। सुलझे हुए विचारो का एक होनहार युबक है। तुम उसके घर जा कर सुखी रह सकोगी। लेकिन मैने स्वय उसे समझने मे एक बडी भूल की थी सुषमा। इसका मुझे बहुत दुःख है।"

"खैर·· !" सुषमा ठडी साँस लेकर बोली—"यह भी अच्छा ही हुआ। डूबने से पहले मुझे यह तो पता चल गया कि पानी कितना गहरा है। भैया, मेरा पुरुष जाति पर से विश्वास उठ गया है। मुझे सब से और अपने आप से भी घृणा होने लगी है। मुझे लगता है, जैसे यह दुनिया, इस दुनिया के लोग, यह सारा समाज एक प्रपच है, एक धोखा है, फरेब है। यहाँ इसमे मेरी गुजर नही हो सकती। मै इस खेल से ऊब गई हूँ!"

"बहन मैं जानता हूँ···!" राही जी बोले—"मै तुम्हारी मजबूरियो को समझता हूँ। किन्तु इतना निराशावादी बनना ठीक नही। समाज और जीवन से भाग कर कोई कहाँ जा सकता है। समाज से बाहर रह कर किसी मनुष्य का क्या अस्तित्व रह जाता है। और उसूल के बिना जीवन क्या है ··? यह तो एक मामूली सी बात थी। तुम्हे इसका अधिक प्रभाव नही लेना चाहिये!"

"दुनिया मुझसे मजाक करती है।" वह रूँधे हुये स्वरो मे बोली—"मुझे लोगो ने तमाशा बना दिया है।"

"मैं तुम्हारे मन को अच्छी तरह जानता हूँ पगली, लेकिन मै तुम्हे धोखे मे नही रखना चाहता था। इसलिये बात मैने तुम्हारे सामने स्पष्ट

कर दी।" फिर राही जी कुछ रुककर बोले—"सुरेन्द्र के बारे में तुम्हारे क्या बिचार है। वह एक अच्छा आदमी है। मैंने उसके नाम की बडी प्रशसा सुनी है। पिछली बार मैं स्वय उससे मिला था। और उससे प्रभावित हुए बिना नही रह सका था।"

"वे एक अच्छे आदमी है···!"

"यदि तुम्हे मजूर हो, तो मैं उससे तुम्हारी बात करूँ···?"

सुषमा के मुँह पर जैसे किसी ने जोर से तमाचा मार दिया हो··· उसने अपने दोनो हाथो से अपना चेहरा छिपा लिया। रुँधे हुए कठ से बोली—"बस, चुप रहिये ··!"

"तुम इसके लिये भी मुझे ही दोष दे सकती हो। लेकिन तुम सच जानो, मैं इसी काम के लिये दोबारा इस नगर मे आया हूँ। वरना मेरा यहाँ क्या काम था। मैं इस सम्बन्ध मे तुम से कुछ स्पष्ट सुनना चाहता हूँ ··क्या तुम ने कभी सुरेन्द्र को प्यार किया था ···?"

सुषमा का सिर नीचे झुक गया। उस चोर की तरह जिसकी चोरी पकडी जाए और वह अपनी करतूत पर शर्मिन्दा हो।

"बोलो···?" राही जी ने फिर पूछा—"यदि यह सच है तो पिछले वर्ष तुमने यह बात मुझसे क्यो नही कही थी·· क्यो मुझे धोखे मे रखा। यदि मैं तुम्हारे मुँह से इस विषय मे कुछ भी सुन लेता, तो कभी तुम्हारे शादी-ब्याह की चर्चा बलबीर से न करता।"

सुषमा की आँखो से आँसुओ की बूँदे, उसके गालो पर से ढुलकती हुई फर्श पर गिर पडी।

राही जी कहते गये—'तुमने अपने आप को छलने की कोशिश की···क्यो···?" और वे चुप हो गये। कुछ क्षणो तक दोनो ही मौन बैठ कुछ सोचते रहे। फिर कही सुषमा बोली—

"क्या आप यह चाहते हैं कि फिर एक नया नाटक आरम्भ किया

जाये। बम्बई का नाटक समाप्त हो गया और अब यहाँ का नाटक आरम्भ किया जाय···? और आप जो कहे, वही हो·· लेकिन एक बात सोच लीजिये, अब मेरा मुझ पर कोई अधिकार नही। मै शायद आपके कहने पर न चल सकूँ·!"

"सच है मेरा भी तुम पर कोई अधिकार नही।" राही जी निराशा-पूर्ण शब्दो मे बोले—"मै न जाने किस हौसले से इतनी बात कह गया। मै क्षमा चाहता हूँ। अपनी इस बात की और पिछली भूलो की भी। मेरे कहने पर ही तुमने अपना पहला रास्ता बदला था, और यदि मै फिर तुम्हे उसी रास्ते पर लौट आने को कहूँ, तो यह मेरी मूर्खता है!"

"अब अपने आपको ऐसा न कहे" सुषमा करुण स्वर मे बोली—"आप केवल इतना समझने का कष्ट करे कि मै नारी हूँ। पुरुष जाति से नही, स्त्री जाति से मेरा सम्बन्ध है। मै उतनी शीघ्रता से कोई बात सोच कर फिर जल्दी ही कोई फैसला नही दे सकती, जितनी जल्दी कि कोई बात सोच कर आप उसका फैसला दे रहे हैं। मुझे कुछ सोचने दीजिये। वरना मै पागल हो जाऊँगी पागल··!" वह फूट-फूट कर रोने लगी।

राही जी बोले—"मैने एक बहुत बडी भूल की थी। यह मै आज समझ रहा हूँ। और यदि मुझे अपनी भूल का पश्चाताप न होता, तो फिर शायद यहाँ कभी न आता। मै तुम्हे और सुरेन्द्र को एक देखने के लिये ही यहाँ आया हूँ। तुम दोनो एक हो जाओ, इसी मे मेरे मन को सन्तोष मिलेगा। यही मेरा पश्चाताप पूर्ण होगा। मुझे तुम्हारे उत्तर की प्रतीक्षा रहेगी···!"

यह कह कर राही जी उस दिन सुषमा से बिदा हुए। उनके मन मे अवश्य ही एक पश्चाताप की भावना थी, वेदना थी, और उनमे कई विचार, कई भाव अपना प्रभाव डाले जा रहे थे। उनका मन अशान्त था। इन बातो के अतिरिक्त वे और कुछ कह सुन कर भी अपने मन को शाँति प्रदान नही कर सकते थे। उस रात उन्होंने खूब डट कर शराब पी।

उनके मित्रो ने उन्हे अपने कमरे मे नशे की हालत मे औधे मुँह बेहोश फर्श पर लेटे हुए पाया। कोई भी उनके मन की वास्तविक दशा को समझने से असमर्थ था। कुछ शायद उनमे से यह भी सोचने के लिए मजबूर थे—'आखिर राही जी इतनी शराब क्यो पीते है कि जिससे बेहोश हो जाएँ। अपने आप की सुध न रहे। क्या इन्हे अपने आप पर भी दया नही आती... ..!'

३०

सुरेन्द्र वापस घर लौट आया। जिस दिन वह वहाँ पहुँचा, उसी दिन उसने माता से पूछा—"माँ-पारो के ब्याह के रुक जाने का विशेष कारण क्या था···!"

माता ने कहा—"कलकत्ते वालो के विचार कुछ अच्छे नही थे। और पारो भी मन से यह नही चाहती थी कि उसका ब्याह वहाँ हो ··! वह असन्तुष्ट थी और उसने खाना-पीना छोड दिया था !"

"तब पारो क्या चाहती है ···?"

"तुम खुद सोच सकते हो···बच्चे नही हो ··!"

"वे देश कब जा रहे है ···?"

"शायद पाँच-दस दिनो मे···।"

"पारो वहाँ जाकर क्या करेगी···?"

"आखिर तुम कहना क्या चाहते हो···?" माता उसके प्रश्नो से तंग आकर बोली—"देश मे उसके ब्याह की बातचीत चलेगी। जवान लड़की है। कोई कब तक घर मे बैठा कर रखेगा····!"

"उसके ब्याह की बात तो यहाँ इस नगर मे भी हो सकती है···।"

"तुम्हे बहुत फिक्र पड गई उसकी । जो कुछ कहना चाहते हो साफ साफ कहो···!"

और सुरेन्द्र धीरे से बोला—"माँ ! एक बार तुमने कहा था न कि वह लक्ष्मी है और इस घर की शोभा बन सकती है। मैने भी इस पर बहुत सोचा है और सोच कर इस निर्णय पर पहुचा हूं कि सचमुच वह देवी है। माँ ! अब वह हमेशा तुम्हारे पास रहेगी।"

माता ने जब सुरेन्द्र के मुँह से इतनी बात सुनी तो उनकी खुशी का कोई ठिकाना न रहा। वह बोली—"अरे नादान तुझे इतनी देर मे होश आई। मै अक्सर मन मे सोचती थी, एक दिन तू अवश्य ही 'हां' कहेगा। पारो मेरी बहू बनेगी। वह लक्ष्मी है लक्ष्मी। और देख, अब तू जरा सँभल कर रह। लोग कैसी फालतू बाते करते हैं। पारो को मै कुछ दिनो के लिये यहाँ आने से मना कर दूँगी। तूने कितना सताया है मुझे। मुझे ही नही, तूने सबको सताया है। अब तेरी जबान खुली है। अब जब कि किसी को कुछ भी नही सूझ रहा था, जब सब की आँखो के सामने अंधेरा छाया हुआ था, तब तूने रोशनी दिखाई है। मै तुझे क्या कहूँ · " और माता गद-गद हो उठी। उनकी आँखो मे आँसू डबडबा आए। वह दूसरे कमरे मे सुरेन्द्र के पिता को यह शुभ समाचार देने चली गई, और उसी समय पडोस की एक बच्ची को कह कर उसने पारो के पिता को भी बुलवा भेजा। हर ओर खुशी की एक लहर सी दौड गई।

× × ×

और उसी दिन रात के समय सुरेन्द्र ने एक आवश्यक काम का बहाना कर के पारो को घर के पिछवाडे बुलवाया। वह उसके सामने आने से हिचकिचा रही थी। उसने ओढनी से एक प्रकार अपने आपको अच्छी तरह छिपा रखा था। वह कुछ शरमा भी रही थी और उसका माथा नीचे झुका हुआ था। वह दबे स्वरो मे बोली—'बोलिये, किसलिये

बुलाया है आपने, क्या काम है····कोई हमे इस प्रकार चोरो की तरह मिलते देख लेगा तो क्या कहेगा···।"

"कहेगा तेरा सिर···।" सुरेन्द्र ने कहा—और उसने उसके माथे से ओढनी का पल्लू नीचे गिरा दिया। उस अँधेरे मे भी पारो का चेहरा प्रकाश की तरह चमक उठा। वह फिर बोला ..."इस अँधेरी रात मे यदि कोई हमे देख भी लेगा तो क्या पहचान पायेगा ? और यदि पहचान भी लिया तो उसकी मरजी, चाहे वह जो सोचे और जो कहे, हमारा इसमे क्या बिगडेगा। हाँ···! मै तो तुम्हे यह कहने आया था। तुम्हारी चिट्ठी मुझे मिल गई थी, और मै यहाँ आने के लिए बेचैन हो उठा था। तुमने वह चिट्ठी रो-रोकर लिखी होगी।"

"आप ने कुछ तो मेरे ऊपर विश्वास किया।" पारो उसी प्रकार बोली—"आप मेरा पत्र पाकर अवश्य आएँगे, इसका मुझे विश्वास था। आप आ गये, मेरे लिये सारे बीते हुए दिन और सारी राते लौट आईं। मै बहुत खुश हूँ···इसकी कितनी खुशी है मुझे कि मै क्या बोलूँ ···।"

"अब तो तुम अपने गाँव नही जाओगी न···?"

सुरेन्द्र यह प्रश्न कर हँसने लगा।

"हूँ · !" उसके मुँह से निकला—"तो आप ने चिढ़ाने के लिये मुझे यहाँ बुलाया है····? मै भला देश कब जा रही थी। मैने तो एक बहाना किया था·· झूठ कहा था।"

सुरेन्द्र बोला—"लेकिन तुम रोया क्यो करती थी, और तुमने खाना पीना क्यो छोड दिया था ? मुझे तो सब कुछ मालूम है···?"

वह धीरे से बोली—"यदि मेरी आँखो के आँसू फ़रियाद न करते तो आपका कठोर दिल कैसे पसीजता····?"

सुरेन्द्र बोला—"अब तो तुम्हे विश्वास हो गया कि मै कठोर नही। मेरा हृदय मोम का हो गया है। अब तो तुम मुझे बुरा नही कहोगी···?"

"मेरी जबान जल जाये ··मैने पहले कब आपको बुरा कहा ···?" वह कुछ दुखी स्वरो मे बोली—'ऐसा न कहिये···।"

"अच्छा·· ।" वह धीरे से उसके कधे हिलाते हुआ बोला—"अब मै जाता हूं । मै तुम्हे यही बाते बताने आया था...।" इतना कह कर वह अँधेरी गली मे आगे की ओर निकल गया । पारो के लिये जैसे एक बिजली चमकी और उसकी आँखो को चौधियाती हुई सामने से लोप हो गई । यह क्या कौतुक है—वह आँखे फाडे, उसे जाता देखती रही । उसका दिल बल्लियो उछल रहा था ।

३१

राही जी को जब सुरेन्द्र के आने का समाचार मिला, एक दिन सध्या के समय वे स्वय उस से मिलने के लिए उसके घर चले आये । सुरेन्द्र ने अपनी ओर से घर आये हुए अतिथि का बडी श्रद्धा पूर्वक स्वागत किया और प्रेम से उन्हे अपने कमरे मे ले जाकर बैठाया । फिर उनसे पूछा—"राही जी ! आज आपने इस गरीबखाने मे अपने चरण रखे, कहिये कैसे आना हुआ···?"

"राही जी बोले—"बस ऐसे ही आ गया मेरे मित्र । मिलने को जी चाहता था, इसलिये आ गया ।"

"हमारा सौभाग्य है···।" सुरेन्द्र बोला ।

राही जी ने अपने छपे नये काव्य सग्रह की प्रति उसे भेट करते हुए कहा—"सुरेन्द्र जी इसे जब पढ लीजिएगा; मुझे अपनी राय दीजियेगा ।"

"बहुत अच्छा···।" सुरेन्द्र ने पुस्तक को उलट-पलट कर देखते हुए कहा—'पुस्तक का गेट अप तो बहुत सुन्दर है !"

राही जी ने कहा—"इसे छपवाने मे काफी खर्च बैठा है। एक काव्य-प्रेमी सज्जन ने अपने पैसो से इसे छपवा दिया।"

"पुस्तक सुन्दर छपी है····।" सुरेन्द्र ने फिर अपने शब्द दोहराये।

राही जी ने प्रश्न किया—"क्या आप कही बाहर गये हुए थे···।"

"जी हाँ···।" उसने कहा—"मै यहाँ से दूर अपने एक मित्र से भेट करने चला गया था।"

"तभी तो···।" राही जी बोले—"मै एक-दो बार पहले भी आप से मिलने आया था, पर भेंट नही हुई।"

"मै यहाँ था ही नही।"

"खैर, अब तो आप आ गये।" राही जी बोले—"मुझे आप से कुछ जरूरी बाते करनी हैं ··!"

"कैसी बाते · ?" सुरेन्द्र ने प्रश्न किया।

"वे बाते आज नही कल करूँगा।" राही जी ने कहा—"कल आप कृपया सवेरे मेरा यहाँ आने का निमत्रण स्वीकार करे। मै निशात होटल मे ठहरा हुआ हूँ ! मै कल सवेरे सात बजे से लेकर दस बजे तक आपका इन्तजार करूँगा। हम वही बैठ कर शान्तिपूर्वक बाते करेंगे ··।"

"क्या कोई जरूरी बात है ?"

"जी हाँ ! जब आयेगे, तभी बताऊँगा।"

"अच्छा मै आऊँगा।" कह कर सुरेन्द्र ने साहित्य चर्चा छेड दी। कुछ जलपान भी आ गया और वे जलपान करते हुए बडी रोचक बातों मे खो गए।

राही जी ने सुरेन्द्र की प्रशसा के पुल बाँधते हुए कहा—"आप जैसे प्रथम कोटि के कलाकार से मिल कर और विचारो के आदान-प्रदान से जो आनन्द मुझे यहाँ मिल सकता है, शायद कही और न मिल सके।

हम साहित्यिक बिरादरी के लोगो की अवस्था बडी विचित्र होती है। जब हम मिल बैठे हमारी, एक सस्था बन जाती है।"

"आप सच कहते हैं···।" सुरेन्द्र बोला—"इसका एक विशेष कारण यह भी है कि हम एक दूसरे की बात और मन को अच्छी तरह समझ सकते हैं। लेखक और कवि एक हद तक प्रशंसा और वाह-वाह का भूखा होता है। और वह चाहता है कि सुनने और पढने वाले उसकी रचना की मुनासिब दाद दे। किसी साहित्यकार से यह आशा कही अधिक रखी जा सकती है कि वह किसी रचना के गुण-दोष आम लोगो की अपेक्षा कही अच्छी तरह समझता होगा।"

राहीजी ने कहा—"आप सच कहते हैं। हम एक ही पथ के पथिक है।"

सुरेन्द्र मुस्करा दिया।

राही जी कुछ देर तक और बैठे रहे। फिर उन्होने जाने की आज्ञा माँगी। सुरेन्द्र ने कोई आग्रह नही किया। राही जी जाते हुए, फिर उसे कल निशात होटल मे मिलने की बात याद दिलाते गए।

उनके चले जाने के बाद वह सोचता रहा, यह राही जी भी विचित्र आदमी है। अब अचानक मेरे निकट आने का प्रयत्न कर रहे है। न जाने बात क्या है! उसे सुषमा और राही जी की पिछले दिनो की बाते याद आईं, जिनके कारण उसे मानसिक दु ख उठाना पडा था, और कैसे वह निराशा की आँधियो मे अंधा बना फिरता था। उसका मन ग्लानि से भर आया। उसने सोचा राही जी ने एक समय अपनी मीठी-मीठी बातो से सुषमा को मूर्ख बनाया था और अब शायद वे मुझे भी उसी रग मे रगना चाहते है। मेरे लिए इनसे दूर ही रहना उचित है। एक प्रकार का संघर्ष उसके मन मे जड़ पकड़ रहा था।

× × ×

राही जी सुरेन्द्र से विदा हो, सीधे सुषमा के यहाँ पहुंचे। सुषमा कुछ चिंतित और उद स अपने पढ़ने-लिखने के कमरे मे बैठी हुई थी। वे कुछ

देर तक उसके पास मौन बैठे रहे। फिर घर की और इधर-उधर की बातो के बाद वे बोले—"सुषमा, शायद मेरी कल की बात पर तुमने विचार किया होगा, मै तुम्हारे मुँह से कुछ सुनना चाहता हूँ ···!"

वह निराशा पूर्ण स्वरो मे बोली—"मै क्या कहूँ। मै कुछ भी नही सोच सकती। मेरा मस्तिष्क शिथिल पड चुका है। मै अपनी सारी चेतना लुप्त कर चुकी हूँ।"

"तुम निराशावादी हो।" राही जी मुँह बनाकर बोले—"यही निराशा वाद तुम्हे जीवन के किसी क्षेत्र मे सफल नही होने देता। तुम मन ही मन मे अनेको बाते सोच कर फिर अन्दर ही अन्दर कुढती रहती हो। तुम्हारी यह आदत अच्छी नही।"

वह उसी तरह बोली—"शायद आपको विश्वास न हो, मैने आज तक अपने जीवन मे निराशा ही देखी है। और निराशा ही मैने प्राप्त की है। चाहे अपनी मूर्खता के कारण और चाहे दुनिया वालो की मेरे प्रति विमुखता के नाते। मै इससे अधिक और क्या सोच सकती हूँ कि मै एक मूर्ख लड़की हूँ। न मुझमे कोई गुण है न खूबी। न मै तीव्र बुद्धि रखती हूँ, और न ठिकाने से कोई बात सोच सकती हूँ। न मै देखने मे सुन्दर हूँ और न मुझे सलीके से कपड़ा पहनना आता है। मुझे तो अपने प्रति भ्रम होने लगता है कि मै क्या हूँ। यदि जीवन की घड़ियाँ एक स्थान पर रुक सी जाती, दिन और राते भले ही आते और बदलते रहते, और मै हमेशा एक बच्ची ही रहती, तो शायद फिर किसी को मेरी कोई चिन्ता न करनी पडती। कोई, न मुझे देख कर प्यार के गीत गाता और न कोई मेरी त्रुटियाँ निकालता। मेरा कद ठिगना है। मै पाँच फिट भी लम्बी नहीं। मेरा रग साँवला है। मै पागलो की तरह सिर को झटके देती हुई डोलती-डगमगाती सड़क पर चला करती हूँ। मेरे तो जैसे करम ही फूट गये हैं। मै सोचा करती हूँ, कोई मुझे कैसे पसन्द करेगा····? और आप मुझ से उत्तर चाहते हैं····! किस बात का···?

मुझे तो यह भी अच्छी तरह याद नही। मैने अपनी मूर्खता से सरसो के दाने रेत पर बिखेर दिये थे···अब उन्हे चुनने का प्रयत्न करूँ तो कैसे ··? यह तो और भी मूर्खता होगी····।"

"तुम मे मूर्खता बिल्कुल नही···! ऐसा मैं नही कहता" राही जी ने कहा—"जब तुम ऐसी ऐसी भावुकता मे डूबी हुई बेकार की बाते करने लगती हो तो सचमुच ऐसा विश्वास हो जाता है; जैसे तुम मूर्खा ही नही, बल्कि अन्य मूर्ख स्त्रियो से दो कदम आगे बढी हुई हो। कभी तुम्हे अपने आप शक होने लगते हैं, कभी अपने आप पर दया आने लगती है। तुम हमेशा पिछली बातो को ले लेकर रोती हो। लेकिन जो मै कहता हूँ,उस पर बिल्कुल ध्यान नही देती। मैने कल तुम्हारे सामने सुरेन्द्र का नाम लिया था। उसे तुम्हारे अन्दर कोई त्रुटि नजर नही आती। वह तुम्हारा सम्मान करता है। यदि ऐसे मनुष्य से तुम द्रोह करती हो, तो इससे मेरे मन को ठेस पहुंचती है। मै तुम्हारे मुँह से कुछ सुनना चाहता हूँ, आखिर तुमने क्या सोचा है···? ताकि मै तुम्हारे पिता से बात कर सकूँ...!"

"शायद आप जो सोच रहे है, वह न हो सके...।" वह धीरे से बोली—"जो होना था—सो हो गया···!"

"क्यो·· ·?" राही जी ने जरा ऊँचे स्वरो मे पूछा। फिर विश्वास पूर्ण शब्दो मे कहने लगे—"मै जो कहता हूँ—होगा, और अवश्य होगा। जिस काम को मै हाथ मे ले लूँ, वह हो कर ही रहता है।"

वह बोली—"मुझे आज ही पता चला है, उनका ब्याह पारो नाम की एक लडकी से होने जा रहा है। उस लडकी को मै जानती हूँ। वह देखने मे बड़ी सुन्दर और सुशील है। मै और वह कभी इकट्ठे एक ही स्कूल मे पढा करते थे।"

राही जी ने कुछ क्षण मौन रह कर कहा—"मै यह समस्या भी हल कर लूँगा। तुम इसकी चिन्ता न करो। तुम एक बार 'हाँ' कह दो···।"

सुषमा का माथा नीचे झुक गया। जैसे किन्ही गम्भीर विचारो मे खो गई हो। राही जी कुछ क्षणो तक उसकी यह दशा देखते और भाँपते रहे, और फिर बोले—"बोलो····देर न करो, मै आज तुम्हारे मुँह से 'हाँ' सुन कर ही जाऊँगा।"

वह दबे-दबे स्वरों मे बोली—"बेहतर यही है कि आप पिता जी से पूछ ले ··।"

राही जी बोले—'मै उनसे पूछूँगा। पहले तुम 'हाँ' कह दो।"

"मुझे अपनी सहेली का ख्याल है। यदि मेरा काम पारो का दिल दुखाये बिना ही हो सकता है तो मै कैसे इन्कार कर सकती हूँ।" वह उसी प्रकार माथा झुकाए हुए बोली—"मैने एक भूल की थी, उसके कारण मेरा माथा सदैव नीचे झुका रहेगा···।"

"ठीक है ··।" राही जी ने कहा—"देखो कल सवेरे तुम मुझे होटल मे मिलो। हम निश्चिन्त हो वहाँ कुछ और बाते कर सकेगे···आओगी न·····?"

वह बोली—"आऊँगी···"

फिर राही जी सुषमा के पिता के पास जा बैठे। कुछ इधर-उधर की बातो के बाद उन्होने उससे भी सुषमा ही की चर्चा छेड दी। वे बोले—"भैया आप सुरेन्द्र को जानते है····?"

सुषमा का पिता बोला—"अच्छी तरह···!"

राही जी ने पूछा—"उसके बारे में आपके क्या विचार है ?"

वह बोला—"वह एक अच्छा और पढा-लिखा युवक है। तुम तो जानते ही हो, एक बार सुषमा से उसके ब्याह की बात चली थी···।"

"वह तो मै जानता हूँ···।" राही जी ने कहा—"और आप लोगो ने रिश्ता देने से इन्कार कर दिया था। इस सम्बन्ध मे मैने भी भूल की थी। लेकिन अब आपके क्या विचार है।"

"मै आपका अच्छी तरह मतलब नही समझा।"

"आपको सुरेन्द्र ही के साथ, सुषमा का सम्बन्ध स्थापित करना होगा ।"

"यह कैसे हो सकता है···यह असभव है । जहाँ एक-बार इन्कार हो गया, वहाँ फिर हम 'हाँ' कैसे कह सकते है···?"

"यह पुरानी बाते हैं और पुराने विचार । इस जमाने मे ऐसी बातो पर कोई विचार नही करता । अब तो प्रत्येक व्यक्ति अपना यह अधिकार समझता है कि वह अपना जीवन साथी खूब सोच-विचार कर चुने । आप लोगो ने इन्कार किया था तो कुछ विचार कर, अपना फायदा सोच कर, इसमे दोष क्या है···।"

"राही जी, जब बात गिर जाये तो उसका मूल्य नही रहता । इससे हमारी हेठी होगी । और फिर सुषमा को इस बात के लिए राजी किया जा सकेगा भी, तो कैसे ? आप तो बम्बई मे उसके लिए कोई प्रबन्ध कर रहे थे ?'

"बम्बई वाली बात टूट चुकी है । अब वहाँ का विचार छोड दीजिए । मैंने सुषमा को भी यह बात बता दिया है...।"

"सुषमा सुरेन्द्र के बारे मे क्या कहती है···?"

"वह राजी है···।"

"अजीब लडकी है·· कुछ समझ मे नही आता । यह लडकी मेरा सिर नीचा करा के रहेगी ।'

"शायद आप यह नही जानते कि लड़की वाले को अपना सिर झुकाना ही पडता है । लेकिन सुरेन्द्र ऐसा आदमी नही, जो कल आपको और सुषमा को आप लोगो की पिछली बातो पर ताना देगा ।"

"खैर ! कुछ सोच कर आप की बातो का जवाब दूंगा ।"

राही जी सुषमा के पिता की बातो से निराश नहीं हुए । उन्हे इस बात की खुशी थी कि उस बूढे ने उनकी बाते ध्यान पूर्वक सुनी थी ।

उस दिन उस पर शराब और अफीम का नशा कम था। इसलिये उस ने सुनी बातो का कुछ प्रभाव अवश्य ही लिया था।

उस दिन राही जी रात गये, सुषमा के यहाँ से वापस अपने निवास स्थान की ओर लौटे। उनके चले आने के बाद सुषमा को उसके वृद्ध पिता ने अपने पास बुलाया और पूछा—"बेटी, आखिर यह क्या तमाशा है ·· ? मेरी समझ मे कुछ भी नही आ रहा। राही जी ने मुझसे सारी बाते बताईं। तुम क्या चाहती हो, मुझे अपने मन की बात कहो···? मै चाहता हूँ, तुम सुखी रहो। तुम जो चाहोगी—वही होगा। राही जी ने जो-कुछ सुरेन्द्र के बारे मे कहा, वह सच है ·· ?"

पिता के मुँह से इतनी बाते सुन कर पहले तो वह मौन रही। फिर कुछ सोच कर बोली—"पिता जी मै स्वय इस रहस्य को समझने मे असमर्थ हूँ। राही जी क्या कह रहे है, मेरी समझ मे कुछ भी नही आ रहा।"

"उनका कहना है, बम्बई वाली बात समाप्त हो चुकी है।"

"जी···।"

"फिर तुम्हे अब आगे कुछ सोचना ही पडेगा। कब तक तुम इस घर मे बैठी रहोगी। एक दिन तुम्हे, हमे छोड कर जाना ही होगा। वह सपने जो तुम देख रही हो, पूरे होने के नही। कभी ऐसा भी हुआ है कि एक बेटी का ब्याह हो और दहेज मे वह अपने बूढे बाप और अपने आवारा भाई को भी साथ लेती जाए। तुम अपनी इस ज़िद और अपने यह विचार मन से निकाल दो! और देखो···कोई लडका केवल तुम्हे ही पा कर खुश नही रह सकता। वह तुम्हारे साथ प्रचुर धन और दहेज़ भी चाहेगा। क्या इसकी सामर्थ्य हम मे है ?"

सुषमा की आँखो मे आँसू डबडबा आये। बूढा कहता गया—"कितनी भूल की थी उस समय हम लोगो ने इन्कार करके। अब किस मुँह से वहाँ 'हाँ' कहे···?"

"पिता जी···!" सुपमा रुँधे हुए कठ से बोली—"आप अधिक न सोचिये मेरा · मेरा अभी ऐसा कोई इरादा नही · !"

"तुम कब तक ऐसे बैठी रहोगी ।" वह बोला—"तुम नही जानती दुनिया कितनी प्रकार की बाते करती है । मेरे तो सुनते-सुनते कान पक चुके है ।"

"मै ही अभागिन हूँ ···!" सुपमा बोली—"अब हम यहाँ नही रहेगे, हम किसी दूसरे नगर मे चले जाएंगे ··!"

"क्या मूर्खता है यह भी · " वृद्ध बोला—"यहाँ अपना और कुछ नही तो सिर छिपाने के लिए मामूली जगह तो है । कुछ लोग जानते-पहचानते तो हैं, और किसी दूसरे नगर मे हम कहाँ भटकते फिरेगे । अब मुझ मे कही और जाने की शक्ति नही । तुम्हे अपना कोई फैसला कर लेना चाहिये ।"

सुपमा ने कहा—"मै आपकी बात नही टाल सकती पिता जी । लेकिन क्या यह जरूरी है कि मै राही जी के कहने से सुरेन्द्र के बारे में 'हाँ' कह दूँ···?"

"यह तुम स्वय सोच सकती हो···" वृद्ध ने कहा—"लेकिन अब तुम्हे व्यर्थ की आशाये मन से निकाल देनी चाहिएँ । तुम सोच कर उत्तर दो, मै राही जी से क्या कहूँ · !"

सुपमा बोली—'मै सोच चुकी हूँ, आप उन्हे इन्कार कर दे···।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा···!" कह कर वृद्ध मौन हो गया ।

सुपमा अपने कमरे मे लौट आई । उसका मन अस्थिर था । उसका फूट-फूट कर रोने को जी चाहता था । वह फिर कमरे से निकल कर बरामदे मे आ बैठी । वहाँ वह अतीत की अनेको बाते याद कर-कर के रोती रही । एकान्त मे अकेली···!

जब कही बहुत रात बीत चुकी थी, वह फिर अपने कमरे मे चली

गई। उस रात उसने भोजन भी नही किया। भूखी-प्यासी, चारपाई पर लेट गई। पर नीद आँखो से गायब थी। अतीत की कई घटनाएँ, सुरेन्द्र से वह उसकी प्रथम भेट, वह मुलाकाते, वह सडको व पार्को की सैर, वह काफी हाउस मे मिलन की घडियाँ, वह ताल के किनारे चाँदनी रातो मे विहार, सब-कुछ, सारे दृश्य, उसकी आँखो के सामने घूम रहे थे। वह रो रही थी!

उसने अपने मन मे अनुभव किया, मै बहुत बडी मूर्खा हूँ, नादान हूँ। मैने हीरे को पत्थर समझ कर फेक दिया था। मैने रेगिस्तान की रेत को चश्मा समझ कर उस ओर बढने का प्रयत्न किया था और मै प्यासी की प्यासी ही रही। सिर्फ एक राही जी के कारण!

३२

सुरेन्द्र कुछ सोच-विचार के बाद दूसरे दिन सवेरे राही जी के पास पहुँच गया। राही जी उसका इन्तजार कर रहे थे। उसके वहाँ पहुँचते ही उन्होने होटल के बैरे को चाय इत्यादि लाने को कहा और फिर सुरेन्द्र से कहने लगे—"प्रिय बन्धु! आज मै तुम्हे 'आप' की बजाय 'तुम' कह कर सम्बोधन करूँगा। यद्यपि साहित्य के क्षेत्र में तुम मुझसे आगे हो, लेकिन उम्र मे मै तुमसे बडा हूँ। उम्र के नाते भी कभी किसी का किसी बात पर अधिकार बढ जाया करता है। तुम मेरे छोटे भाई हो, सेरे अजीज हो। तुम मुझे सदैव याद आते रहते हो। तुम उस कुर्सी पर मत बैठो, आओ मेरे साथ इस सोफे पर बैठो···नही तो कुर्सी इधर मेरे निकट सरका लो।" उन्होने स्वयं सुरेन्द्र को हाथ से खीच कर अपने सोफे पर बैठा लिया। फिर सतोष की साँस ली। "हाँ, अब मै तुमसे

शान्तिपूर्वक बातें कर सकूँगा···और मैं समझता हूँ, यदि मैं तुम से कुछ पूछूँगा तो तुम मेरे प्रश्नो का उत्तर अवश्य दोगे ?"

सुरेन्द्र ने कहा—"जरूर··· क्यो नही · !'

वे कुछ क्षणो तक मौन रहे, फिर बोले—"क्या कभी तुम्हारी और सुषमा के ब्याह की बात चली थी ?"

"हाँ · !" वह बोला—"यह पिछले साल की बात है ।"

राही जी कहने लगे—"तो तुमने इसके बारे मे मुझे क्यो नही कहा · ?"

"मैंने इसकी कोई आवश्यकता अनुभव नही की थी ।" बडे कोरेपन के भाव थे सुरेन्द्र के शब्दो मे, और फिर वह कहने लगा—'लेकिन राही जी यह बात आप से छिपी हुई तो नही थी ···आप सब जानते थे ।"

"हाँ, एक बार शैल बहन के मुँह से कुछ सुना था । लेकिन सरसरी तौर पर, और मैंने इस पर कोई ध्यान नही दिया था ।" इतना कह कर राही जी कुछ देर के लिए मौन हो गये । फिर कुछ सोच कर बोले—"लेकिन अब तुम्हारा सुषमा के बारे मे क्या ख्याल है ·· ?"

"कुछ भी नही···!" सुरेन्द्र ने कहा—"मै पिछली बातों को भूल चुका हूँ ··।"

राही जी मुस्करा दिये—"मुझे तुम्हारी इस बात का विश्वास नही हो सकता ·· सुषमा तो तुम्हे चाहती है · !"

"मुझे इसका विश्वास नही हो सकता···" सुरेन्द्र पर राही जी की बात का कोई प्रभाव नही पडा । वह बोला—"सुषमा को केवल उसी की चाह हो सकती है, जो रुपये-पैसे वाला हो, धनी हो । जो उसके सारे परिवार का बोझ सँभाल सके । उसे धन वाला आदमी चाहिये । मेरे जैसा फक्कड़ और स्कूल-मास्टर नही···!"

"तुम्हारी धारणा गलत है ···।" राही जी ने कहा—"क्या स्त्री को रुपये-पैसो से प्रेम होता है, और वह भी सुषमा जैसी लडकी, जिसे साहित्य और कला से प्रेम हो···जिसमे सफल कवियत्री तथा कहानीकार बनने के गुण हो, जो अपने मन मे साहित्य-साधना की भावना रखती हो, वह भला तुम्हारे सम्पर्क मे आकर ऐसी बाते कैसे सोच सकती है। वह तुम्हारा आदर करती है, उसके मन मे तुम्हारे प्रति पवित्र भाव हैं। और तुम भी उसे चाहते हो, यह मै जानता हूँ। इसलिये मेरी यह कोशिश है कि तुम दोनो एक हो जाओ····।"

सुरेन्द्र राही जी की बाते सुनता रहा ·· और फिर कुछ देर चुप रह कर धीरे से बोला—"राही जी, जब कभी मेरे मन मे उसके प्रति कोई भावना, कोई विचार था, तब मैने अवश्य उसे पालने का प्रयत्न किया था। मैने उसकी ओर हाथ बढाया था, लेकिन उसने मेरे हाथ मे अपना हाथ देने की अपेक्षा, उस पर अंगारा रख दिया था। मैने उसे ऊँचे स्वरो मे पुकारा था, और उसने अपने कानो मे उँगलियाँ ठूँस ली थी। उसकी इस कृपा, इस दुष्ट व्यवहार से न केवल मुझे, बल्कि शैल भाभी और घर के अन्य लोगो पर आघात पहुंचा था। हमे लज्जित होना पडा था। मैने पहली और अन्तिम बार यह समझ लिया था कि वह एक मूर्ख लडकी है। वह भावना जो कभी मेरे मन मे करवटे लिया करती थी, अब मिट चुकी है। और अब मै इस विषय पर कुछ भी सुनना नही चाहता···।"

तभी बैरे ने एक ट्रे मे चाय और कुछ नाश्ते का सामान लिए कमरे मे प्रवेश किया। उसने ट्रे सामने एक छोटे से टेबुल पर रख दिया। राही जी ने कहा—"लो, पहले चाय पियो, उसके बाद इतमीनान से बातें करेगे। यह बाते जल्दी की नही। इसी जल्दबाजी ने तो पहले तुम्हे नुकसान पहुँचाया है।"

सुरेन्द्र ने कहा—"मैं तो चाय घर से पीकर ही चला था। आप पीजिये।"

"नही तुम्हे मेरा साथ देना ही होगा" उसका हाथ खीचकर राही ने एक केक थमा ही दिया। और बोले—"लो खाओ। जिन्दगी खाने और पीने के लिए है। अधिक सोचने वालो को खाने-पीने मे कंजूसी नही बरतनी चाहिये · "

राही जी के सामने उसका कोई चारा न चला। इच्छा न रहने पर भी वह, क खाने लगा। राही जी कहते गए—"मै जानता हूँ बधु, तुम्हे पिछली बातो का दु ख है। सुषमा का व्यवहार तुम्हारे साथ अच्छा नही रहा। तुम्हारी जगह जो भी होता, उसकी यही मनोदशा होती। सुषमा शैल से नाराज थी। इस नाराजगी का कारण, वह शक था जो मेरे और सुषमा के बारे मे उसके मन मे पल रहा था। उसने भी मेरे और सुषमा के सम्बन्ध की आलोचना की थी। सुषमा इस आलोचना को बर्दाश्त नही कर सकी। और यही कारण था कि उसने तुम्हारे साथ ब्याह करने से इन्कार कर दिया था। उसने मुझे अपने एक पत्र मे लिखा था, 'भैया! अन्य लोगो की तरह शैल बहन को भी मेरे और आपके सम्बन्ध मे काफी शक है! एक ओर तो उन्हे मुझ पर शक है मुझे गिरी हुई समझती हैं, और दूसरी ओर वे मुझे सुरेन्द्र के लिए मॉग रही हैं। आप ही कहिये यदि आज मै बुरी हूँ तो क्या कल उनके लिए अच्छी हो जाऊँगी, इसलिये ब्याह से मैने इन्कार कर दिया है।"

वे कुछ रुक कर बोले—"अब तुम कहो, इसमे उस गरीब लडकी का क्या दोष था···और क्या तुम भी मुझ पर ऐसा ही शक करते थे · ?"

सुरेन्द्र ने राही जी की बाते बडे ध्यान-पूर्वक सुनी और फिर कुछ सोच कर कहा—"राही जी जहाँ तक सुषमा का शैल से नाराज़ होने का सवाल है, यह उसकी मूर्खता थी। वे हमेशा से उसे कई प्रकार के आदेश देती आई। कई बार उन्होने उसे कई बातो से रोका और कई गलतियो से टोका है। यह कोई नई बाते नही थी। उसे तो इन्कार के

लिये एक बहाना चाहिए था। इस तरह वह आपका और अधिक विश्वास प्राप्त कर सकती थी और शायद आप उसके लिये और भी कुछ अच्छा सोच सकते थे। और जहाँ तक आपका सम्बन्ध है, आप इस बात से इन्कार नही करेगे कि आपके दिल में सुषमा के प्रति कुछ भ्रम अवश्य थे। और इसी भ्रम के नाते आपने अपने कुछ मित्रो मे, जो संयोगवश मेरे भी मित्र हैं और मेरा आदर करते है, और जिन्हे मेरा तथा सुषमा के सम्बन्ध का ज्ञान था, कुछ गैर जिम्मेवारी की बाते की थी। मुझे आपकी उन बातो का कोई दु:ख नही, क्योकि यह मैने अपनी आँखो से नही देखा, आप सुषमा के साथ क्या करते रहे हैं और क्या नही। मै तो केवल एक बात जानता हूँ। मनुष्य दुर्बलताओ का पुतला है। आपकी जगह जो कोई भी होता, और विशेषकर ऐसा व्यक्ति जो कवि और लेखक हो; उसके वक्ष मे भावुकता से भरा दिल हो, जिसके मन मे सैकडों अरमान और भावनाएँ पलती हो जो एक समय से किसी जीवन-साथी की तलाश मे हो, उसके मन मे एक भ्रम का उत्पन्न हो जाना, कि सुषमा जैसी लडकी मुझ पर जान देती है, और फिर मन के विचारों की शाँति के लिये भूठे किस्से गढ-गढ कर सुनाना; एक साधारण सी बात है। इसलिये मुझे इसका बिल्कुल ख्याल नही। किन्तु आपकी ओर से जहाँ मुझे एक बात का यह दु:ख है कि आपने सुषमा को मुझसे तोड़ने की कोशिश की, वहाँ मेरे मन में इस बात की प्रसन्नता भी है कि आप ही के हेतु यह बात भी स्पष्ट हो गई कि सघर्ष के इस युग मे, जब मनुष्य को अपनी रोटी-कपडे की चिन्ता अधिक है, जहाँ प्रत्येक वस्तु, चाहे वह प्रेम ही क्यो न हो, और चाहे शादी-ब्याह की बाते, कला हो या साहित्य, सब को आर्थिक दृष्टिकोण ही से देखा जाता है, न केवल देखा जाता है, बल्कि समझा और अमल मे लाया जाता है। आपके द्वारा यह भी स्पष्ट हो गया कि सुषमा एक चालाक लडकी है और महा मूर्ख भी, और ऐसी लड़कियो का जीवन रोते-रोते ही बीतता है।"

राही जी माथा झुकाये चाय निगल रहे थे। जब सुरेन्द्र ने अपनी

बात समाप्त कर ली तो वे बोले—"क्या तुम विश्वास कर सकोगे कि मैंने उसे सदैव अपनी छोटी बहन समझा है।"

सुरेन्द्र ने चाय की प्याली मुँह से लगाते हुए कहा—"राही जी, आपका मै आदर करता हू। मेरी बाते सुनने से पहले कृपया आप पहले मेरे बारे मे यह समझ ले कि मै एक स्वतत्र विचारो का आदमी हूँ। मेरे विचार मे प्रत्येक मनुष्य का हक है कि वह आजादी से कुछ सोच सके और यदि किसी काम मे बिना किसी को हानि पहुँचाये उसका अपना भला हो रहा हो, तो वह काम अवश्य करे। मेरे निकट आपका सुषमा के सम्बन्ध मे बहन शब्द का प्रयोग कोई महत्व नही रखता। मान लीजिए कि मै सुषमा को आपकी बहन और और आपको उसका भाई नही मानता, तो इसका अर्थ यह तो नही हुआ कि मैने आपको एक गिरा हुआ आदमी समझ लिया। मै अब भी आपका उतना ही आदर करता हूँ जितना कि पहले करता रहा हूँ। मै जानता हूँ, हममे अनेको दुर्बलताएँ हैं। हम भावुक लोगो के मन मे अनेको भावनाओ के ज्वार-भाटे आते रहते है! हम मूर्खतावश अर्थहीन वस्तुओ के पीछे भटकने लगते है, और ज्यो-ज्यो एक यथार्थ हमारी आँखो के सामने कई रहस्य खोलने लगता है, त्यो-त्यो हमारे विचार बदलने लगते है, और यह एक स्वाभाविक बात है। इसे मै बुरा कहूँ तो कैसे? यह तो साधारण सी बात है। आप अपने मन से मेरे प्रति अपनी सारी शंकाये निकाल दे।" बात समाप्त करते ही, वह एक-दो घूँट मे ही प्याली की सारी चाय निगल गया।

राही जी ने पत्रो के एक पुलिन्दे की ओर संकेत करते हुए कहा—"बंधु यह है, वे सारे पत्र जो सुषमा ने लगभग एक वर्ष के अन्दर मुझे लिखे। जो पत्र चाहो, तुम इस पुलिन्दे से निकाल कर पढ सकते हो। इससे तुम्हारे मन की रही सही शका भी दूर हो जायेगी। इससे तुम्हे यह भी अन्दाजा लग जायेगा कि दुनिया को क्या कहने की आदत है।

दो भाई-बहन अगर इकट्ठे होकर कुछ बाते करें तो दुनिया उसका कितना गलत मतलब निकालती है···।'

सुरेन्द्र ने एक बार मुहर लगे लिफाफो और पोस्टकार्ड के मिले-जुले पुलिन्दे को देखा और फिर राही जी को। फिर वह बोला—"मुझे इनके पढने की कोई जरूरत नही, क्योकि ये पत्र मेरे विचारो मे कोई बडी क्रान्ति नही ला सकते। क्या आपके विचार मे आप के प्रति अब भी मेरे मन मे कोई शका शेष रह गई है · क्या आपको मेरी बातो का विश्वास नही हुआ ?"

"नही, मुझे तुम पर बहुत अधिक विश्वास है ···तुम मेरे अपने हो····" राही जी उस पुलिन्दे से एक पत्र निकालते हुए बोले—"मै फिर भी तुम्हे एक पत्र के कुछ अश सुनाता हूँ।" वे एक पत्र पढने से पहले बोले—'लो सुनो, यह पत्र सुषमा ने मुझे पिछले अगस्त के महीने लिखा था। वह लिखती है—"भैया ! पिता जी प्राय मुझे बताया करते हैं। सुषमा ! तुम से बडा तुम्हारा एक भाई था, और जब तू केवल एक वर्ष की थी, और तेरा भाई छ· वर्ष का, वह चेचक से मर गया था। वह तुझे बहुत प्यार करता था। हमेशा तुझे गोद मे लेकर खिलाया करता था। तुम्हारा चेहरा उससे बिल्कुल मिलता जुलता है। जब भी तुम्हे देखता हूँ, मुझे उस की याद आ जाती है। जीवन के इन अतिम दिनो मे न जाने क्यो मुझे उसकी याद आती रहती है। मै सोचता हूँ काश ! आज वह हमारे बीच होता !"

"भैया ! पिता जी के मुँह से जब मै इतनी बाते सुनती हूँ, तो मै स्वयं कुछ सोचने लगती हूँ, यदि भैया जीवित होते तो शायद आज मै अपने आप को दुनिया के तूफान मे अकेली न पाती। न मुझ पर घर की इतनी जिम्मेदारियाँ होती, न मै अपने आप को एक खिलौना बना देती और न लोग आज मुझ पर तरह-तरह की कीचड उछालते। किन्तु भैया ! आज मै एक प्रकार से निश्चिन्त हूँ। मै अपने मन मे अपूर्व शान्ति अनु·

भव कर रही हूँ। मैने आपको पा कर अपना एक बिछुडा हुआ भाई पा लिया है। मै आपकी छोटी बहन हूँ। आप मेरे बारे मे जो भी सोचेगे, मेरे भलाई की सोचेगे। मुझे आपका आशीर्वाद चाहिये····।"

राही जी ने पत्र का वह अश समाप्त किया और मौन हो गए। सुरेन्द्र माथा झुकाये चुपचाप बैठा था। सुषमा का चेहरा उसकी आँखो के सामने घूम रहा था। सुषमा···जैसे वह उसके सामने खडी कह रही थी—"देखिये ···मुझ पर विश्वास कीजिये, मेरे साथ बहुत मजबूरियाँ थी, यदि मै आप से बहुत दूर चली गई तो, यह भी मेरी एक मजबूरी थी। मजबूरियो के बधन कुछ इतने कडे थे कि मै उन्हे तोड कर आपके पास न आ सकी। आप मुझे क्षमा कर दे··।"

राही जी ने मौन भग किया—"कैसी विचित्र लड़की है यह! तुमने अन्दाजा लगा लिया न···? जिस दिन मैने यह पत्र पढा था उसी दिन से उसे अपनी बहन समझ लिया था। शायद तुम्हे यह मालूम नही कि मेरी भी अपनी कोई बहन नही।"

फिर उन्होने एक पत्र और निकाला और उसका एक अश पढने लगे। लिखा था —

"हाँ भैया मैने स्वय सुरेन्द्र जी से ब्याह करने से इन्कार किया था। क्यो किया था? इसका मै क्या उत्तर दूँ·· आप से कुछ छिपा हुआ नही। आप भी एक हद तक इस प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं। मेरे मन मे तो रह-रह कर एक विचार उठता है, और वह यह कि, यदि उनकी भाभी शैल जी वाकई मुझे अपने घर की शोभा बनाना चाहती थी, तो उन्होने आप पर और मुझ पर लाछन क्यो लगाये। क्यो मुझे इतनी गिरी हुई समझ लिया था ··? क्या मेरा सुरेन्द्र के साथ ब्याह कर लेने ही से उद्धार हो सकता था? न जाने क्यो मेरी यह इच्छा नही हुई कि मै उन्हे अपनी ओर से कोई सफाई पेश कर सकूँ, कि आप मेरे भैया हैं, और सुरेन्द्र मरे एक मित्र···!"

पत्र का वह अंश पढकर राही जी कुछ क्षणो के लिये मौन हो गये। फिर उन्होने एक पत्र और निकाला और उसे पढने से पहले बोले—'सुरेन्द्र। सुषमा ने मुझ पर बहुत अधिक विश्वास कर लिया था। और उसका यही विश्वास उसकी तबाही का कारण बना। वह मुझ से स्पष्ट होकर बाते करने लगी थी। इतना अधिक स्पष्ट होकर कि शायद ही कोई बहन अपने भाई के सामने इतना अधिक सच बोलने का साहस करे।"

"लो सुनो···।" वे दूसरे पत्र का कुछ अश पढने लगे :—

'भैया! आखिर मै भी इन्सान हूँ! स्त्री का रूप पाया है मैने। मेरे सीने मे भी एक दिल है। उसमे भावुकता, स्नेह और आशाएँ पलती हैं। मै किसी का प्यार चाहती हूँ, स्नेह चाहती हूँ पर मुझे हर ओर से निराशा ही मिलती है। मै हर ओर अपनी भर्त्सना और अपमान होता देखती हूँ। कभी मुझे अपने आप पर गुस्सा आता है, कभी अपने आप से घृणा होने लगती है। मेरे मन मे इस सारे समाज के प्रति विद्रोह की भावना उठ रही है। मेरा, सदाचारिता और सतीत्व से विश्वास उठ रहा है। मै पागल हो रही हूँ। मै डरती हूँ, मै कही इसी पागलपन के कारण कोई ऐसी गलती न कर बैठूँ, कि जिसके नाते कल आप मुझे बहन कह कर पुकारने मे अपनी मान हानि और निन्दा समझे...।"

सुरेन्द्र ने पूछा—"राही जी यह पत्र कब लिखा गया था आपको··· ?"

राही जी ने कहा—'पिछले वर्ष सितम्बर के महीने" और सुरेन्द्र को स्मरण हो आया, सुषमा उन्ही दिनो एक बगाली लड़के के साथ बदनाम हो रही थी।

राही जी एक और पत्र का कुछ अश पढ़ रहे थे :—

"प्यारे भैया! मै सच कहती हूँ, मैने आज तक अपने जीवन मे कुछ भी नही पाया। न सुख, न शाँति और न किसी से किसी प्रकार का उत्साह! ऐसा लगता है—मै जीवन पथ पर चली जा रही हूँ। अकेली, बस

अकेली ही। मुझे अपनी राह की खबर नही। बस बेकार ही चली जा रही हूँ। कभी सोचने लगती हूँ, मेरी यह मजिल कब और कैसे पूरी होगी। मुझे अपने जीवन का एक लक्ष्य बना लेना चाहिये, ताकि यह सफर आसानी से कट जाये। आप को याद होगा, आप ही ने तो एक दिन ससार की महान कवियत्रियो और लेखिकाओ के नाम गिना कर मुझे कहा था, सुषमा तुम भी इन्ही जैसी बन सकती हो। तुम मे बडी बनने के सारे गुण विद्यमान है। तुम अमर हो जाओगी। विश्वास कीजिये जिस दिन आप ने मुझ से इतनी बाते कही थी, मै अपने आप मे फूली नही समा रही थी। मै रात भर अमर और महान बनने की बाते सोचती रही थी। नीद मेरी आँखो से दूर थी। आज भी मै यही सपने देख रही हूँ। यह भावना मेरे मन मे आप ही ने तो उत्पन्न की थी। आप ही ने तो मुझे अमर बनने का आशीर्वाद दिया था ··।"

सुरेन्द्र सब कुछ सुने जा रहा था। उसके कानो मे जैसे किसी तूफान का शोर गूँज रहा था। वह सोच रहा था—'ये सब कितना बडा झूठ है···मैने सुषमा का आदर किया था, मैने उसे सदैव प्रोत्साहन दिया। मै उसे साहित्य-रचना की प्रेरणा देता रहा। मैने उसकी प्रशसा के पुल बाँधे थे, और उसे ऊंचा उठने के लिये कहा था। फिर राही जी को ऐसा निराशा पूर्ण पत्र लिखने का मतलब, एक धोखा, फरेब और आत्म-वचना के अतिरिक्त और क्या हो सकता है··।" वह धीरज खो बैठा और बोला—"बस कीजिए राही जी, अब बस कीजिए···।"

वह सोफे पर से उठकर खिड़की के निकट जा खडा हुआ और कहता गया—"मै जानता हूँ राही जी, यह मूर्ख लडकी सदा से रगीन सपने देखने की आदी रही है। इसने बहुत सारे मिथ्या सपने देखे हैं।"

राही जी भी सोफे पर से उठ कर उसके निकट आ खडे हुये, और कहने लगे—"मैने सुषमा का वास्तविक रूप तुम्हारे सामने रखा है। तुम उससे घृणा नही करोगे, ऐसा मेरा विश्वास है।"

"मुझे किसी से भी घृणा नही।" सुरेन्द्र बोला—"हाँ मुझे ऐसे लोगो पर अवश्य ही दया आती है, जो मिट्टी के खिलौनो से खेलते है, और उनके टूट जाने पर रोते हैं ··।" कुछ क्षणो के बाद उसने प्रश्न किया—"राही जी आप मुझे मेरी इस बात का उत्तर दे सकते हैं, वह बलबीर सिह नाम का व्यक्ति, बम्बई मे कौन था, जिससे आप सुषमा के ब्याह की बात कर रहे थे ?"

वे बोले—"वह मेरा अपना एक स्नेही था। एक स्कूल का टीचर।"

सुरेन्द्र ने पूछा—"वह स्नेही अब कहाँ है। क्या हुआ इस रिश्ते का·····?"

कुछ भी नही··।" राही जी बोले—"मैंने बात खत्म कर दी है।"

"क्यो···?" फिर उसने एक प्रश्न किया।

राही जी ने कहा—"मेरे विचार मे वह युवक सुषमा के योग्य नही। वह अजीब सडियल दिमाग का आदमी है और देखने मे बदसूरत···!"

वह बोला—"क्या पहले आपको यह बात नजर नही आई थी···?"

राही जी कुछ सोच मे डूब गये और फिर कुछ क्षणो के बाद बोले—"दरअसल बात यह है सुरेन्द्र कि उस युवक ने स्वय इससे ब्याह करने से इन्कार कर दिया है।"

"क्यो ?"

"वह कुछ शक्की मिजाज का आदमी है···" राही जी बोले—"उसे भी सुषमा और मेरे सम्बन्ध के बारे मे वही शक हो गया था, जिसकी चर्चा यहाँ होती है···।"

"ओह···।" सुरेन्द्र आगे कुछ नही बोला। वह खिडकी से बाहर सडक पर रेंगते हुए आदमी, दौडती हुई मोटरो और रिक्शा गाडियो को देखने लगा। राही जी फिर सोफे पर आ विराजे और कहने लगे—

'सुरेन्द्र मैने सुषमा को यहाँ बुलाया है। बस अब वह आ रही होगी। मै चाहता हूँ, तुम मेरे सामने उससे बाते करके अपने मन की शका दूर कर लो · !"

वह चुप खडा रहा, खिडकी से बाहर सडक पर नजरे गडाये, जैसे वहाँ आने-जाने वालो मे से किसी को पहचानने का प्रयत्न कर रहा हो। उसने राही जी की बात पर कोई ध्यान नही दिया। उस दिन भी वह यही अनुभव कर रहा था, जैसे धरती घूम रही है, सचमुच घूम रही है। प्रत्येक वस्तु गतिमय है। होटल की इमारत घूम रही है, और नीचे सडक के किनारे खडे विशाल पेड लट्टू की तरह घूम रहे हैं। यदि कोई वस्तु स्थिर है, तो स्वय उसका मस्तिष्क, उसका हृदय, उसकी आँखे, और उसकी जबान है····वह न अब कुछ सोच सकता है, न अनुभव कर सकता है, न देख सकता है और न कुछ बोल सकता है। कुछ भी नही, एक शब्द भी नहीं। वह नही चाहता था कि सुषमा अभी उसकी आँखो के सामने आए। वह उसकी आँखो, उसके चेहरे को नही देख सकेगा। और यदि देख भी लेगा तो शायद उसके मुँह पर खीच खीच कर तमाचे लगाये और कहे—'लो अब तुम महान बन गई। अब तुमने यश प्राप्त कर लिया और अमर बन गईं। तुम एक महान कवियत्री हो, लेखिका हो, साधिका हो। देखो तो लोग तुम्हारी इतनी वाह-वाह कर रहे है कि तुम लज्जावश गडी जा रही हो। क्यो न हो, तुमने एक बहुत बडा यश प्राप्त किया है।' उसका जी चाहा वह खिलखिला कर हँसे। पागलो की तरह कहकहे लगाए। और वह ऊँचे स्वरो मे बोला—"राही जी मुझे आज्ञा दीजिए, मै चला। हम फिर मिलेगे !"

वह शीघ्रता से कमरे के बाहर निकलने लगा। राही जी बोले—"कुछ देर ठहर जाओ, सुषमा आती ही होगी···!"

किन्तु उसने कोई उत्तर नही दिया और कमरे से बाहर निकल गया !

*

३३

सुरेन्द्र राही जी से विदा होकर सीधे शैल के यहाँ पहुँचा। शैल स्वय उसके यहाँ जाने की तैयारी मे थी। अब उन्हे रुक जाना पडा। सुरेन्द्र ने उनसे राही जी से की गई सारी बाते बयान कर दी। वह बहुत परेशान था। सब कुछ बता चुकने के बाद वह अंत मे बोला—"यह अजीब सा तमाशा है जो मेरी समझ मे नही आता भाभी। आखिर इन सारी बातो मे क्या रहस्य है····?"

शैल बोली—"राही मुझसे भी मिल चुके है सुरेन्द्र। मै उसके मुँह से सारी बाते सुन चुकी हूँ। यह केवल एक तमाशा है। बस चुप होकर देखते जाओ। तुम्हे परेशान होने की कोई जरूरत नही।"

"मै भी यही अच्छा समझता हूँ भाभी···!" वह बोला—"लेकिन मै एक बार सुषमा से मिलना चाहता हूँ···।"

"क्यों ?"

'मै उससे कुछ पूछना चाहता हूँ···!"

"कोई जरूरत नही। क्या अब तक कुछ पूछना शेष रह गया है···?"

"मै उससे मिल कर केवल एक बात पूछना चाहता हूँ···!"

"कोई आवश्यकता नही। तुम्हारा उससे क्या नाता है अब···। तुम अपना दिमाग खराब मत करो···। हम उस समय की प्रतीक्षा मे है, जब पारो दुल्हन बन कर हमारे घर आएगी। वह बहुत अच्छी लडकी है, मुझे बहुत प्यारी लगती है···!"

सुरेन्द्र की आँखो के सामने पारो का चित्र खिच गया। कितनी

विचित्र, कितनी भोली, और कितनी खामोश लडकी है वह··· ! फिर उसकी पारो के बारे मे शैल से काफी बाते होती रही ! बीच मे जब कभी सुषमा का नाम आता, वे मुँह बनाकर कहती—"छोडो उसका नाम न लो···।"

जब वह शैल के यहा से चला। उसका मन फिर अस्थिर था। न जाने उसका ऐसा जी क्यो चाहता था कि, कोई उसके पास बैठकर या उसके साथ चलता-चलता बस सुषमा ही की बाते करता रहे, उस मूर्ख लडकी की बाते जिसने आँखो पर पट्टी बाँध कर पथरीले रास्ते पर चलने का प्रयत्न किया है, जिसने अपने साथ अनेको को डुबाया है, जिसका जो जी चाहे उसके बारे मे कहे और वह सुनता रहे, उसका एक-एक दोष उसकी सारी गलतियो की कहानी दोहराता रहे और वह सुनता रहे। लेकिन उसे कोई ऐसा व्यक्ति नही मिल सकता था। शैल और राही जी के अतिरिक्त कोई उसकी कहानी नही जानता था। कोई इस विषय पर कुछ नही बोल सकता था। वह सीधा प्रेमी जी के यहाँ पहुँचा। प्रेमी जी उन दिनो सुषमा के खिलाफ काफी बका करते थे। इसलिए वह चाहता था, उनके मुँह ही से कुछ सुन कर उसके मन को कुछ शान्ति मिले। किन्तु उस दिन उन्होने उनको भी मौन पाया। बल्कि उन्होने कहा—"मिस्टर सुरेन्द्र बधाई। हमारे सुनने मे बहुत कुछ आ रहा है। स्थानीय साहित्यिको मे इसकी काफी चर्चा भी हो रही है। कहिए, कब हमे मिठाई खिलाने जा रहे हैं ?"

"कैसी मिठाई····?" उसने आश्चर्य से पूछा।

"भोले मत बनो मेरे यार···!" प्रेमी जी बोले—"राही जी ने हमे सब कुछ बता दिया है···?"

और उसे अनुभव हुआ, जैसे राही जी अब उन दोनो का फैसला करने को तुल ही गए हैं। सुषमा को वे मेरे पल्ले बाँध ही देना चाहते

हैं। लोग अब सुषमा के साथ राही जी का नाम लेने की अपेक्षा मेरा ही नाम लेने लगे हैं।

जब वह प्रेमी जी से विदा होकर घर आया, उसने माँ को अपने कमरे मे बुला कर कुछ झिझकते हुए कहा—"माँ! वह जो पारो के बारे मे मैने तुमसे कहा था, जरा ठहर जाओ, जल्दी करने की कोई जरूरत नही।"

मा यह शब्द सुनते ही तिलमिला उठी। वे बोली—"यह क्या बक रहे हो, होश मे तो हो···?"

'हाँ माँ! होश मे ही हूँ · मै कहता हूं कुछ दिन के लिए रुक जाओ। इस काम मे जल्दी ही क्या है ?"

"क्यो · ? क्या तू सबकी नाक कटायेगा ? मै पारो के पिता से सब कुछ कह चुकी हूँ। अब मै उससे और क्या कहूँ · ? वह बेचारा कई लोगो मे इसकी चर्चा कर चुका है। लोग सब जान चुके है। और अब वे यदि तुम्हारे बहाने सुनेगे, तो क्या कहेगे ?"

"मैं तो कुछ दिनो तक के लिए ही यह कार्यवाही रोके रखने के लिए कह रहा हूँ···।"

"तुम चुप रहो··· यह कार्यवाही कल ही तो होने नही जा रही—कुछ दिन लग ही जाएंगे। लेकिन कोई कब तक अपनी जवान बेटी घर में बैठा कर रखेगा। मै खुद इस काम मे और अधिक देर न ी करना चाहती।" इतना कह कर माँ गुस्से से कमरे से बाहर निकल आई। दूसरे कमरे मे सुरेन्द्र के पिता बैठे थे। उनसे कहने लगी—"सुन रहे हैं न आप, यह लडका हम सब की नाक काट कर रहेगा। अब कहता है ब्याह की बात कुछ दिनो के लिए टाल दो।"

"क्यो···?" सुरेन्द्र के वृद्ध पिता ने प्रश्न किया।

"न जाने क्यो · ?" माँ बोली—"किसी ने कानो मे कुछ फूंका होगा···कोई और लडकी नजरो के सामने आई होगी।"

वे बोले—'इसका जीवन ऐसे ही बीतेगा। हमारे जीते जी शायद यह कोई बहू इस घर मे नही लायेगा।"

वह सारी बाते सुन रहा था और मन मे सोचने लगा था—'शायद मै ऐसी बात करके माता-पिता, पारो तथा और कईलोगो से अन्याय कर रहा हूँ। लेकिन इतना तो वह अपने मन मे निश्चित कर ही चुका था कि कुछ दिनो के लिए यह शादी-ब्याह को बात रोकनी ही पडेगी।

वह सारा दिन उसने कई प्रकार के सघर्षो मे खोकर बिताया। ठीक से भोजन भी नही किया।

मध्या के समय जब वह अपने कमरे के पास खडा, पारो के घर की ओर देख रहा था, उसने उसे सामने अमरूद के पेडो तले गाय की बछिया को चारा देते हुए देखा, उसके निकट ही कुछ बकरी के मेमने उछल-उछल कर खेल रहे थे। वह देखता रहा और सोचता रहा—"पारो इसी बछिया की तरह अबोध है, पारो इन्ही मेमनो की नाईं भोली है। अचानक पारो की दृष्टि उसकी ओर घूम गई। उसने फौरन खिडकी के सामने से हट जाने का प्रयत्न किया। और कोई उसके मन मे कहने लगा—"तुमसे भी बडा मूर्ख शायद ही इस दुनिया मे कोई हो··· जिसने हमेशा फूल को छोड कर काँटो से प्यार किया है।"

३४

इन बातो को एक सप्ताह बीत गया। इस बीच सुरेन्द्र के मन का संघर्ष शान्त होने की अपेक्षा बढता ही गया। वह कभी अपने आपको कोसता और कभी राही जी को। राही जी ने क्यो उसके जख्मी तिल के काँटें तोड दिये थे? और अपने आप से वह कहता, मैं भी मूर्ख हूँ। मै

क्यो उनके पास गया ? फिर रह-रह कर उसे पारो का ध्यान आता··· वह उसके प्रति भी अन्याय कर रहा है। काश कि ऐसा न होता··! कई प्रकार की बाते उसके मन मे उठती और वह परेशान सा घर से बाहर निकल जाता। कभी जगल और कभी लेक के किनारे घूम कर अपना मन बहलाने का प्रयत्न करता। मित्रो और इसी तरह अन्य किसी व्यक्ति से उसका मिलने का बिल्कुल जी नही चाहता था। कभी ऐसा भी होता, वह सारा-सारा दिन मुँह लपेटे, अपने कमरे मे पडा रहता। पारो उसके यहाँ अब बिल्कुल नही आती थी। इधर स्कूल की छुट्टियाँ समाप्त होने को थी। घर मे सबकी यही इच्छा थी कि इन्ही छुट्टियो मे पारो और उसका ब्याह हो जाये। और उसकी एक प्रकार की चुप्पी ने सबके लिए इस सम्बन्ध मे एक दुविधा भी ला खडी की थी।

यह बाते पारो से भी छिपी न रह सकी। वह यह जान गई थी कि सुषमा को लेकर कई प्रकार की बाते उठ खड़ी हुई हैं और सुरेन्द्र फिर उस ओर आकर्षित हो गया है। ये सारी बात जान समझ कर वह बहुत रोई। परन्तु उसका रोना, उसकी आँखो के आँसू किसी ने नही देखे। किसी के कानो ने उसकी सिसकियाँ नही सुनी।

इसी बीच राही जी फिर एक बार सुरेन्द्र से मिले और बोले—"भाई सब काम मैने ठीक कर लिये हैं और अब मै आखिरी काम याने तुम्हे और सुषमा को मिला कर यहाँ से शीघ्र ही चला जाऊँगा। मै अभी तक यहाँ केवल इसी काम के लिए रुका हुआ हूँ!"

सुरेन्द्र ने राही जी को उत्तर दिया····"राही जी शायद यह काम न हो सके। आपकी कई आशाओ की तरह यह आशा भी पूरी नही हो सकेगी। मै कही और शादी का वचन दे चुका हूँ।"

"अरे छोडो यह ढकोसले—" वे बोले—"तुम इसकी चिन्ता न करो। मैं सब ठीक कर लूँगा। इस बीच तुम सुषमा से एक बार मिल तो लो, वह तुम से मिलना चाहती है!"

इतना कुछ सुन कर उसके मन की अस्थिरता और अधिक करवटे लेने लगी। उसने मन मे सोचा, वह सुषमा से अवश्य मिलेगा। चाहे इस मिलन का नतीजा जो भी निकले, पर वह उसे अवश्य मिलेगा। एक बार और बस केवल एक बार और वह देखेगा, आज की सुषमा और कल की सुषमा मे कितना अन्तर है। उसकी जिन्दगी ने अब कौन सी नई करवट बदली है···? उसने राही जी से उत्तर मे कहा—"राही जी मै सुषमा से मिलूँगा, अवश्य मिलूँगा और हो सके तो आज ही···!"

राही जी यह सुन कर बहुत खुश हुए और उसकी पीठ थपथपाते हुये बोले—"बधु, मेरी शुभ कामनाएँ तुम्हारे साथ है···।"

और उसी दिन सुषमा और सुरेन्द्र की भेट लेक के किनारे हुई। सुरेन्द्र ने उसे कई महीनो के बाद देखा था। उसे देख कर उसे आश्चर्य हुआ, वह पहले से बहुत अधिक दुबला गई थी। अब उसके चेहरे पर पहले जैसी क्रान्ति नही थी और न आँखो मे वैसी चमक। उसकी आँखे स्याह कोटरो मे धंस चुकी थी और चेहरे पर काली-काली झाईयाँ नजर आने लगी थी। उसे ऐसा लग रहा था, उसके सामने सुषमा नही, उसका शव खडा है। वह कुछ समय तक एक टक उसे देखता रहा।

सुषमा उसे अपने आप मे कुछ अस्थिर और लज्जित जान पडी। उसने अपना मस्तक नीचे झुका लिया।

सुरेन्द्र ने मौन भग किया और उससे पूछा—"सुषमा अच्छी तो हो ··?"

"अच्छी हूँ ··" वह धीरे से बोली!

"बहुत दिनो के बाद देखा है तुम्हे, मै तो तुम्हे पहली नज़र मे पहचान ही न सका, तुम पहले से बहुत दुबला गई हो! सुरेन्द्र बोला।

"बीमार थी ··!" उसने कहा।

"कोई खबर भिजवा दी होती ··। तुमने तो हमे बिल्कुल पराया ही समझ लिया···क्यो ·?"

यह एक ऐसा प्रश्न था जो सुरेन्द्र ने उससे किया और वह लज्जित सी माथा झुकाए चुप खडी रही। वह उसे एक आम के पेड के तले बिछे तख्ते की ओर सकेत करता हुआ बोला—"चलो हम वहाँ चल कर बैठे, जहाँ हम पहले भी कई बार बैठ कर आपस मे कई बाते कर चुके हैं। आज भी मुझे तुम से बहुत सारी बाते करनी हैं! हम कई महीनो बाद आपस मे मिले है!"

वे दोनो उस तख्ते पर जा बैठे।

सुरेन्द्र को वहाँ बैठ कर ऐसा अनुभव हुआ, जैसे उसके लिये वही अतीत लौट आया है, जिसमे उसने कभी भविष्य के सुन्दर सपने गढे थे। वह स्वयं वही था, और उसके निकट वही सुषमा बैठी थी, जो एक दिन बहार बन उसके मन पर छा गई थी। वह सुषमा, जिसने यहाँ बैठ कर उससे अनेको बाते की थी। सुख-दु ख की, अतीत और भविष्य की। उसने उसे बातो मे पा लिया था। वह उसके सामने अपने मन की बाते करती हुई कभी नही झिझकी थी, कभी नही शरमाई थी, वह हमेशा उसके सामने कमल के फूल के समान खिल उठती रही। चाँदनी मे नहाई हुई उज्ज्वल रातो मे। स्नेह-सिक्त मधुर यामिनी की छाया मे। लेकिन आज वह उसे कुछ निर्जीव सी जान पड़ती थी, जैसे उसमे जीवन ही नही था, शक्ति ही नही थी, भावना ही नही थी, और वह सुषमा, सुषमा नही थी! वह बेच के दूसरे किनारे पर बैठी हुई थी।

वह बोला—"सुषमा इधर आओ, जरा मेरे ओर निकट होकर बैठो, और इधर आ जाओ। हम आगे भी कई बार इस बेच पर बैठ चुके हैं। कई बार तुमने यहाँ बैठ कर बाते की हैं। आज भी मै तुम से कुछ बाते करना चाहता हूँ। कुछ विशेष बाते जो शायद मै फिर कभी तुम से न कह सकूँ ·····" सुषमा उसके और समीप हो कर बैठ गई। वह कहता

गया—"मुझे ऐसा लगता है सुषमा, जैसे तुम कुछ परेशानी महसूस कर रही हो। तुम सब कुछ भूल जाओ, पुरानी बातो को अपने मन से निकाल दो, और मेरे प्रश्नो का उत्तर दो···!" वह कुछ रुक कर बोला—"मुझे यह बताओ···क्या राही जी तुम्हारे यहाँ जाया करते है ···?"

सुषमा धीरे से बोली—"जी हाँ····!"

वे इधर दो-तीन बार मुझ से भी मिल चुके हैं।"

वह कहने लगा—"मुझ से उनकी बहुत सारी बाते हुई हैं और खुल कर। उन्होंने मुझ से न अपनी और न तुम्हारी, कोई बात छिपा कर नही रखी। मैने सब कुछ सुन समझ लिया है। मे इसी विषय पर तुम से कुछ कहना चाहता हूँ।" और वह कुछ रुक कर कहने लगा—"तुम्हे याद होगा सुषमा जब हम प्रथम बार मिले थे, और हमने एक दूसरे को पहचाना था। फिर तुम्हे वह दिन भी याद होगे जब हमारा सम्पर्क अति गूढ हो गया था और शैल भाभी ने तुम्हे बिल्कुल अपना बना कर हमारे अपने कुटुम्ब मे ले आने का प्रयत्न किया था और तभी ये राही जो हमारे बीच आ गए थे। शनि, शनि—ग्रह बन कर और उन्होने जिस तरीके से जो कुछ कहा, उससे तुम अनजान नही। तुम ने मीठी-मीठी बातो मे पड कर एक भूल की थी, और शायद शैल के प्रति तुम्हारे मन मे कुछ दूसरे विचार उत्पन्न हो गये थे। तुम्हे पहले जैसी श्रद्धा उन से नही रही थी, और शायद मैने भी कोई भूल की हो, तुम मुझ से भी रूठ गई थी। उस समय तुमने जो कुछ किया था, वह तुम्हारी गलती थी। शायद तुम अपना दोष मानने से इन्कार नही करोगी · !" वह कहता जा रहा था और सुषमा सुने जा रही थी! वह कुछ रुक कर बोला—"अब मै तुम से केवल इतना ही कहना चाहता हूँ सुषमा कि तुम अब पहले जैसी गलती को फिर दोहराने का प्रयत्न न करो। राही की अपेक्षा, तुय स्वय अपना भला-बुरा अच्छी तरह सोच सकती हो। तुम्हे न तो राही जी की सलाह की आवश्यकता है, और न ही शैल

भाभी की बातो को बुरा मानने की। तुम स्वय अपने बारे मे बहुत कुछ सोच कर अपना फैसला आप कर सकती हो। मुझे इन स्पष्ट बातो के लिए क्षमा करोगी, यदि मै यह कह दूँ कि, मै तुम्हारे मुँह बोले भाई आने राही जी से मिल कर खुश नही। न ही मुझे उनकी बातो पर विश्वास है। मै राही जी के मुँह से बहुत सारी बाते सुन चुका हूँ, अपने और तुम्हारे सम्बन्ध मे। मै यह चाहता हूँ कि तुम अपने मुँह से साफ-साफ कह दो, तुम क्या चाहती हो। शायद तुम्हे ज्ञात होगा, इन दिनो मै बडी नाजुक परिस्थितियो से गुजर रहा हूँ। घर वाले मेरा फैसला कही और कर देना चाहते है। मुझ पर जोर डाला जा रहा है। मुझ में अब यह शक्ति नही कि उनका विरोध कर सकूँ···।"

इतनी बात करके वह चुप हो गया और सुषमा के मुँह की ओर देखने लगा। वह ऐसे खामोश बैठी थी, जैसे इन बातो का उस पर लेश-मात्र भी प्रभाव न पडा हो! वह मौन बैठी सारी बाते सुन रही थी और चुप थी! आम के उस पेड़ की तरह जो उनके सिर पर पत्तो का छत्र डुला रहा था, उनकी बाते भी सुन रहा था, परन्तु मौन था, बिल्कुल चुप···! वहाँ लेक के किनारे घूमने वाले लोग उन पर एक उचटती नजर फेक देते थे।

'तुम चुप क्यो हो · बोलती क्यो नही···?"

सुरेन्द्र ने उसका हाथ धीरे से दबाया···"मै वही आदमी हूँ, देखो राही सुरेन्द्र! और तुम इतनी बदल गई हो, इस कदर रूठ गई हो कि अब मुझसे कुछ बोलना ही नही चाहती····!"

"क्या बोलूँ···?" वह बोली—"मेरे अपने बस की कोई बात नही। पहले थी और न अब····!"

"जब तुम अपना फैसला आप नही कर सकती तो कौन कर सकता, वह किसके बस की बात है · ?"

वह चुप रही···!

"बोलो ! मै जानना चाहता हूँ, यह किसके बस की बात है, मै उसी से पूछ लूँगा ?"

वह फिर भी चुप रही ।

"राही जी जो नाटक रच रहे हैं, उसका क्या मतलब है । क्यो मेरा दिमाग परेशान किया जा रहा है·· क्यो मेरी सोई हुई भावनाओ को जगाया जा रहा है···क्या यह सब मुझे मूर्ख बनाने के लिए किया जा रहा है···?"

"आप राही जी की बाते क्यो सुनते हैं···?"

"क्या तुम राही जी से मेरी बाते नही करती···और जब राही जी मेरी बाते तुम से करते हैं, तो तुम क्यो सुना करती हो···?"

सुषमा की आँखों मे आँसू भर आए और वह उन आँसुओ को ओढनी के आँचल से पोंछने लगी। सुरेन्द्र कहता गया—"राही जी हमारे बीच मे आये और वे जो रूप धर कर आये, वह शायद तुम से छिपा हुआ नही होगा । उन्हे कुछ भ्रम हो गया था, जैसे तुम उन्हे चाहती हो, क्योंकि वे पहले ही तुम्हे अपने मन की रानी बना चुके थे । उन्होने कितने ही हवाई महल तामीर किये थे । वे तुम्हे कई बहानो से बम्बई या दिल्ली ले जाना चाहते थे । क्या तुम इन बातों को आज तक नही समझ पाई ···?"

"आप कैसी बाते करते है···?" वह भर्राये हुए स्वरो में बोली– "यह सब झूठ है···!"

"यह सब सच है·· " सुरेन्द्र ने कहा—"और लोगो से यह बात छिपी हुई नही । राही जी ने इन्ही इरादो से तुम्हे बदनाम किया है··· क्या तुम्हारे कानो ने कभी यह नही सुना कि लोग तुम्हारे बारे मे क्या कहते हैं····?"

वह फिर चुप हो गई···।

"अब मै और क्या कहूँ···।" सुरेन्द्र का दुःख से माथा नीचे झुक गया—"यदि मुझमे कुछ स्वाभिमान होता, तो शायद मै तुमसे इस तरह मिल कर कोई बात तक न करता। लेकिन न जाने क्यो, क्यो एक भावना, मेरे अतर का एक स्वर, मन की एक वेदना; मुझे चौकाती रही कुरेदती रही, कि मै एक बार तुम से अवश्य मिलूँ और तुम्हे होशियार कर दूँ। मैने सत्य और यथार्थ को तुम्हारे सामने खोल कर रख दिया। तुम्हें पहले धोखे मे रखा गया था, तुम अब भी धोखे मे हो, और तुम आगे भी धोखे मे रहोगी। मै तुम्हारी भलाई के लिए तुम से कहता हूँ, तुम धोखे से बचो। मै तुम्हे पहले जैसा ही पवित्र समझता हूँ। दुनियाँ चाहे तुम्हे जो कुछ भी कह ले। लेकिन मेरे सामने तुम वैसी ही हो जैसे पहले थी ·· ठीक इस आकाश और धरती की तरह···लेकिन मै शायद तुम्हारे लिए बदल गया हूँ। मेरे विचारो मे न तो तुम ने मुझे पहले समझा था, और न अब···!"

उत्तर मे सुषमा की आँखे आँसू उगल रही थी।

सुरेन्द्र ने अनुभव किया, और अधिक बाते इस समय उचित नही। उसका अपना उद्देश्य पूरा हो चुका था। वह अपने मुँह से सुषमा के कानो मे कुछ बाते ऊडेलना चाहता था, और उसका यह काम पूरा हो गया था। अब यह सुषमा की मरजी थी वह जो बेहतर समझे, करे ···जो रास्ता ठीक समझे, उस पर चले।

उस दिन हवा में नमी थी और कुछ घन्टे पहले वर्षा हो जाने के कारण ठडी हवा बह रही थी। इसलिए शीघ्र ही लेक के किनारे टहलने वाले लोगो की सख्या धीरे-धीरे कम होने लगी थी। धूमिल सध्या काफी अँधेरी रात मे बदल चुकी थी। बिजली की बत्तियाँ चारो ओर चाँद की चाँदनी का सा उजाला फैला रही थी। उसके मन पर एक असन्तोष सा छाता चला गया। लेक का वातावरण उसे शून्य और उजाड़ सा नजर आने लगा, जैसे वह किसी श्मसान भूमि मे बैठा हो। उसके मुँह से

निकला— 'अब मुझ से यहाँ नही बैठा जाएगा···" और वह वहाँ से उठ खडा हुआ। और फिर बोला—"बस, मुझे तुम से इतना ही कुछ कहना था।"

सुषमा भी उसके साथ उठ खड़ी हुई। वे दोनो आम के झुरमुट से निकल कर लेक के किनारे-किनारे चलने लगे। सुरेन्द्र कहने लगा—"सुषमा मै चाहता हूँ, तुम मेरी बातो पर अच्छी तरह विचार कर सको। और सोच समझ कर आगे पग बढाओ। यदि मेरा और तुम्हारा मिलन सम्भव नही, हम एक सूत्र मे नही बँध सकते, तो राही जी मेरे पीछे हाथ धोकर क्यो पडे हैं···क्या अपने पापो के दाग धो देने के लिए? उनसे कह देना, वे फिर मुझसे न मिले। वे क्यो बार-बार मुझसे मिल कर तुम्हारी चर्चा करते हैं···?"

सुषमा तब भी मौन थी।

वह कुछ क्षणो तक चुपचाप चलते रहे। और कुछ दूर चल कर एक पुल के निकट, जहाँ पानी के गिरने का हल्का-सा शोर सुनाई दे रहा था, सुरेन्द्र अचानक रुका और उसने सुषमा से कहा—"सुषमा! क्या तुम्हे मेरी बातो से दु.ख पहुँचा? तुम नही जानती मेरे अपने मन मे कितना दु.ख है। मै कितना बेवकूफ बना हूँ, इसको शायद तुम नही समझ सकती। मै कहानी बन गया हूँ···। मे तुम्हारी अवस्था को भी अच्छी तरह समझता हूँ। तुम भी कहानी बन गई हो। हम दोनो एक दूसरे को जानते हैं। हमसे एक दूसरे की कोई बात छिपी हुई नही। फिर ऐसा क्यो हो रहा है। हम एक साथ एक राह पर चले है। हमने एक साथ एक ही मंज़िल की ओर बढने का निश्चय किया था। फिर हम क्यो भटक गये। वह कौन सी ऐसी शक्ति है जो हमे अलग कर रही है··? बोलो! क्या तुम्हे इसका रहस्य मालूम है···क्या तुम्हे ऐसी किसी शक्ति पर विश्वास है···?"

सुषमा इस बार बोली—"मेरे जीवन मे अब विश्वास और

अविश्वास जैसी कोई वस्तु नही रही। आप राही जी की बातो पर क्यो ध्यान देते हैं ? उनसे बिल्कुल न मिले और मेरा ख्याल छोड दे।"

वे फिर धीरे-धीरे आगे बढने लगे। उस समय हवा कुछ तेज बहने लगी थी। हवा के हिलोरो से लेक का पानी, हल्की-हल्की लहरो के रूप मे किनारे से टकरा कर 'छप छप' की एक हल्की सी ध्वनि उत्पन्न कर रहा था। सुरेन्द्र को ऐसा लगा जैसे एक तूफान उठ रहा है, एक ज्वार-भाटा आ रहा है और यह तूफान, यह ज्वार-भाटा उन्हे यहाँ अपने अदर गर्क कर लेगा। आस-पास की झाड़ियो से जीव-जन्तुओ का शोर आता सुनाई दे रहा था। हर ओर एक उदासी छाई हुई थी और निष्प्रभता। लेकिन तूफान उठ रहा था। उसका दिल धड़क रहा था। और सुषमा···नही, वह एक प्रेत छाया सी उस श्मसान मे उसके साथ-साथ घूम रही थी। वह अब उससे विलग हो जाना चाहता था। एक मोड पर आकर वह धीरे से बोला—"सुषमा तुम जाओ···देखो बस खडी है·· मै अभी यहीं कुछ देर ठहरूँगा···!"

वह बिना कुछ कहे चल दी। जैसे वह पहले ही से अवसर ढूँढ रही थी। उसके पग तीव्र गति से उठने लगे।

अभी वह कुछ ही कदम गई होगी कि सुरेन्द्र ने उसे पुकारा—"सुनो···!"

वह वही ठहर गई।

सुरेन्द्र उसके निकट गया और बोला—"क्या यह हमारी अन्तिम भेंट है···?"

"शायद···!"

"नही···! मुझ पर नाराज मत हो। मैं तुमसे फिर मिलूँगा। यही इसी लेक के किनारे, कल ···आओगी न···?"

"आऊंगी···!" उसने कहा और फिर चल दी।

सुरेन्द्र उसे जाता देखता रहा। तब तक, जब तक कि वह नगर की ओर जाने वाली बस मे सवार नही हो गई। फिर वह स्वय धीरे-धीरे बस-स्टैंड की ओर बढने लगा। क्योकि पहली बस घरघराती हुई आगे बढने लगी थी और दूसरी बस वहाँ आ खड़ी हुई थी! वह देख रहा था, सुषमा खिड़की से सिर बाहर निकाले उसकी ओर देख रही थी। और उसके इस प्रकार देखने का रहस्य अब उसकी समझ मे नही आ रहा था··!

३५

दूसरे दिन सुरेन्द्र सोच रहा था, अब बीती हुई बातो को दोहराने से क्या फायदा···गडे हुए मुर्दे उखाडने से क्या लाभ···? जो कुछ होना था, सो हो गया। वह सोच रहा था, सुषमा के सामने जो कारण पहले थे, वे आज भी है। शायद जो समस्या उसे पहले परेशान किये हुए थी आज भी वह उसी प्रकार मुँह खोले उसके सामने खड़ी है। उसने स्वयं अपने आप को पतन की खाई मे गिराया है, एक लालच और मोह मे पड कर। उसे भूल जाना ही अच्छा है। उसे भूल जाने, और हमेशा के लिये भूल जाने मे ही उसकी विजय है। उसने निश्चय किया, अब वह राही जी से भी नही मिलेगा। फिर सोचने लगा, इतनी जल्दबाजी भी नही करनी चाहिये। सारी बातो पर अच्छी तरह विचार कर लेना उचित है। सुषमा को अपनी त्रुटियो पर पश्चाताप है। वह लज्जित है, और इसी लज्जा व एक प्रकार की खीझ के कारण कुछ बोल नही रही। यदि उसके मन मे मेरे प्रति कोई स्नेह न होता, यदि वह मुझ से कुछ कहने

की इच्छुक न होती, तो लेक के किनारे मुझे मिलने के लिये आती ही क्यो···? उसके मन मे कुछ था तभी तो आई ! उसे कुछ सोचने-समझने का मौका देना चाहिये। यह चौबीस घटे उसके लिये काफी है। आज सध्या के समय अवश्य ही उसके विचार कुछ बदले हुए मिलेगे !"

वह उसके प्रति अति उदार बन जाना चाहता था। उसकी इच्छा थी, वह उस से कहे—"सुषमा ! मै तुम से बिल्कुल नाराज नही। मैं पिछली सारी बाते भूल गया हूँ। आओ, हम अतीत को भूल कर वर्तमान का एक नया सम्बन्ध स्थापित करे। मैं अब तुम्हे कोई दोष नही देता। यह सारा कसूर राही जी का है। मै तुम्हे राही जी से अलग रहने के लिये कह रहा हूँ। मै यह नही चाहता कि तुम और बदनाम हो जाओ।"

कई प्रकार के विचार, कई सघर्ष, उसे उस दिन लेक की ओर खीच कर ले ही गये। वह उसी आम के पेड़ तले वाली बेच पर जा बैठा और सुषमा की राह देखने लगा। उसे आशा थी कि सुषमा शायद पहले ही से वहाँ मौजूद होगी। लेकिन उसे वहाँ एकान्त मे बैठ कर काफी समय तक उसका इन्तजार करना पड़ा। वह कही आती दिखाई नही दी।

वह वहाँ बैठा रहा और मन मे ऐसी और अनेको बाते गढता रहा, जो वह उस दिन सुषमा से कह देना चाहता था। लेकिन सुषमा नही आई। सध्या रात में बदल गई, और वह वही बैठा रहा। लेक के किनारे सड़क पर विद्युत दीप जगमगा उठे, मानो उस दिन भी कई प्रज्जवलित चिताओ के प्रतिबिम्ब लोलित जल मे हिलोरे लेने लगे। उस दिन आकाश साफ था और चाँदनी का चाँद नील नभ पर खिला दिखाई दे रहा था। हल्की शीतल बयार बह रही थी। हवा से काँपने वाले पत्ते जैसे सिसक से रहे थे। वह वहाँ एकाकी बैठा आने-जाने वालो के लिए एक समस्या सी बना हुआ था। ज्यो-ज्यो समय बीतता जा रहा था, उसका मन निराशा मे खोता जा रहा था, रात पूरी तरह छाती चली जा रही थी। कोई उसके मन में कह रहा था—"क्या तुझ से भी बडा कोई मूर्ख

होगा सुरेन्द्र···? जो तू यो आस लगाये बैठा है यहाँ, इस शून्य मे, इन जलती हुई चिताओ के पास, इस श्मशान भूमि मे···क्या मरे हुए लोग फिर यहाँ जाग उठते है···क्या सुषमा के शव की आत्मा फिर तुम्हारे पास आकर तुम से बाते कर सकती है। वह जो अपने जीवन मे तुम से अपने मन की नही कह सकी, वह अब मृत्यु के पश्चात् तुम से क्या कहेगी···तुम यहाँ बैठे क्या कर रहे हो···क्या सोच रहे हो···? उठो जाओ ··तुम्हे पता नही कल से पारो बीमार पडी है। वह बहुत बीमार है, अचानक ही वह बीमार पड गई। उसकी बीमारी का कारण तुम से छिपा नही। तुम यह सब कुछ जान कर भी उससे मिलने, उसे देखने नहीं गये। तुम कितने निर्लज्ज हो ·· कितने स्वार्थी हो ··कितने अदूरदर्शी हो···। तुम्हे ताजा फूलो से मोह नही, तुम्हे मुरझाये हुए शुष्क फूल ही अच्छे लगते हैं। चलो, उठो, जाओ, अभी घर चले जाओ। पारो तुम्हारा इन्तजार कर रही है। गरीब पारो, जिसके मुँह मे जबान नही, पर जिसकी आँखो में आँसुओ का एक असीम सागर उमड रहा है···! जाओ उठो···! फिर यहाँ कभी न आना। बिहार का यह स्थान अब तुम्हारे लिये श्मशान बन चुका है। देखते नही, कितनी जलती हुई चिताओ का प्रतिबम्ब, फेनिल जल मे हिलोरे ले रहा है····!

वह अपने स्थान से उठ खडा हुआ। उसके लिये वहाँ और बैठे रहना असभव था। उसके सामने यह बात स्पष्ट थी, जो मनुष्य अपने जीवन में, अपने मस्तिष्क की अपेक्षा, मन ही से अधिक काम लेता है, और जो भावना ही के वश मे आँखे मूँदे, अनजान रास्तो पर चलने की मूर्खता करता है, उसे बेकार की ठोकरे खानी पडती हैं, और कभी निराशा के गड्ढे मे गिर कर बुरी तरह सिसकना पड़ता है। लेकिन सुरेन्द्र की आँखे खुल चुकी थी। वह अब गलत रास्ते से बिल्कुल हट जाना चाहता था। उसके सामने बस एक ही रास्ता था। जिस पर कि वह अब चल रहा था। यह रास्ता, यह मार्ग उसे सत्य और प्रेम की आबादी की ओर ले जा रहा था। जहाँ सुख और शान्ति बसती है। जहाँ मन को सन्तोष प्राप्त

होता है ···? जहाँ किसी की एक प्यार भरी मुस्कान से खुशी के सैकडो फूल खिल उठते हैं···! वह तेजी से आगे बढने लगा था।

× × ×

जब वह घर पहुँचा, उसने माँ से पारो का समाचार पूछा और उसके घर जाकर, उसे देख आने की आज्ञा माँगी।

माँ कहने लगी—"बेटा अवश्य जाओ। वह बहुत बीमार है। तुम्हे उसकी खबर लेनी चाहिये। उसके पिता बहुत परेशान हैं ···!"

वह उसी तरह पारो के यह पहुँचा। पारो के पिता कुछ परेशान से घर के बरामदे मे खडे जैसे किसी का इन्जार कर रहे थे। वे सुरेन्द्र को देखते ही बोले—"न जाने उसे क्या हो गया है सुरेन्द्र। बहुत जोरो का बुखार है उसे। न दवा खाती है, न मुँह से कुछ बोलती है। आज दो बार डाक्टर आ चुका है। अभी फिर उसने आने को कहा था। लेकिन अभी तक नही आया। क्या करूँ, कुछ समझ मे नही आता···!"

वह बोला—"धीरज धरिये सब ठीक हो जायेगा।"

"जाओ, अन्दर जाओ।" पारो के पिता बोले—"तुम्ही उससे कुछ पूछो। उसे दवा खाने को कहो। मै बाजार से एक और दवा ले आऊँ··· मै उसके पास बैठे-बैठे उकता गया हूँ।"

सुरेन्द्र पारो के कमरे की ओर बढा। द्वार पर पहुँच कर वह कुछ क्षणो के लिये रुका, और उसने देखा, वह खिडकी के निकट बिछी हुई चारपाई पर आँखे बन्द किये लेटी पडी है। जैसे कोई निराशा पूर्ण सपना देख रही हो। उसके शुष्क चेहरे पर गहरी उदासी छाई दिखाई दे रही थी। वह एक टक उसी की ओर देखता रहा। उसे देखते देखते शायद पहली बार उसे यह अनुभव हुआ कि पारो देखने मे बहुत सुन्दर है। वह एक भोली लड़की है, जो अन्य लडकियो की भाँति एक हृदय रखती है और उसमे भावनाएँ पलती हैं। वह तपस्विनी है। वह मौन

रह कर साधना करती है। इसे उसने कई बार देखा है, कई बार समझा है, पर समझ कर भी कभी कुछ नही समझा।

वह उसके निकट जाकर चारपाई के पास बिछी हुई एक कुर्सी पर बैठ गया। उसकी बांह छूते हुए वह अति कोमल स्वरो में पूछ बैठा—"अब कैसी हो···?"

पारो ने अपनी आँखें खोली, जिनमें शून्यता समाई हुई थी। उन आँखो मे जैसे एकाएक एक आलोक प्रदीप्त हो उठा। एक चमक सी उन आँखो मे पैदा हुई और उस से जैसे उसके चेहरे की आभा भी निखर आई। उसके शरीर मे जैसे फिर से प्राण लौट आये हो, और वह फटी-फटी आँखो से उसकी ओर देखने लगी। शायद उसे विश्वास नही हो रहा था, कि वह सचमुच सुरेन्द्र को अपनी आँखो के सामने देख रही है या कि कोई स्वप्न!

सुरेन्द्र ने फिर पूछा—"तबियत अच्छी है न···?" और प्रथम इसके कि वह कुछ बोले, वह उसकी नब्ज देखता हुआ बोला—"तुम्हे कितना बुखार है पारो, बहुत बुखार है, लेकिन चिन्ता न करो, तुम बिल्कुल अच्छी हो जाओगी···दवा खाई थी न···?"

पारो ने माथा डुलाते हुए सकेत किया—'नही।'

"क्या दवा कड़वी है···?" सुरेन्द्र ने पूछा।

वह धीरे से बोली—"नही···!"

"दवा नही खाओगी तो कैसे ठीक होओगी···?"

वह बोला—"देखो तुम्हारे बाबू जी तुम्हारे लिये कितन परेशान है।"

"मै चाहती हूँ उनकी चिन्ता, उनकी परेशानी, हमेशा के लिये समाप्त हो जाये···!" पारो क्षीण स्वरो मे बोली—"वे हमेशा मेरे लिये परेशान रहे है। उन्हे मेरे बारे में एक नही—कई चिन्ताएँ हैं। मैं मर जाऊँ तो उन की सारी चिन्ताएँ समाप्त हो जाएँ···मैं···"

"बस···!" सुरेन्द्र ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया—"और कुछ मत बोलो, मुझे सुनकर दु ख होगा···!"

पारो की आँखो से आँसू बह रहे थे।

तुम देवीस्वरूप हो, लक्ष्मी हो·· तुम्हें कौन मरने देगा ·· !" उसने अपनी जेब से रूमाल निकाला और उसके आँसू पोछने लगा।

"आप···!" पारो के मुँह से निकला—"मैने तो आपको कई दिनो से नही देखा···आप कहाँ थे···? एक दिन आप मुझे देख कर खिडकी के एक ओर छिप गये थे · क्यो ··?"

"मै ·· !" उसका सिर नीचे झुक गया—"मैं क्या बताऊँ पारो, मै मूर्ख हूँ · !"

"मेरे सामने ऐसा कहकर आप मुझे पाप का भागी न बनाएँ···!" स्नेह और नम्रता पूर्ण स्वरों मे पारो बोली—'मै ऐसा नही सुन सकती·· !"

वह उसकी आँखो मे झाँकता हुआ बोला—"मुझे क्षमा कर दो पारो ···मै फिर रास्ता भूल गया था····मै तुम से कुछ दूर चला गया था ठोकर खाकर चेत गया और सीधा तुम्हारे पास चला आया···यह मेरी अतिम भूल है ··और अखिरी ठोकर जो मैने खाई ! इसकी चोट हमेशा याद रहेगी····!"

पारो ने अपने तपते हुए हाथो से सुरेन्द्र का हाथ पकड लिया···कस के···जैसे वह उसी हाथ का सहारा चाहती थी। अब वह उस हाथ को छोड़ना नही चाहती थी और न ही सुरेन्द्र को कही भटकने के लिए जाने देना चाहती थी। वह अपने मन मे एक असन्तोष अनुभव करने लगी थी। उसने आनन्द विभोर हो अपनी आँखे मूँद ली थी। आँसुओ का सोता तब भी उन आँखों से फूट रहा था। वे आँसू उसके मन की पवित्रता के साक्षी थे !

वह धीरे से बोला—"रो कर मुझे और शर्मिन्दा न करो···मै तुम्हे मुस्कराते हुए देखना चाहता हूँ···!"

पारो की आँखो मे और अधिक वेग से आँसू उबल पडे। उसके शुष्क होठ फडफडाये, पर वह मुस्करा न सकी!

वह बोला—"आँखे खोलो · मेरी ओर देखो····"उसकी आँखो मे भी आँसू थे। वह कहे जा रहा था—"मुझ पर विश्वास करो, अब मै तुम्हे छोड़ कही नही जाऊँगा। जैसे ही तुम अच्छी हो जाओगी···तब शहनाई बाजेगी। कुवारियाँ, वृद्धाये और जवान देवियाँ मिलकर सुहाग के गीत गाएँगी। और मै आकर तुम्हे यहाँ से घर ले जाऊँगा। घर दूर नही है···!"

पारो ने क्षण भर के लिए आँखे खोली और फिर मूँद ली। उसके चेहरे पर कौमार्य की लाली दौड गई। उसके होठो पर एक हल्की सी मुस्कान खेल गई।

सुरेन्द्र ने पास एक ताक मे रखी हुई दवा की बोतल उठाई और एक खुराक दवा गिलास मे उँडेलते हुए बोला—"लो मेरे हाथ से दवा पीओ। मै चाहता हू तुम अति शीघ्र अच्छी हो जाओ।"

पारो ने फिर आँखे खोली। स्नेहपूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखा और अपना मुँह खोल दिया। उसने दवा उसके मुँह में उडेल दी। और उसने पूछा—क्या दवा कड़वी है···?

'मीठी है···" पारो मुस्कराती हुई बोली—"अमृत के समान····!"

शीशी और गिलास उसने ताकचे मे रख दिया, और कुछ क्षणो तक एक टक उसकी ओर देखता रहा। अपने रूमाल से उसने उसके दवा से भीगे होठ खुश्क किए, उसके माथे पर की बिखरी हुई लटो को अपने हाथ से सँवारा। पारो ने मानो फिर एक नशे मे डूबकर अपनी आँखे मूँद ली। तब उसके चेहरे पर शान्ति के भाव थे और उस पर अचानक

ही एक अपूर्व क्रान्ति उमड आई थी ! वह उसके चेहरे की ओर झुका। उसने पारो के गरम-गरम साँसो की लम्स अनुभव की और फिर अपने तप्त होठ उसके स्नेह सिक्त, उन खुश्क होठो पर रख दिए, जिनमे औषधि की बू रची हुई थी, किन्तु मिठास थी। पारो के शरीर मे एक झुरझुरी सी दौड़ गई।

३६

इन घटनाओ के पश्चात् राही जी फिर एक बार सुरेन्द्र से मिले। सुषमा से वे पहले ही मिल चुके थे। जिस दिन वे सुषमा के यहाँ गए, उसके पिता ने उनसे पहले जैसा स्नेह और आदर प्रकट नही किया और जब वे सुरेन्द्र की चर्चा छेड़ने लगे, वह बोला—"राही जी कोई और बात कीजिये, यह चर्चा रहने ही दीजिये। हमारा उनका सम्बन्ध नही हो सकता। जहाँ हम शादी के लिए पहले एक बार इन्कार कर चुके है, क्या वहाँ अब 'हाँ' कह कर हम अपनी हेठी करा ले ?"

राही जी ने कहा—"इसमें हेठी की क्या बात है, जो होना था सो हो गया, अब पिछली बातो को जाने ही दीजिए। सुरेन्द्र को इन बातो का बिल्कुल भी ख्याल नही। सुषमा और वह दोनो राजी हो चुके है···!"

"तो फिर जाईये उसी से पूछ लीजिये···" वह बोला—मै कब इन्कार करता हूँ···!"

सुषमा अपने कमरे मे बैठी यह सारी बाते सुन रही थी। उसने इशारे से राही जी को अपने पास बुलाया।

राही जी यह कहते हुए कि, "अच्छा मैं सुषमा ही से पूछ लेता हूँ" उसके पास से उठकर सुषमा के कमरे मे चले गये।"

सुषमा बोली—"भैया आओ बैठो···" उसने एक कुर्सी की ओर सकेत किया। राही जी कुर्सी पर बैठ गए। वह कहती गई—"मै एक बात पूछूँ, आप बुरा तो नही मानेगे···?"

"पूछो। एक नही सौ बाते पूछो।" राही जी निश्चित भाव से बोले!

मै आपकी क्या लगती हूँ···?" सुषमा ने यह प्रश्न किया, और राही जी को यह प्रश्न विचित्र सा लगा, वे बोले—"बहन। मै तुम्हे हमेशा से अपनी बहन समझता आया हूँ, सुषमा, लेकिन···लेकिन तुम यह सवाल क्यो कर रही हो····?" वे कुछ परेशान नजर आए?

"ऐसे ही···!" सुषमा बोली—लेकिन आप मेरे बारे में इतने चिन्तित क्यो है···!"

"एक भाई के नाते···!" वे बोले—"कोई भी भाई अपनी बहन को सुखी देखना चाहता है। यही उसकी सबसे बडी इच्छा हो सकती है!

सुषमा ने फिर प्रश्न किया—"क्या आपका यह विश्वास अटल है कि मै सुरेन्द्र के जीवन मे जाकर सुखी हो जाऊँगी?"

'अवश्य" राही जी विश्वास पूर्ण शब्दो में बोले—"मुझे पूरा विश्वास है। तुम दोनो एक दूसरे का आदर करते हो, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ।"

"यह आपका भ्रम है···" इतना कहते-कहते सुषमा का स्वर भर्रा गया, "यह सब एक तमाशा है···और कुछ नही··! मै आपसे पूछती हूँ, क्या आपने मुझे इस योग्य रहने दिया है कि मैं सुरेन्द्र को अपना मुँह दिखा सकूँ···?"

राही जी आश्चर्य चकित हो उसकी ओर देखते रहे ! फिर धीरे से बोले—"क्या मतलब है तुम्हारा···मै समझा नही···"

"मैं सब समझती हूँ और आप भी अनजान नही हैं राही जी···" वह बोली—"अब तक बहुत कुछ हो चुका—अब मैं आपसे क्षमा चाहती हू···?"

"कैसी क्षमा···?" राही जी ने फिर आश्चर्य प्रकट किया—"मुझसे इतनी विरक्त हो, इसका क्या कारण है···?"

"आप कारण पूछते हैं मुझसे···?" वह ऊँचे स्वरो में बोली—"क्या आप इतने अनजान है और मुझे इतना अधिक मूर्ख समझ रखा है कि मै कुछ भी नही जानती····! आप खुद समझ सकते है ··!"

"मेरी समझ में तो कुछ नही आता"···राही जी के चेहरे का रग उड़ गया था, उनके स्वर काँपने लगे थे। सुषमा कह रही थी—

"राही जी आप कवि और लेखक बन सकते हैं। पत्रो के सम्पादक बन सकते हैं, लेकिन एक स्त्री के मन की गहराईयो को नही पहुँच सकते, उसके मन की थाह नही पा सकते। छल, कपट और मिथ्या बातो से भले ही उसे मूर्ख बना दें, तमाशा बना दे, पर उसे जीत नही सकते···· क्या यही है आपका आदर्श····?"

इस बार राही जी मौन रहे। सुषमा ओढनी के आँचल से अपनी आँखो के आँसू पोंछने लगी। उसके मन में न जाने कितना दु.ख, कितना क्षोभ और कितने प्रतिकार और प्रतिशोध के भाव थे ! राही जी, जिन का वह सदा से आदर करती आई थी, जिनके एक इशारे पर उसने अपनी जिन्दगी का रुख ही मोड दिया था, उस दिन उन्ही राही जी के प्रति उसके मन में कुछ इतनी घृणा उत्पन्न हो गई थी कि अन्त में उस ने कहा—"राही जी मैं आपसे निवेदन करूँगी कि आप अपनी ज़बान से सुरेन्द्र का पवित्र नाम अष्ट न करे। वे अब आपसे और मुझसे बहुत दूर हट चुके हैं। मैं अब उन्हें भूल जाना चाहती हूँ। वे मुझ से और भी

दूर चले जाएँ इतनी दूर कि फिर मुझे भूल कर भी उनका ख्याल न आए '" और फिर उसने कहा—"राही जी, यदि अब आप मुझे सच-मुच अपनी बहन समझने लगे हैं, तो कृपया हमारे यहाँ आना बद कर दे। कुछ मेरी इज्जत का ख्याल कीजिये, मै तो अब किसी को मुँह दिखाने के योग्य भी नही रही, मुझ पर दया कीजिये। आप अब इस नगर से चले जाँय। मैं अब लोगो की आवाजे और अधिक नही सह सकती ··!" और फिर वह दोनो हाथो से अपना मुँह छिपा कर रोने लगी·· !

× × ×

शायद इन्ही बातो की एक प्रतिक्रिया थी, कि राही जी सुरेन्द्र से मिले, वे काफी शराब पिये से मालूम देते थे। वे शायद शराब के नशे मे डूबकर अपने मन की उस पीडा को, जो वर्ष भर से उनके मन मे पल रही थी, और जो सुषमा की बातों से अचानक तीव्र हो उठी थी; दवा नही पाये थे। उनके चेहरे पर एक उदासी छाई हुई थी और आँखो से व्यथा टपक रही थी। वे रोगियो की भाँति बहुत धीरे-धीरे और सँभल कर बाते कर रहे थे ! उनका कहना था—"भाई सुरेन्द्र, मैं कल यहाँ से जा रहा हूँ। मुझे दु ख है, मै जो चाहता था वह न हो सका। तुम सुषमा को भूल जाओ ! वह अपने आप को तुमसे बहुत दूर समझती है। मेरे द्वारा वह एक दिन मूर्ख बनी थी। अब वह अपने आपको इस योग्य नही समझती कि तुम्हारी हो सके। पर वह तुम्हे प्यार करती है। तुम्हारा आदर है उसके मन में, उसमे आत्महीनता के भाव पैदा हो गये हैं। मैं ने उसे बहुत समझाया, पर वह कुछ भी नही समझ सकी ; अब मुझसे भी नाराज़ हो गई है। शायद मेरा और उसका सम्बन्ध अब हमेशा के लिए टूट गया है। मै दोबारा अब इस नगर मे कभी नही आऊँगा !" उन्होने एक दीर्घ नि.श्वास छोडा।

सुरेन्द्र ने कहा—"राही जी मेरे कारण आपके मन को चोट पहुँची मै सब जानता हूँ। आपने मेरे प्रति जो उदारता बरती थी, मै उसके

लिये आभारी हूँ। मै ने ही सुषमा को सारी बाते खोल कर बताई थी। और सारी बाते जान-समझ कर ही शायद वह आप पर नाराज हुई। मैं इसके लिये आपसे क्षमा माँगता हूँ। लेकिन शायद मैंने सारी बातो पर से आवरण हटा कर कुछ बुरा नही किया। मै चाहता था भ्रम के पर्दे हट जाएँ और सारा खेल समाप्त हो जाए··!"

राही जी धीरे से बोले—"यह तुमने अच्छा ही किया····!"

"राही जी···!" सुरेन्द्र बोला—"आप शादी क्यो नही कर लेते। कोई अच्छा साथी चुन कर जीवन सुख से बिताईये···!"

वे चुप रहे। उनके मौन के पीछे भी मानो अभी कुछ रहस्य था। शायद कोई कहानी शेष रह गई थी। सुरेन्द्र कहता गया—"राही जी हमारे जैसे और भी न जाने कितने मूर्ख होगे, जो अनजाने ही कल्पनाओ की दुनियाँ मे विचरते रहते है। व्यवहारिक जीवन मे भी वे कल्पना ही को स्थान देते हं और उन्हे पग-पग पर मुँह की खानी पडती है। निराश हो आँसू बहाने पडते है। और कभी पागलो की तरह, आवारों की तरह भटकते रहना पडता है। इसे हम जीवन नही कह सकते···।'

"हाँ बधु···!" वे बोले—"बाहर से हम कुछ और दिखाई देते हैं और अन्दर से हमारा रूप कुछ और है। हम ससार के सब से बडे अभागे जीव हैं।" कहते हुए उन्होने सुरेन्द्र को छाती से लगा लिया।

"अच्छा विदा···!" वे कहते गये। "अब शायद मै यहाँ फिर कभी न आ सकूँ। लेकिन जब तुम दिल्ली आओगे, मुझसे अवश्य मिलना···भूल न जाना, मै यदि पत्र भेजूँ तो उत्तर अवश्य देना। बेरुखी मत बरतना। तुम मुझे सदा याद रहोगे···!" फिर उन्होने सुरेन्द्र से स्नेह पूर्वक हाथ मिलाया और चले गये।

वह उन्हे जाता देखता रहा और मन मे सोचता रहा, कैसा विचित्र आदमी है यह भी। कभी द्वेष और कभी स्नेह, बस इसी की यह एक कहानी गढ पाया। वह भी कितनी छोटी और कितनी अधूरी···!

और उसने अनुभव किया—कोई भी अनहोनी बात यही आकर शेष हो जाया करती है, इससे आगे बस केवल निराशा ही की कालिमा है···। इस पर अधिक सोचना व्यर्थ है ···।

३७

पारो कुछ दिनो के बाद बिल्कुल स्वस्थ हो गई। वह पहले की तरह हँसती, गाती और चहकती दिखाई देने लगी। उसका रूप और भी निखर आया था। चाद भी मानो उसे देखकर शरमाता था। ब्याह की तैयारियाँ होने लगी और वह शुभ दिन भी आ गया, जब शहनाई बजी, ब्याह के गीत गाये गये और पारो सुरेन्द्र के घर की रानी बन गई।

उस जीवन सहचरी मे सुरेन्द्र ने सब कुछ पा लेने का प्रयत्न किया, जिसकी उसे हमेशा से तलाश थी, वही आदर, स्नेह व प्यार···उसे पारो मे सब कुछ मिला, पर एक वस्तु नही मिली, वह थी कला। यदि पारो को साहित्य से रुचि होती, वह कला और साहित्य पर उससे बाते कर सकती, तो उसे और भी खुशी होती। किन्तु जीवन मे शायद हर समय साहित्य ही की आवश्यकता नही होती। जीवन मे केवल कला और दर्शन ही नही है, और भी बहुत कुछ है, जिन्हे दर्शन और कला ही की तरह सूक्ष्म अनुभूतियो द्वारा जाना जा सकता है। और वह है, प्रेम, प्रीत और श्रद्धा ···! ये सब उसे भरपूर मिले थे। इसलिए वह एक हद तक सन्तुष्ट था। वह पारो को प्यार करता था। कभी कोई कडवी तीखी बात मुँह से नही निकालता था। कभी वह अपनी ओर से कोई ऐसी बात नही होने देता था, जिससे कि उसके मन में कोई शंका, दुःख या क्षोभ उत्पन्न हो। पारो के आने से उसके घर की दशा बदल गई थी। माँ का

कहना था हमारे घर लक्ष्मी ने चरण धरे हैं। क्योकि उन्ही दिनो, सुरेन्द्र को एक मिल मे दो सौ से लेकर, चार सौ तक की एक नौकरी मिल गई थी। अब उसकी आर्थिक चिन्ता एक तरह से कम हो गई थी।

चिन्ताओ से मुक्त जीवन मे, वह अतीत की बहुत सारी बाते भूलने लगा। उसने स्वयं यह प्रयत्न किया था कि वह पिछली बाते भूल जाए। अतीत मे क्या रखा था, केवल निराशा और वेदना। अतीत से जो अनुभव उसने प्राप्त किया था, उसी द्वारा आज उसने अपने घर को एक स्वर्ग बना लिया था। अचानक उन्ही दिनो उसे राही जी का कलकत्ता से भेजा हुआ एक पत्र मिला। राही जी उन दिनो कलकत्ते मे थे। उस पत्र से उनकी मनोदशा का पता चलता था कि शायद कलकत्ते मे आवारो की का सा जीवन बिता रहे थे। शराब पीते थे और वेश्यालयो के चक्कर काटते थे। कविताएँ रचते थे और मित्रो मे बैठ कर, जो वास्तव मे उनके मित्र नही थे, तमाशा बनते थे। अपने पत्र मे उन्होने एक जगह लिखा था,—'भाई यदि हो सके तो सुषमा से फिर मिलो। उसे अपनी बना लेने मे कोई कसर उठा न रखो। वह तुम्हे प्यार करती है।'

सुरेन्द्र ने सारी चिट्ठी पढी और अपने फाईल मे रख दी।

एक महीने के बाद राही जी की फिर एक चिट्ठी आई। अब वे पटना मे थे। उनके पत्र से पता चला कि अब वे पहले से कुछ अधिक विरक्त थे, और दु खपूर्ण जीवन बिता रहे थे। इस पत्र मे उन्होने अपने पहले पत्र का उत्तर नही मिलने की शिकायत की थी। साथ-साथ उन्होने यह भी लिखा था कि वे कुछ अस्वस्थ है। अत मे फिर उन्होने सुषमा की चर्चा की थी। उन्होने लिखा था—

"मैने अभी तक सुषमा को पत्र नहीं लिखा। मै अब उसे बिल्कुल भूल जाना चाहता हूँ! मेरा मन ही नही होता कि उसे कोई पत्र डालूँ। लेकिन यदि तुम चाहोगे तो मैं तुम्हारी खातिर अवश्य ही कोई पत्र लिखूँगा। तुम दोनो मिल बैठोगे, तो मुझे खुशी होगी।" इस पत्र का

उत्तर उन्होने बनारस के पते पर माँगा था। क्योकि अब वे पटना से बनारस प्रस्थान कर रहे थे।

सुरेन्द्र ने उनके उस पत्र का उत्तर बनारस के पते पर दे दिया। उस पत्र मे उसने उन्हे पारो के साथ अपने ब्याह की सूचना भेज दी। साथ यह भी ताकीद कर दी, अब वे व्यर्थ मे उससे सुषमा की चर्चा न किया करे। सुषमा उसके लिए अब किसी खडहर की मूर्ति के समान है जिसे पूजा नही जाता। पूजा तो उस प्रतिमा की होती है, जो मन्दिर मे स्थापित हो और चाहे वह जैसी भी हो···।"

फिर इसके बाद दो महीने तक राही जी का कोई पत्र नही आया। इन [redacted] महीने मे वे कहाँ रहे, कैसे रहे, कहाँ-कहाँ की खाक छानी और क्या किया, कुछ पता नही चला। दो महीनो के बाद उसे अचानक अपने एक मित्र सम्पादक का पत्र मिला, जिसमे राही जी की भी चर्चा थी। उनके पत्र से पता चला, राही जी बनारस और लखनऊ होते हुए फिर दिल्ली पहुंच गए थे। वे बहुत अधिक मद्य पान करने लगे थे। उनका स्वास्थ्य और बिगडता गया और एक दिन पागल हो गए। इसी पागल पन मे वे नग-धडग गली-कूचो का चक्कर काटते रहते थे। और एक दिन चावडी बाजार की एक गली मे मुर्दा पाये गए।

सुरेन्द्र को यह खबर सुनकर दु ख हुआ। उसका मन करुणा से भर आया, और देर तक उनकी बाते याद करता रहा। उनका जीवन कितना विषाद ग्रस्त था, कितना शून्य। उसने निश्चय किया, वह राही जी की याद मे एक साहित्य गोष्ठी बुलायेगा, हो सकेगा तो वह सुषमा को निमंत्रित करेगा। उन सब पर यह बतलायेगा कि राही जी हमारी श्रद्धा के पात्र है। वे एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होने अपने पास से लोगो को बहुत कुछ देने का प्रयत्न किया, पर आप किसी से कुछ भी न पा सके। सारी उम्र वे भटकते रहे, एक शान्ति की खोज मे, एक जीवन सहचरी की तलाश मे, स्वयं अपने जीवन को सफल बनाने के लिए, और हमेशा

निराशा ही उनके पल्ले पडी। वे अपनी कुछ आदतो के कारण बदनाम थे। वे हमेशा गलतियाँ करते रहे और धोखा खाते रहे। वे लोगो को हँसाते रहे, और आप रोते रहे।

वे एक बागी और क्रान्तिकारी कवि थे, लेकिन देवदास बनकर मर। और उस जीनत बेगम की गली मे जिसने वेश्या होते हुए भी कभी उससे प्यार किया था और आँखो मे आँसू भर कर उन्हे शराब न पीने की कसम दिलाई थी। उसी जीनत की चर्चा करते हुए राही जी कहा करते थे—'नारी के स्वभाव को समझना और उसकी गहराई तक जाना बहुत कठिन है। कभी वह वेश्या होकर भी किसी पतिव्रता स्त्री से कही अधिक वफादार और शुभ चिन्तक होती है, देवियों की भाँति अपना सर्वस्व न्यौछावर करती रहती है। और कभी गृहणी बन कर भी वह अपने अच्छे पति की आँखो मे धूल झोकने से नही हिचकिचाती। कई प्रकार के कुकर्म करती है, और गंदगी फैलानी है। घर उनके लिए कैद होती है और बाहर की हवा उन्हें सदैव प्रफुल्लता प्रदान करती है।'

राही जी भी इस प्रकार उसके मन मे अपनी एक याद छोड गये। उसे मालूम नही था कि राही जी को भाई कहने वाली सुषमा को इस घटना का पता चला या नही। और यदि पता चला भी तो इसका उस पर क्या प्रभाव पडा.....?

फिर जिस दिन उसने राही जी की याद मे एक साहित्य गोष्ठी की, सुषमा को भी निमंत्रण भेजा। पर वह नही आई। उस गोष्ठी मे प्रेमी जी भी नही पधारे। उसने लगभग पाँच महीनो से सुषमा को नही देखा था। वह कैसी थी, क्या कर रही थी; इसकी भी उसे कोई खबर नही थी। हाँ, उडती हुई यह खबर सुनी थी। प्रेमी जी का आजकल उसके यहाँ काफी आना-जाना है। सुषमा का पिता भी कुछ बीमार रहता है। प्रेमी जी शायद माया से उसकी कुछ सहायता भी कर रहे हैं। पर प्रेमी जी कभी किसी से इसकी चर्चा नही करते थे, और दिन बीतते जा रहे थे, दिन बीतते गए।

*

३८
●●●

कैफे मे·····!

उपन्यास बस यही शेष हो जाता था। वह काफी हाऊस मे बैठा सोच रहा था, यह कहानी आँसुओ से लिखी गई थी। और उसकी पाडु-लिपी तीन सौ रुपए मे बनवारी लाल जी मर्चेन्ट के हाथ बेच दी गई थी। सेठ जी स्वय इस पुस्तक के लेखक नही। उन्हे लेखक बनने का शौक है, और यश प्राप्त करने की लालसा भी। लक्ष्मी की तो उन पर अपार कृपा है ही, लक्ष्मी द्वारा उन्होने सरस्वती की दया भी प्राप्त कर ली है। उपन्यास का वास्तविक लेखक, जो शायद जोवित रह कर भी मर चुका है, वह इस उपन्यास से, जिसके पात्रो के वास्तविक नाम बदल दिये गए थे, अपना कोई नाता नही रखना चाहता था। उसे पहले स्वप्न मे भी यह सन्देह नही था, कि इस कहानी का ऐसा करुण अत होगा! कई जीवन की धाराएँ बदलती जाएँगी, और उपन्यास के चित्रो की रेखाएँ मोड खाती जाएँगी, कहानी बदलती जायेगी। एक हरिचरन कौर मिथ्या अभिमान और दभ में हुँकारती रहेगी, और एक सुषमा, तिरस्कार, घृणा और क्षोभ से भरा करुण जीवन बिताने पर मजबूर होगी, एक राही जी पागल होकर मारे-मारे फिरेगे, और वेश्यालय की किसी गली मे पड़े-पडे प्राण त्याग देगे, और एक सुरेन्द्र··· वही तो उस समय काफी हाऊस मे बैठा अतीत की कहानी अपने मन मे दोहरा रहा था। बीती हुई सारी घटनाए उसकी आँखो के सामने घूम रही थी। वह चाहता था इस कहानी को भूल जाए। अब इस कहानी से उसका सम्बन्ध नही रहा। प्रब वह एक नई दुनिया मे रह रहा है। फिर भी उसे कुछ याद आ रहा था, और वह याद उसके मन को कुरेद रही थी!

अभी कुछ महीने पहले उसे सुषमा के पिता के मरने की खबर मिली थी। सुषमा की असमर्थता को वह जानता था और सोच रहा था, वह बेचारी बडी मुसीबत मे होगी। पिता की छाया सिर से उठ जाने के बाद अब वह सोचने-समझने के लिए अकेली रह गई होगी। उसके सामने बहत सारी समस्याएँ होगी। उस दिन वह सुषमा के पास शोक प्रकट करने के लिए जाना चाहता था, पर पारो की तबियत खराब हो जाने के कारण न जा सका। इस प्रकार दस-पन्द्रह दिन बीत गये।

एक दिन जब वह वहाँ गया, उसने देखा घर के दरवाजे बन्द थे। पडोस से पूछने पर पता चला, वह अपनी बडी बहन के पास पटना चली गई है। उसने पूछा—"कब तक लौट आएगी···!"

पडोस वालो ने कहा—"कुछ पता नही···।"

उनसे उसे यह भी पता चला कि सुषमा के पिता के मरने से दस पन्द्रह दिन पहले, उसका छोटा भाई घर से काफी रुपए चुरा कर कही भाग गया था।

एक महीने बाद उसे सुषमा के घर लौटने की सूचना मिली। यह समाचार पाकर वह उसी दिन उससे मिलने चला गया। उसे यह भी पता चला कि वह बीमार है।

वहाँ पहुंच कर उसने देखा, सुषमा उसी कमरे मे लेटी हुई थी, जहाँ उसका स्केच टँगा हुआ था। जहाँ एक बार पहले भी वह उस से भेट कर चुका था। यह वही कमरा था, जहाँ उसने उसे बैठ कर साहित्य सृजन की राह दी थी। उस कमरे की प्रत्येक वस्तु उसे जानी-पहचानी सी जान पडती थी। पिछले डेढ वर्षो मे उसमें कोई परिवर्तन नही आया था। वही, उसी कमरे मे सुषमा लेटी हुई थी। आँखे बद किये, शायद नीद मे खोई हुई सी या विचारो मे तल्लीन। उसके चेहरे का रङ्ग स्याह नजर आता था और आँखो के हलके और भी अधिक काले। वह चित लेटी हुई थी, उसकी साँस तीव्र गति से चल रही थी। उसके निकट

पडोस की वही लडकी बैठी हुई थी, जिसे उसने एक सुषमा की वाटिका से फूल चुनते हुए देखा था। वह लडकी अब कुछ सयानी दिखाई दे रही थी। उसे देखती ही वह सुषमा का हाथ हिलाते हुए धीरे से बोली—"दीदी···दीदी वे आये हैं ··!"

"कौन···!" सुषमा ने आँखें बन्द किये-किये ही पूछा—"कौन आये हैं···?"

"मै हू सुषमा···!" सुरेन्द्र के मुँह से निकला—"मै हूँ सुरेन्द्र···!"

झट उसने आँखे खोली। जैसे वह चौक सी गई हो, और फटी-फटी आँखो से उसकी ओर देखने लगी। कुछ क्षण उसकी यही दशा रही। फिर वह अपने अस्त-व्यस्त वस्त्रो को ठीक करके उठ कर बैठ जाने का प्रयत्न करने लगी। पर सफल न हो सकी। छोटी लड़की ने सहारा देना चाहा, लेकिन यह उसकी शक्ति से बाहर था।

सुरेन्द्र उसकी ओर झुकता हुआ सा बोला—"कोई बात नही, लेटी रहो···।" वह पास रखी एक कुर्सी खीच कर उसके निकट बैठ गया। लडकी ने उसके शरीर पर वक्ष तक एक मैली सी चादर फैला दी और फिर चुप-चाप कमरे से बाहर निकल गई।

उसने प्रश्न किया—"कैसी हो सुषमा···?" तुम बीमार थी, और मुझे तुमने खबर तक न भिजवाई! तुमने मुझे इतना पराया समझ लिया···!"

वह कुछ नही बोली। उसके चेहरे पर निराशा थी, और आँखो मे आँसू, जो इतनी बात के फल स्वरूप बाढ की तरह उमड पडे।

"क्यो, रोती क्यो हो···?" वह बोला—"नही, दुखों से घबरा कर रोना नही चाहिये। मै जानता हूँ तुम पर एक के बाद कई दुखो के पहाड टूटे। पिता का देहान्त हो गया। भाई घर से भाग गया और तुम···तुम बीमार हो···!" उसने देखा सुषमा ने अपने दोनो हाथो से अपना चेहरा

छिपा लिया और फूट-फूट कर रोने लगी। उसने अनुभव किया, जैसे दुःख की चर्चा से उसके मन मे और ठेस लगती जा रही है। वह चुप हो गया। सुषमा रोती रही। उसने सोचा इसे रोने दिया जाए ताकि इसके मन की पूरी भडास निकल जाये। वह माथा झुकाए मौन बैठा रहा। सुषमा कुछ देर तक उसी प्रकार रोती रही, और फिर चादर के छोर से आँसू पोछती हुई वह धीरे से बोली—"आप ने स्वयं आने का कष्ट उठाया, आपके दर्शन हुए, मै किस मुँह से धन्यवाद कहूँ···?"

उसने कहा—"मै पहले भी एक बार आया था सुषमा ··लेकिन पता चला तुम पटना गई हुई थी।"

सुषमा बोली—"हाँ, मै पटना ही गई थी ··।"

उसने पूछा—"तुम्हारे पिता कितने दिन बीमार रहे···?"

"बस एक दिन और एक रात, और दूसरे दिन चटपट हो गये···" सुषमा की आँखे फिर भर आईं।

"जैसी भगवान की इच्छा ··।" वह धीरे से बोला—"वृद्ध शरीर था, बीमारी मौत का बहाना बन गई। लेकिन तुम्हारे रोने से अब वे लौट नही आएँगे, अधिक मत रोओ·· !"

उसके मुँह से निकला—"काश मैं भी उन्ही के पास चली जाती···!"

"क्यो···?" सुरेन्द्र ने प्रश्न किया। "तुम इतनी निराश क्यो हो ··तुम पिता के मरने का बहुत अधिक दुःख मना रही हो, इसीलिए तो बीमार हो। आखिर तुम मरना क्यो चाहती हो। क्या मर कर किसी अच्छी दुनिया में चली जाओगी ··?"

"मै कहाँ जाऊँगी····" वह भर्राये हुए स्वरो मे बोली—"मेरी जगह तो नर्क में है···।"

"छोडो इन बातो को · " सुरेन्द्र ने बात का रुख बदलते हुए कहा—"यह कहो तुम कोई दवा इत्यादि खा रही हो या नही···?"

वह कुछ लापरवाही से बोली—"दवा खाने से क्या होगा · ?"

"खूब···!"सुरेन्द्र मुस्करा दिया—"क्यो क्या, बीमारी होने पर दवा नही खाई जाती क्या···?" उसका हाथ छूता हुआ बोला—"तुम्हे तो काफी बुखार है ।"

"मेरे रोग की कोई दवा नही है···।" कहते हुए उसने अपना चेहरा दूसरी ओर घुमा लिया ।

वह कहने लगा—"मैने तो तुम्हे इतना निरुत्साह, इतना निराश कभी नही देखा था सुषमा—अब तुम्हे क्या हो गया है ··?"

सुषमा ने दुबारा मुँह फेर कर उसकी ओर देखा, फिर आँसू उसकी आँखो से निकल कर उसकी गालों पर बह रहे थे । इस बार वह स्वय अपने रूमाल से उसके आँसू पोछने लगा और बोला—"जो होना था, सो हो गया । कुछ भी तो अपने बस मे नही था । अब गडे मुर्दे उखाडने से फायदा···?" फिर वह पूछने लगा—"तुम बीमार कब से पडी···क्या पटना ही मे बीमार हो गई थी ! तब तो तुम्हे वही, बहन के पास रह जाना चाहिए था । यहाँ न तुम्हे कोई देखने वाला है, न कोई तुम्हारी सेवा करने वाला···।"

सुषमा ने धीरे से कहा—'अब मेरा इस दुनिया मे कोई भी नही है···मै अकेली हूँ···!"

"क्यो···?" वह फिर बोला—"ऐसी निराशाजनक बाते न करो···यह दुनिया तुम्हारी है और इस दुनिया का सब-कुछ तुम्हारा है···।"

"नही !" सुषमा फिर निराशापूर्ण स्वरो मे बोली—"न यह

दुनिया मेरे लिये है न, इस दुनिया मे मेरा कुछ है। मै सच कहती हूँ, मेरा इस दुनिया मे कोई नही। सब मुझ से घृणा करते हैं, और मे स्वय भी किसी को मुँह दिखाने के काबिल नही·· ?"

उसने पूछा—"क्यो तुमने ऐसा कौन सा पाप किया है··· ?"

"पाप ··!" सुपमा ने यह शब्द दोहराया—"मैने सचमुच पाप किया है। मै अब वह नही रही जो आप मुझे पहले पाते थे।"

वह निश्चल भाव से बोला—"मै तो अब भी तुम्हे वैसा ही समझता हूँ···क्या हुआ यदि हम एक नही हो सक तो···?"

सुपमा की आँखे फिर आँसू उगलने लगी। उसकी नजरे ऊपर छत की ओर गड गईं थी, और अतीत की घटनाएँ चित्र बन कर, जैसे उसकी आँखो के सामने घूमने लगी थी। सुरेन्द्र की नजरे भी दीवार से लटके सुपमा के स्केच पर गड गईं। वर्षो पहले उसने उसे देखा। चित्र वही था, उसकी रूप-रेखा वही थी·· वही आँखे जिनमे एक रहस्यमयी चमक थी, वही होठ थे जो मुस्कराहटो के फूल बिखेर देना चाहते थे। पर सुपमा बदल गई थी···। हाँ, सुपमा बदल गई थी। अनजाने ही बदल गई थी। बिल्कुल अकारण····लेकिन नही, उसे लग रहा था सुपमा बिल्कुल नही बदली। वह तो वैसी ही थी, जैसे कि पहले। बदला था समय। समय मे अवश्य एक परिवर्तन आ गया था। शायद एक युग बदल गया था। लेकिन दुनिया तो नही बदली थी। दुनिया के सब लोग नही बदले थे। तब सुपमा कैसे बदल सकती थी। कुछ देर तक वह विचारो मे खोया रहा, और फिर बोला—"भाई का पता चला···· वह कहाँ है···?"

वह धीरे से बोली—"कुछ पता नही ··।"

"तुम दूध, बार्ली इत्यादि कुछ खाती भी हो या नही···?" सुरेन्द्र

ने पूछा, और फिर आप ही कहने लगा—"पर यहाँ कौन तुम्हे यह सब चीजे ला कर और बनाकर देता होगा ·· ? .कोई भी तो नही···! यदि तुम मेरी एक बात मानो, हमारे घर चली चलो···वहाँ पारो तुम्हारी सेवा करेगी तुम उसकी, और वह तुम्हारी सहेली है, तुम एक दूसरे से परिचित हो ··तुम कभी एक साथ स्कूल मे पढा करती थी न ··?"

हाँ···!" उसने सिर हिला दिया।

"हाँ ! तो चलो हमारे यहाँ चली चलो···" उसने अनुरोध किया—"जब स्वस्थ हो जाओगी तब घर लौट आना !"

वह चुप रही।

क्या सोचने लगी···!" उसका हाथ डुलाते हुए वह बोला—"इसमे सोचने की क्या बात है···? देखो पारो एक बिल्कुल सीधी-सादी स्त्री है···। वह न कभी मुझ पर कुछ शक कर सकती है, और न मेरी इच्छाओ के विरुद्ध कुछ सोच सकती है। उसे मुझ पर पूरा विश्वास है · ।"

"मै जानती हूँ···!" सुपमा अति क्षीण स्वरो मे बोली—"वह देवी है · देवी ·· !

"तो चलोगी न मेरे साथ···!" वह बोला—"मै मोटर का इन्तजाम करता हूँ···।"

सुपमा ने उसका एक हाथ, अपने हाथ मे ले लिया, और फिर फूट-फूट कर रोने लगी।

"क्यो रोती हो इतना" सात्वना भरे शब्दो मे वह कहने लगा—"रोने से दुखो का अत नही हो जाता।"

वह रोती रही।

सुरेन्द्र फिर बोला—"जीवन के बीते दिनो की यादे हमेशा कई

अभागो को रुलाती रहती है। रोना तो मै भी चाहता हूँ। लेकिन तुम्हारे स्वरो मे स्वर मिला कर नही, कही एकान्त बैठकर जहाँ मेरे आँसुओ को कोई न देख सके। जिन आँखो के मोतियो पर किसी की नजर पड जाए, उनका मूल्य घट जाता है···।"

"हाँ···सच है···।" सुपमा के मुँह से निकला—"यह तो मूर्खता के आँसू हैं, इनका क्या मूल्य हो सकता है···?"

"तुम मेरी बात मानो···मेरे साथ घर चली चलो···।" उसने फिर अनुरोध किया।

"नही, मै नही जा सकती···" सुपमा फिर रोने लगी।

"क्यो ? क्या तुम्हे किसी बात का डर है, चिन्ता है, क्यो नही जा सकती··· ?" उसने एक साथ कई प्रश्न कर दिये।

सुपमा ने एक हाथ से अपने पेट पर से चादर एक ओर सरका दी और उभरे हुए पेट की ओर सकेत करती हुई भर्राये हुये स्वरो मे बोली—"इसे लेकर कहाँ जाऊँ·· इस पेट की गलाजत को लेकर···।" उसने अपना मुँह दूसरी ओर घुमा लिया और फूट-फूट कर रोने लगी—"मै मरना चाहती हूँ। मै आत्महत्या कर लेना चाहती हूँ·· आप मुझे जहर ला दीजिये···मै जहर खाकर मर जाऊँगी। हाय ! अब मै किसी को मुँह दिखाने के काबिल नही रही !"

सुरेन्द्र सन्न और स्तम्भित सा, आँखे फाडे उसके उभरे हुए पेट को देखने लगा। जैसे उसने ऊँची चट्टान पर खडे होकर कोई गहरी तारीक खाई देख ली हो, वह खाई जिसमे से सड रही लाशो की दुर्गन्ध उठ रही हो···उसने भी अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया। उसके हृदय की गति तीव्र हो उठी थी। उसकी आँखो तले अँधेरा सा छा रहा था। वह सोच रहा था, क्या बोले ! क्या शेष रह गया है अब बोलने के लिए···? चाँद जब अपनी सारी कलाओ के साथ पूर्ण होकर मुस्कराया

भी तो केवल अपने कलंक को दर्शाने के लिए''''उसके बारे क्या बोला जाए'''! उस कलंकिनी की सिसकियाँ उसके कानो मे गूँज रही थी'''!

काफी देर तक वह इसी स्थिति मे रहा। सुषमा कुछ देर रोकर चुप हो गई। कमरे मे बिल्कुल मौन छा गया, जैसे किसी बहुत बडे तूफान के बाद एक रहस्यमयी सन्नाटा सा छा जाया करता है। इस खामोशी को सुषमा के स्वरो ने झिझोडा। वह कहने लगी—"बहुत दु ख हुआ न आपको यह सब देख कर। न जाने कितना क्षोभ, कितनी ग्लानि हुई होगी, आपको मेरी इस करतूत पर'''मै सबके लिए घृणा की पात्री बन चुकी हूँ'''कौन मुझे मुँह लगाएगा, कौन मेरी सेवा करेगा'''?"

वह सब कुछ सुनता रहा'''।

सुषमा कहती गई—"इसी कारण न तो मै बहन के पास रह सकी और न अब आपके यहाँ जा सकती हूँ'''कौन मेरी सूरत देखना पसन्द करेगा'''" वह फटी-फटी आँखो से उसकी ओर देखने लगी—"आप बिल्कुल चुप है'''आप ने मेरा सही रूप देख लिया न'' ? मै कितनी कुरुप हूँ, कितनी नीच'''!" उसने फिर अपने दोनो हाथो से अपना चेहरा ढाँप लिया।

"हाँ, तुम विवेकहीन थी सुषमा'''" वह कुछ कठिनाई से बोल पाया—"और उसी की सजा तुम्हे मिल गई'''मुझे तो तुम अब भी वैसी ही नजर आती हो, जैसा कि मैने तुम्हे पहले पाया था'' ।"

वह फिर फूट-फूट कर रोने लगी। सुरेन्द्र अपने स्थान से उठ कर खिडकी के निकट जा खडा हुआ। उस खिडकी के निकट, जहाँ से बाहर उद्यान मे कुछ आम और लीची के घने पेडो के अतिरिक्त केले के पेडो का एक वृन्द खडा दिखाई देता था। जिनके नीचे हरी-हरी घास पर, घनी छाया बिखरी हुई थी, वहाँ बकरी के कुछ मेमने बैठे आराम कर रहे थे। और हवा से काँपने वाले पत्तो की सरसराहट, मानो उनके लिए

लोरियाँ बन गई थी। कुछ देर वहाँ खिडकी के पास खडा वह उन अबोध बच्चो को देखता रहा। कई प्रकार के भाव उसके मन मे उठे और अचानक वह सुषमा की ओर मुँह घुमा कर बोला—"मुझे यह बताओ सुषमा, तुमसे यह अन्याय किसने किया···?"

उसका रोना फिर थम गया था। उसकी सिसकियाँ रुक चुकी थी, और उसकी आँखे छत की ओर गड गई थी···जैसे कुछ सोच रही हो, अतीत की बाते, बीते दिनो की घटनाएँ···वह कुछ नही बोली···जैसे उसने कुछ सुना ही न हो···।

"बोलो···!" सुरेन्द्र ने फिर पूछा—"किसने तुम से यह अन्याय किया, मुझे उसका नाम बताओ···?"

"अन्याय···!" उसके मुँह से निकला। उसके होठ काँपे। उसने निचले होठ दाँतो तले दबा लिये ··।

"हाँ, हाँ तुमसे अन्याय किया···" वह फिर बोला—"वह कौन था, ऐसा मूर्ख जिसने तुमसे अन्याय किया। मै उस क्रूर पिशाच का नाम सुनना चाहता हूँ···!"

"नही···" जैसे वह काँप उठी हो, भयातुर दृष्टि से सुरेन्द्र की ओर देखती हुई बोली— 'मै उसका नाम नही लेना चाहती।"

"क्यो ··?" सुरेन्द्र फिर उसके निकट आकर कुर्सी पर बैठ गया।

वह उन्ही स्वरो मे बोली—"मै आप से कुछ भी नही कहना चाहती।"

तब सुरेन्द्र ने अपनी बात पर और अधिक जोर नही दिया। वह उसके मुँह की ओर देखता रहा। उसकी आँखो मे झाँकता रहा, एक सिमटी और सहमी हुई लज्जा को, उससे एक नजर उसके सारे विकृत शरीर को देखा और फिर बोला—"तुम मुझे कुछ बताओ या न बताओ, कुछ कहो या न कहो, लेकिन मै समझ गया यह किसकी करतूत है····

किसने तुम्हारी आँखो पर अज्ञान की पट्टी बाँधी और किसने तुम्हे विनाश के गढे मे फेका। किसने तुम्हे नष्ट-भ्रष्ट किया और किसने तुम्हे जिन्दा लाश बना दिया ··!" उसके स्वर ऊँचे हो गये। वह बोला—"वह क्रूर पिशाच प्रेमी है प्रेमी·· है न ··?"

सुषमा के सारे शरीर मे एक सिहरन सी दौड गई। उसके मुँह से एक हल्की सी चीख फूट पडी। उसने फिर अपना मुँह दोनो हाथो से ढाँप लिया···!

× × ×

औह सुरेन्द्र उन्ही प्रेमी जी से, साहित्य मे सेक्स की प्रधानता को मानने वाले प्रेमी जी, प्रादेशिक कहानियो के प्लाट चुरा कर उपन्यास और कहानियाँ लिखने वाले प्रेमी जी, जो यश के लोभी थे, जिनकी शक्ल भद्दी थी, और जो मेढक की तरह टर्राते हुए वार्ता करते थे, उन्ही महान व्यक्ति की प्रतीक्षा मे बैठा वह इतनी बाते सोच गया था। वह आज उनसे मिलकर उन्हे यह शुभ संदेश देना चाहता था कि अति शीघ्र वे एक बच्चे के बाप बनने जा रहे हैं। और उनका यह कर्तव्य है कि वे सुषमा की देखभाल करे। उसे किसी प्रकार का कष्ट न होने दे। बेहतर हो वे उसे यहाँ से कुछ दिनो के लिये कही बाहर ले जाएँ और कोर्ट-मैरेज भी वही कर ले। ताकि उनकी अधिक बदनामी न हो। चार-पाँच दिनो से वह उनकी तलाश मे था, लेकिन वे काबू मे नही आ रहे थे। उनके किसी मित्र से यह पता लगा था, कि आज वे संध्या के समय काफी हाउस मे एक पार्टी मे अवश्य आएंगे। अब न तो काफी हाउस मे वे ही नजर आ रहे है और न किसी पार्टी के चिन्ह। समय गुजरता जा रहा था।

*

*

३९

समय गुजरता जा रहा था। कैफे की घड़ी आठ बजा रही थी। वह सोचने लगा, क्या आज भी प्रेमी जी से उसकी भेंट नही हो सकेगी···?

कॉफी हाऊस लोगो से खचाखच भरा हुआ था। एक विचित्र सा वातावरण था, और अजीब सा हगामा। किसी के होठो पर मुस्कराहट खेल रही थी, और किसी के होठ प्यालियो को चूम रहे थे। कोई बाते कर रहा था, कोई हँस रहा था। किसी की आँखो में शरारत नाच रही थी, कोई दूर बैठा इशारो से बाते कर रहा था। अब वहाँ कई नये चेहरे दिखाई देने लगे थे, और वहाँ की प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक व्यक्ति अद्भुत सा लग रहा था। दबे घुटे स्वरो मे फुसफुसा कर बाते करने वाली शर्मीली लडकियाँ, उकाब जैसी आँखो वाली एडवास गर्ल्स, महिलाएँ, और तीस मारखाँ नजर आने वाले स्पोर्ट्स मैन, जो प्रत्येक युवती को ललचाई हुई नजरो से झाँकते हैं। कुछ व्यवसायी, फर्मों के मालिक, मिलो के ओहदेदार, जो शायद क्लब नही गए थे, सब ही वहाँ बैठे थे, और वे सब बडे विचित्र से नजर आ रहे थे! सब थे वहाँ; लेकिन एक प्रेमी जी नजर नही आ रहे थे। सुषमा का चेहरा उसकी आँखों के सामने घूम रहा था। वह रोता हुआ चेहरा, जिस पर पश्चाताप और ग्लानि की कालिमा छाई हुई थी। वह उसे भूल जाना चाहता था, और वहाँ के शोर मे गुम हो जाना चाहता था। बाते, फुसफुसाहटे, छूरी और काँटो की खटखट; बस यही तो था वहाँ का शोर, वहाँ की आवाजे। बैरे फुर्ती से काम कर रहे थे। कॉफी हाऊ। का मैनेजर, काउन्टर पर बैठा, एक मालाबारी नर्स से हँस-हँस कर बाते कर रहा था। देर से बैठा हुआ मदरासी परिवार उठकर जाने लगा था। एक महिला, उनमे

से, अपनी साड़ी का आँचल दुरुस्त कर रही थी, और एक लड़की अपनी वेणी मे टँके फूल को छू कर, यह अनुभव कर रही थी, कि फूल ठीक अपनी जगह पर सजा हुआ है या नही।

पारसी परिवार अब भी अपनी बातो मे लीन था। उनके कुछ और साथी वहाँ जुट गए थे। उनकी बातो का विषय कुछ गभीर मालूम नही होता था। क्योकि बाते करने वालो के चेहरो पर गभीरता नही थी। इसी प्रकार कैफे के वातावरण मे उसे जो कुछ भी नजर आ रहा था, उसमे वह अपने आप को भुला देने मे असमर्थ था। उसे याद आ रहा था, वह एक बार नही, कई बार सुषमा को लेकर इसी कैफे मे आया था। आज सुषमा उसके साथ नही थी। उसकी नजरे उस टेबुल और कुर्सी की तरफ घूम गई, जहाँ वे प्रथम बार आकर बैठे थे और घन्टो बातो मे खोए रहे थे। उस समय वहाँ एक गुजराती सज्जन दो युवतियो के साथ बैठे हुए थे। कुछ क्षण वह उसी तरफ देखता रहा'''उन युवतियो मे एक भी सुषमा नही थी। वे तो एक बहुत बडे और धनी घर के लोग थे, जिनकी मोटरो और साईकिलो की दुकाने है, जिनका बर्फ का कारखाना है। उन जैसे और भी कई लोग वहाँ बैठे हुए थे। उन्हे देख देखकर उसके मन मे विचित्र प्रकार के भाव उठ रहे थे। उनमे न जाने कितने प्रेमी जी थे और कितनी सुषमाएँ, जिनमे से किसी ने अपने धन दौलत की चमक दिखाई होगी, अपना मिथ्या वैभव प्रकट किया होगा, और कोई आँखे मूँदकर, उसके कधो पर सिर रखकर मुस्कराती हुई सी सो गई होगी। अज्ञानवश सुनहले सपनो की दुनिया मे खो गई होगी!

उसके मन में एक विद्रोह की भावना उठ रही थी—'तुम प्रेमी जी की नसल से सम्बध रखने वालो से मुझे नफरत है, घृणा है, क्योकि तुम्हारे जीवन मे कृत्रिमता है, तुम मिथ्या सभ्यता की आड लेकर बडे बनते हो। लेकिन तुम अति नीच हो, क्षुद्र हो। तुम्हारी साँसो से मुझे गंदगी की बू आती है। तुम्हारी भोली-भोली मुस्कराहटो मे विनाश के

जाल छिपे हुए हैं। तुम प्यार-प्रीत की बातें कर सकते हो, सिनेमा स्टुडियो और रेस कोर्स की चर्चा चला सकते हो, मंडी के भावों का रोना रो सकते हो, राजनीति पर बहुत कुछ बघार सकते हो, लेकिन शायद अक्ल की बात एक भी नहीं कर सकते। कितना विशाल अन्तर है, तुम्हारी बातों में और तुम्हारे व्यवहार में ? इसीलिये मुझे तुमसे नफरत है, तुम सब भूतों से···!

घड़ी उस समय लगभग सवा आठ बजा रही थी। प्रेमी जी के आने की अब कोई आशा नहीं थी। वह कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ। काउन्टर पर गया। बिल अदा किया। मैनेजर, जिसका कि उससे काफी परिचय था, वह उसे रेजगारी लौटाते हुए बोला—"मिस्टर सुरेन्द्र, आज आप बड़े उदास हैं, क्या बात है···?"

"यों ही ··!" वह रेजगारी समेटते हुए बोला—"आज मौसम ही कुछ खराब है···!"

"ओह · !" मैनेजर मुस्करा दिया।

वह कॉफी हाऊस से बाहर निकल आया। उस समय हल्की-हल्की फुहार बरस रही थी। वह सोचने लगा, अब घर कैसे जाया जाये···? बस-स्टैंड खाली पड़ा था। इत्तफाक की बात थी पास कोई टैक्सी भी नजर नहीं आ रही थी। वह पैदल चलने लगा। अचानक वह एक व्यक्ति से, जो छाता नीचा किये तेजी से चला आ रहा था, ठोकर खाते-खाते बचा, और जब उसने उस व्यक्ति को गौर से देखा तो पता चला, वे प्रेमी जी थे !

"ओह····! प्रेमी जी···मैं आप ही की तलाश में था !"

प्रेमी जी जैसे चौंके—"मेरी तलाश में···क्यों ! मेरी इतनी क्या जरूरत पड़ गई भाई····?"

"बहुत बड़ी जरूरत है आपकी···" वह बोला—"आइये इस दूकान

के बरामदे मे खडे हो कर बाते करें ··" वे दोनो एक बद दूकान के बरामदे मे जा खड़े हुए।

प्रेमी जी बोले—"कहिये क्या बात है · ?"

सुरेन्द्र कहने लगा—"आज कई दिनो से मै आपकी तलाश मे हूँ। कई बार मै आपके घर भी गया लेकिन भेट नही हो सकी। हाँ ··" वह कुछ रुककर बोला—"शायद आपको इसकी खबर नही होगी कि सुषमा पटना से घर लौट आई है और वह बीमार है···"

"कब···?" प्रेमी जी ने आश्चर्यपूर्ण स्वरो मे पूछा—"लेकिन उस का यहाँ वापस लौट आने का कोई विचार नही था।"

"यहाँ आने के सिवा उसके पास और कोई चारा नही था।" सुरेन्द्र दु खी स्वरो मे बोला—यहाँ न आती तो कहाँ जाती। वह यहाँ आई है, य भी आपकी खातिर। अब आपके सिवा, उसका और है भी कौन····?"

"मेरे सिवा···क्यो···?" वे जैसे चौके और कुछ विस्मय प्रक करते हुए बोले—"क्या मेरा उस से कोई विशेष सम्बध है···?"

"यह तो आप स्वय समझ सकते है···?" सुरेन्द्र शान्तिभाव बोलने की चेष्टा करते हुए बोला—"वह आपसे मिलना चाहती है···।

"अच्छा···।" प्रेमी जी बात टलती हुई देख कर बोले—"मैं सम निकाल कर एक दिन उसके पास आऊँगा ··। इन दिनो मै अपने नि कामो में बहुत व्यस्त हूँ। आप शायद जानते ही होगे, मैं एक प्र खोलने जा रहा हूँ। शीघ्र ही मै एक प्रकाशन आरम्भ करूँगा, वहां एक पत्रिका भी निकलेगी। आशा है मुझे आपका सहयोग भी प्राप्त ह रहेगा!"

"खैर, इस पर पीछे बाते होगी····" सुरेन्द्र उनके भावों को भाँ हुआ बोला—"मैं तो इस समय सुषमा की बात कर रहा था। प्रेमी इन दिनों सुषमा को आपकी सख्त जरूरत है। वह बड़े ही नाजुक स

से गुजर रही है। क्या आप नही जानते कि उसके दिन पूरे होने को हैं, और वह एक बच्चे को माँ बनने वाली है···!"

"क्या कहा आपने, वह एक बच्चे की माँ बनने वाली है ···?" प्रेमी जी बन्दर की तरह उछले—"कैसे ···?"

"यह तो आप ही अच्छी तरह जान सकते हैं।" वह कुछ गम्भीर स्वरो मे बोला—"आप इतने भोले क्यो बन रहे हैं ···क्या आपसे कुछ छिपा हुआ है ··?"

प्रेमी जी कुछ घबराये हुए स्वरो मे बोले—"नही····नही···मै··· मै तो इसके बारे में कुछ भी नही जानता।"

"लेकिन अब तो यह बात छिपी नही रह सकेगी प्रेमी जी···" वह उसी तरह गम्भीर होकर बोला—"जो होना था, सो हो गया। मै जानता हूँ ताली एक हाथ से नही बजती। मेरे विचार मे अब आपको साहस और उदारता से काम लेना चाहिये। मै चाहता हूँ न आपकी बदनामी हो, और न सुषमा बेचारी की। उसका जीवन नष्ट हो जायगा। आप सुषमा से एक बार मिल कर, बल्कि आज और अभी मिल कर फिर इस बात का ऐलान कर दे कि आपका और उसका 'कोर्ट शिप' हो चुका है। इससे बहुत सारे लोगो को सुषमा के बारे मे कई प्रकार की बाते करने का मौका नही मिलेगा···!"

"आप यह कैसी ऊटपटांग बातें कर रहे हैं मिस्टर सुरेन्द्र ·" प्रेमी जी भी कुछ गम्भीर होकर बोले—"क्या आपने मुझे कोई बेवकूफ समझ रखा है, जो किसी दूसरे का बोझ मुझ पर लादना चाहते हैं···क्या इरादे हैं आप लोगो के··· ?"

"इरादा कोई बुरा नही है ··" सुरेन्द्र ने यह शब्द शान्तिभाव से कहे। लेकिन फिर गभीर होकर बोला—"जो सच्चाई है, वह आप भी जानते हैं, और मै भी ·····आप मुझे धोखा नही दे सकते। मै आपकी भलाई की बात कर रहा हूँ···आप सुषमा की आँखो मे धूल झोक चुके हैं।

अब आप ही को उसका हाथ पकडना होगा। मै आपसे केवल यह पूछन चाहता हूँ कि आप अपना भार सँभालने को तैयार है या नही···? औ आप को इसके लिए 'हाँ' कहना पडेगा। पैसो के नशे में चूर होकर, साहित्य का मिथ्या ढोग रचकर, आप किसी को बहका लेना, और उसके अरमानं को मिट्टी मे मिला देना तो आसान समझते हैं, लेकिन उसकी प्रतिक्रिय मे आप विलग नही रह सकते···।

"क्षमा कीजिए मै आपकी बाते सुनने को तैयार नही···" प्रेमी जं कुछ क्रोध मे बोले—"शायद आपके होश ठिकाने नही। आप पागलं जैसी बाते कर रहे है, मेरा अपमान कर रहे है···मै चला···!"

प्रेमी जी वहाँ से खिसकने के लिये बरामदे से नीचे उतरने लगे। सुरेन्द्र ने उनका हाथ पकड़ लिया। बोला—"ठहरिये ! मै आपसे कुछ बातों का जवाब चाहता हूँ....!"

"बोलिये, क्या बाते हैं···!" वे रुक गये।

सुरेन्द्र ने कहा—"क्या आपको अपनी जिम्मेवारी का बस इतना ही ख्याल है···उस बेचारी पर दया कीजिए···!"

"मिस्टर सुरेन्द्र आप कैसी अजीब-अजीब सी बाते कर रहे है···?" वे कुछ ऊब कर बोले—"आखिर आपको उनकी इतनी फिक्र क्यो है···?"

"आपकी इस बात का क्या जवाब दूँ···" सुरेन्द्र का सारा जोश ठडा पड गया। उसने प्रेमी जी का हाथ छोड दिया, और फुसफुसाया—"क्या बताऊँ मै प्रेमी जी ! हम कभी एक थे और हमेशा के लिये एक नही हो सके····किन्तु मुझे अब भी उससे सहानुभूति है। और मै आप से प्रार्थना करता हूँ कि आप उसकी बाँह पकड लीजिये। उसे डूबने से बचा लीजिये, वरना वह कही की भी नही रहेगी !"

प्रेमी जी कुछ सोच मे डूब गये···कुछ क्षण सुरेन्द्र के मुँह की

तरफ देखते रहे और फिर उसके कधे पर हाथ रख कर बोले—"अच्छा मै कल सध्या के समय आप से फिर मिलूँगा···।"

"कहाँ····?" उसने पूछा।

"यही कफे मे···" प्रेमी जी बोले।

'नही···!" उसने कहा—"आप सुषमा के यहाँ आइयेगा। वही बाते होगी ··?" कुछ क्षण रुक कर वह नम्रता पूर्ण शब्दो मे बोला··· "जरूर आइयेगा प्रेमी जी। देखिए समय बडा नाजुक है। एक पल गँवाना भी गलती है। और सुषमा वह आप को बहुत याद करती है !"

उस समय सडक पर से गुजरती हुई एक टैक्सी को प्रेमी जी ने आवाज देकर खडा किया। और—"अच्छा हम फिर मिलेगे" कहते हुए उस ओर लपके। वह खडा उन्हे जाता देखता रहा। फिर खुद भी सडक पर आ गया। तब वर्षा की फुहार थम चुकी थी, और ऊपर बादल धीरे-धीरे छँटने लगे थे। उसने दूर नभ के एक कोने से एक तारा चमका हुआ देखा·····उसके पाँव घर की तरफ उठने लगे···।

× × ×

४०

लगभग रात के दस बज रहे थे, जब सुरेन्द्र घर पहुँचा। पारो उसके इन्तजार मे जाग रही थी, तब तक सोई नही थी। उसने सुरेन्द्र को सवेरे से कुछ परेशान देखा था। वह उससे उस परेशानी का कारण पूछना चाहती थी पर साहस नही होता था। उसे इस बात की खबर लग गई थी कि सुषमा फिर यहाँ आई हुई है और सम्भव है, सुषमा ही

फिर सुरेन्द्र की परेशानी का कारण बन गई हो। इस लिये वह चिंतित और उदास थी। उस समय वह अपने पलग पर बैठी एक छोटा सा स्वेटर बुन रही थी। सुरेन्द्र उसे देख कर बोला—"अरे, तुम अभी तक जाग रही हो····?"

"जी···!" उसके मुँह से निकला—"आज आप ने बहुत देर कर दी·· क्या ··।"

'ऐसे ही एक मित्र से भेट करने चले गया था !"

वह बीच ही मे बोल उठा।

"खाना पडा ठंडा हो गया···!"

"आज मुझे भूख नही है···।" कहता हुआ वह कपडे बदलने लगा।

पारो ने पूछा—"क्यो भूख क्यो नही है···या कि अपने मित्र के यहाँ से कुछ खाकर आए है···?"

"नही पारो मुझे भूख नही है···बिल्कुल नही।"

"आप आज सवेरे से कुछ परेशान नजर आ रहे हैं···क्या बात है···?"

"एक कारण है मेरी परेशानी का भी···तुम्हे भी बताऊँगा। पहले यह स्वेटर तो बुनना बंद करो···अब आराम करो···तुम अपना ख्याल बिल्कुल नही रखती···" सुरेन्द्र अपने पलग पर लेट गया। प्रेमी जी की बाते उसके कानो मे गूँज रही थी। उसे विश्वास नही था कि वे कल सुषमा से मिलने आएँगे। यह उनकी बातो ही से प्रकट था। वे उसे टालना चाहते थे। और पिंड छूटता न देख शायद उस समय, कल आने का बहाना करके वहाँ से भागे थे। अब वह सोच रहा था यदि सचमुच कल प्रेमी जी सुषमा से न मिले तो क्या करना होगा। उसने एक नजर पारो की ओर देखा, जो न जाने मन मे क्या सोच-सोच कर मुस्करा रही! और साथ ही बड़े लगन से स्वेटर बुन रही थी। उन दिनो उसके दिन भी पूरे होने को थे और शीघ्र ही वह एक शिशु को जन्म देने वाली थी।

फिर भी वह घर के काम से जी नही चुराती थी। उसके देखते-देखते स्वेटर की एक सलाई खत्म करके वह उसके पास पलग पर आ बैठी। उसका हाथ अपनी मुट्ठी मे लेती हुई बोली—"हाँ अब बताइये···कौन सी ऐसी परेशानी है जिसके कारण आज आपकी भूख उड गई। वह अवश्य ही कोई बहुत बडी बात होगी··· मैं जानती हूँ जब कोई विशेष घटना घटे, उसका प्रभाव आपकी भूख पर पडा करता है। बोलिये न क्या बात है···!

"क्या बताऊँ···" वह गहरी साँस लेकर बोला—"तुम नही सुन सकोगी !"

"क्यो ऐसी क्या बात है, जो मै नही सुन सकूँगी···!" पारो चेहरे की ओर झुकती हुई बोली—"मै अवश्य सुनूँगी।" उसकी उत्सुकता और बढ गई थी।

"क्या बताऊँ तुम्हे !" उसकी आँखो मे झाँकता हुआ सा वह बोला—"सुषमा आई है पारो···!"

पारो ने कुछ बनते हुए पूछा—"कहाँ···?"

"अपने घर···।" वह दुखी स्वरो मे बोला—"उसकी दशा दयनीय है···!"

"क्या हुआ उसे···?" वह कुछ गभीर होकर बोली—"क्या बीमार है···?"

"हाँ बीमार है।" वह फिर उसकी आँखो मे झाँकता हुआ सा बोला—"बडी भयानक बीमारी है उसे··· ?"

पारो सहानुभूति के स्वरो मे बोली—"बेचारी की देख-भाल करने वाला कौन होगा घर मे ·!"

"कोई भी नही" एक निराशा पूर्ण उत्तर था उसका—"वह घर में अकेली है, और उसकी सेवा करने वाला भी कोई नही···!"

पारो यह सब सुनकर किसी गहरी चिन्ता मे डूब गई। कुछ क्षण सोचती रही और फिर बोली—"आप उसे यहाँ आ जाने के लिये कह दीजिये।"

उसे पारो के शब्दो पर विश्वास नही हुआ और उसने उसी के शब्द दोहराए—"क्या उसे यही आ जाने के लिए कहूँ ··?"

वह निश्चिन्त भाव से बोली—"क्या हर्ज है। उसे यही आने को कह दीजिये ·।"

"अच्छा विचार है···!" सुरेन्द्र के मुँह से निकला—"लेकिन · लेकिन और वह आगे कुछ कहता-कहता रुक गया ··!"

"लेकिन क्या···?" पारो कहने लगी—"मै उसकी सेवा करूँगी। वह मेरी सहेली है। मेरी बहन है। मै उसे किसी प्रकार का दुख नही होने दूँगी।"

'पारो !" स्नेह से वह गदगद हो उठा। "तुम कितनी अच्छी हो···· कितनी उदार···! लेकिन बात कुछ और है · मै तुम्हे कैसे बताऊँ कि···" वह कुछ रुक कर बोला—"कैसे बताऊँ कि सुषमा के तो पाँव भारी हैं !"

'हाय भगवान !" उसके मुँह से एक हल्की सी चीख निकल गई और वह झुकी-झुकी सी चमक कर सीधी हो कर बैठ गई—"क्या कह रहे हैं आप · ?"

"सच कह रहा हूँ ··!" सुरेन्द्र धीरे से बोला।

"उसने कहाँ मुँह काला किया···?" पारो फटी-फटी आँखों से सुरेन्द्र के मुँह की ओर देख रही थी।

वह बोला—"भगवान जाने !"

"यह तो बडे शर्म की बात है दुनिया क्या कहेगी···?" वह कुछ परेशान होकर बोली—"अब क्या होगा ?"

सुरेन्द्र बोला—"यही तो मै चाहता हूँ कि दुनिया कुछ न कहे।

दुनिया का मुँह खुलने से पहले ही यदि इसका कोई उपाय हो जाये तो अच्छा है।"

"कैसे ?" वह उत्सुक हो पूछने लगी—'क्या उपाय हो सकेगा ?"

सुरेन्द्र कहने लगा—"तुम्हारी तरह उसके भी आज-कल मे दिन पूरे होने वाले हैं....।"

'तब आप उसे अवश्य ही यहाँ ले आईये...।" वह शीघ्रता से बोली—"बल्कि हो सके तो जा कर अभी ले आईये। रात के ग्यारह बज रहे है, कोई देखेगा भी नही। मुहल्ले मे किसी को खबर भी नही होगी...।"

सुरेन्द्र कुछ सोच कर बोला—"पर माँ को भी तो कुछ बताना पडेगा।"

वह बोली—"मै उन्हे समझा लूँगी।"

सुरेन्द्र प्रेमी जी का वायदा भी देख लेना चाहता था, इसलिये वह पारो के अनुरोध को टालता हुआ बोला—"पारो जल्दी न करो। सुपमा को भी तो मनाना पडेगा। यह सब कल ही हो सकेगा। तुम अब आराम करो, मुझे कुछ सोचने दो..."

"अच्छा सोच लीजिये...!" कहती हुई वह अपनी चारपाई पर चली गई।

सुरेन्द्र सोचने लगा, सुपमा को घर मे लाकर, और फिर उसके बच्चे को अपना या पारो का बच्चा कह कर, क्या वह दुनिया को बेवकूफ बना सकेगा ? क्या लोगो को उसकी बातो का विश्वास होगा...लोग इस नाटक को देखकर क्या उसकी प्रशसा करेगे ..या यह सब कुछ उसके लिये ही एक स्वय वचना हो कर रह जायेगा। दुनिया प्रेमी जी की बजाए उसे ही सारी बातो का दोषी ठहरायेगी...लोग यह सब उसी की करतूत समझ कर, उसके बारे मे नाना प्रकार की बाते करेगे। और वह सोच रहा था—'चाहे जो कुछ भी हो सुपमा की देखभाल करनी ही होगी। उस घर मे उसकी सेवा कौन करेगा...?'

पारो अपनी चारपाई पर लेटी-लेटी कह रही थी—

"सुषमा···! तुम कितनी अच्छी थी मेरी प्यारी सहेली···कितनी सुशील और कितनी बुद्धिमान·· !! न जाने तुमने कैसे अपने आपको एक नर्क कुण्ड मे फेक दिया···कैसे अपने गले मे एक फाँसी का फदा डाल लिया···अब क्या करोगी, किस से नाता जोडोगी····! ?" फिर वह चारपाई पर से उठती हुई बोली—"यदि कुछ नही खाईयेगा तो मै दूध लेती आऊँ·····!"

सुरेन्द्र ने कहा—"तुम आराम से चुपचाप लेट जाओ···मुझे किसी चीज की जरूरत नही। उसके कानो में प्रेमी जी के शब्द गूँज रहे थे··· वह मन-ही-मन कुढ रहा था और सोच रहा था, यदि उसे अपनी मर्यादा और सुषमा की स्थिति का ज्ञान होता, तो शायद आज वह प्रेमी जी की ऊटपटाँग बाते बर्दाश्त न कर सकता और नौबत हाथा-पाई तक आ ही जाती ·· ! ऊफ ! कैसी समस्या आ खडी हुई है···! सुषमा का चेहरा उसकी आँखो के सामने घूमने लगा। उसने 'स्विच' दबा कर कमरे की लाईट 'आफ' कर दी···!

४१

●●●

दूसरे दिन सबेरे दफ्तर जाने में पहले, सुरेन्द्र शैल के यहाँ गया और उसे सारी बाते कह सुनाईं। शैल ने हमेशा सुषमा को प्यार किया था। सारी बाते सुन कर उनकी आँखो मे आँसू उमड आये। वे सुषमा के बारे आज तक कई प्रकार की अफवाहे सुनती आई थी, और एक दिन उन्हे इसका वास्तविक रूप भी देखना पडेगा, इसकी उन्हे आशा नही थी ! वे से कुछ बुद्धिमान समझती थी। वे सब कुछ सुन कर किसी गहरी चिंता

में खो गई, और कई प्रकार की बातें सोचती रही। वे सुरेन्द्र के उस त्याग पर भी विचार करने लगी, जो वह सुषमा के लिए करने जा रहा था। वे समझ रही थी, इससे कोई फायदा नही होगा। बात छिपी नही रह सकेगी, और लोग बेकार उसे बदनाम करेंगे। वे उससे बोली—"सुरेन्द्र! मै जानती थी, तुम सुषमा को अपने मन से कभी नही भुला सकोगे। तुम्हे सुषमा की जरूरत थी और शायद उसे तुम्हारी। लेकिन भ्रांति, सन्देह, लोभ और फिर अभिमान ने तुम्हे एक नही होने दिया। तुम एक दूसरे से बहुत दूर होते चले गए, और आज फिर तुम निकट आ गए हो। एक नये और विभिन्न स्नेह मे बँध कर। मै समझती हूँ तुम उसके एक मित्र और शुभचितक के नाते, उसकी सहायता करोगे। पुरानी बातो को याद करके अपना कर्तव्य नही भूलोगे। सुषमा अब तुम्हारे लिए पहले की सुषमा नही। अब तुम्हारा उसका सम्बन्ध कुछ और है। वह बेचारी गरीब और असहाय है। तुम्हारे सिवा और कौन उसकी सहायता करेगा। मै भी तुम्हारे साथ हूँ। मुझ से जो बन पड़ेगा, मै उसके लिए करूँगी···!" और कुछ क्षण रुक कर वे फिर बोलो—"मै यह सोचती हूँ सुषमा के लिए और आगे तुम क्या कर सकोगे···!"

सुरेन्द्र क्रोधवश बोला—"मै यदि आगे उसके लिए और कुछ न कर सका, तो उसे इतना सबल, इस योग्य अवश्य ही बना दूँगा कि वह प्रेमी जी से उनकी करतूत, उनके धोखे, फरेब और काम लिप्सा का उत्तर ले सके। मै उसके लिए इससे अधिक और क्या कर सकता हूँ···मुझ मे अब शक्ति ही कहाँ है!" वेदना से उसका मन भर आया···।

शैल कहने लगी—'और भी तुम ने कुछ सुना है या नही ···?"

"क्या···?" उसने पूछा।

"तुम्हारी हरिचरन···" वे जैसे कुछ व्यंग करती हुई सी बोली—"उस लडके ने जिससे कि उसकी मँगनी हुई थी, उससे शादी करने से इन्कार कर दिया है।"

"क्यो ? " सुरेन्द्र इस विषय मे उनके मुँह से और भी कुछ सुनना चाहता था ।

वे बोलीं—"अनेको बाते हैं, क्या बताऊँ ! बस यह समझ लो कि जो घटना तुम्हारे साथ घटी, उस युवक के साथ भी ठीक ऐसा ही हुआ । हरिचरन इन दिनो अमेरिका से लौटे एक इन्जीनियर मे दिलचस्पी ले रही है ।"

सुरेन्द्र मुस्करा दिया—"क्या यह बेल मेढे चढेगी···?"

"भगवान ही जाने···!" वे बोली—"इन्जीनियर देखने मे एक भला आदमी लगता है । बेकार बातो मे वह बिल्कुल दिलचस्पी नही लेता उसके सिर और दाढी के बाल कुछ-कुछ सफेद पड़ चुके है और वह उनमे खिजाब लगाता है ।"

"यह तो और भी अच्छा है···!" वह हँसता हुआ बोला—"हरिचरन एक कारोबारी स्त्री है । उसे ठेकेदारनी बनने का बहुत शौक है । इन्जीनियर साहब उसके बहुत काम आएंगे । लेकिन···!" वह कुछ शका प्रकट करते हुए बोला—"भाभी मेरा तो विचार है, हरिचरन इन्जीनियर साहब से इस दिलचस्पी के बावजूद भी कँवारी रहेगी···और कँवारी रहना ही उसके लिए अच्छा है !

वे मुस्करा दी—"मेरा भी यही विचार है ।"

कुछ क्षणो के लिए सुरेन्द्र की आँखो के सामने हरिचरन का चेहरा घूम गया । पिछली कहानी, अतीत की बाते । क्षण भर मे उसने सब कुछ देख लिया, सब कुछ सुन लिया और उसने एक गहरी साँस ली । उधर शैल एक आह भरती हुई बोली—"मुझे सुषमा का दुःख है सुरेन्द्र, और किसी का नही । मै ऐसी सुषमा को और कहाँ पाऊँगी । काश···!" और आगे वे, वह बात कहती-कहती रुक गईं जो शायद पहले सैकडो बार कह चुकी थी । याने, उनके एक जीवन में आने की बात । और उनके सपने अधूरे ही रहे । आगे केवल उन्होने इतना ही कहा—"सुरेन्द्र

तुम सुषमा को आज ही घर ले आओ। मै संध्या के समय उधर आऊँगी और हाँ ''घर वालो को तुमने यह बात बता दी है न'' उन्हे कोई आपत्ति तो नही होगी न···?"

"कोई नही····!" वह बोला।

उस समय लगभग साढे आठ बज रहे थे। दफ्तर का समय हो चला था। लेकिन दफ्तर जाने से पहले वह एक बार सुषमा से भी मिल लेना चाहता था। इसलिए उसने शैल से जाने की आज्ञा माँगी। उसने कहा —"भाभी दफ्तर का समय होने जा रहा है। मुझे सुषमा के यहाँ भी जाना है। शाम को उसे घर ले आऊँगा···आप जरूर आईयेगा···!"

वहाँ से बिदा होकर वह सुषमा के यहाँ पहुचा। उस दिन भी उसने उसे अपने पुराने कमरे ही मे लेटे हुए पाया। वह अपनी चारपाई पर आँखे बन्द किए लेटी हुई थी। वह छोटी बालिका भी उसके निकट बैठी एक पुस्तक के चित्र देख रही थी। वह भी कुर्सी खीच कर उसके निकट बैठ गया। उसने सुषमा का हाथ छुआ और उसे ऐसा अनुभव हुआ, जैसे उसे काफी बुखार है। सुषमा ने हाथ का स्पर्श पाते ही अपनी आँखे खोली और उठ कर बैठ जाने का प्रयत्न करने लगी। वह बोला —

"उठो मत, तुम लेटी रहो·····" और फिर पूछा—"तबियत कैसी है··· ?"

"अच्छी नही · !" वह क्षीण स्वरो मे बोली—"घबराओ मत ·· " वह सात्वना देते हुए बोला—"आज शाम को प्रेमी जी ने यहाँ आने का वचन दिया है। सब ठीक हो जायगा···!"

वह उन्ही स्वरो मे बोली—"मुझे उनका कोई विश्वास नही··· उन्होने कई महीनो से मेरी कोई खबर नही ली···"

तब सुरेन्द्र ने कल रात की वे सारी बाते, जो प्रेमी जी से उसने की थी, सुषमा को बता दी। जिन्हे सुन कर वह रोने लगी।

वह उसे धीरज बँधाता हुआ बोला—"सुषमा हौसला रखने की जरूरत है। यो तो मुझे भी प्रेमी जी के वायदे पर विश्वास नही। वे वास्तव मे आएँगे या नही, यह मै नही कह सकता। लेकिन मुझ पर तुम विश्वास रखो " मै तो कही नही गया ! मै तुम्हारे साथ हूँ, तुम्हारे पास हूँ। मैने सब ठीक कर लिया है ' रात को यदि प्रेमी जी न आए तो मै तुम्हे घर ले जाऊँगा। वह कुछ क्षण रुक कर बोला —"सुषमा ! तुम्हे अब रोना नही चाहिये। इन कठिनाईयो को झेल चुकने के बाद तुम्हे प्रेमी जी से स्वय, उनकी करतूतो, और बेरुखी का जवाब लेना है। इसलिये तुम्हे साहस बटोर कर आने वाले एक समय की प्रतीक्षा करनी होगी, जब तुम स्वस्थ होकर चल फिर सको···! प्रेमी जी जहाँ भी जाएँ उनके पीछे-पीछे जा सको। मुझ से जो बन पडेगा, तुम्हारे लिए करूँगा। इन सारी बातो का अत इतनी जल्दी नही हो सकेगा, जैसा कि शायद प्रेमी जी ने सोच रखा है ' ! यह सेठ बनवारीलाल जी के उपन्यास के आगे की कथा है···! इसे मै लिखूँगा और इसके पात्रो के नाम नही बदलूँगा।"

वह चुपचाप उसकी बाते सुने जा रही थी। फिर सुरेन्द्र उससे, कल रात पारो से उसके सम्बन्ध मे की गई बातो की चर्चा करने लगा। पारो उस पर इतनी उदार है, यह जान-सुन कर वह और भी रोने लगी। इन बातो से उसे अपनी स्थिति का ज्ञान हो रहा था। वह किस प्रकार सबकी करुणा और दया की पात्री बन गई थी। उसे सुरेन्द्र की बातो से बडी सात्वना मिल रही थी ! वे बाते जख्मी दिल पर मरहम का काम कर रही थी। वह चाहती थी, सुरेन्द्र उसके निकट बैठा बस बाते ही करता जाए और वह सुनती रहे···सुनती ही रहे ! इन्ही बातो को शायद एक दिन उसने सुनने से मुँह मोडा था। उसने सुरेन्द्र का तिरस्कार किया था। इन्ही भावो की अवहेलना की थी, और आज वही स्वर, वही शब्द उसके लिए मत्र बन गए थे। शान्ति प्रदान करने वाली पवित्र वाणी।

वह बहुत देर तक सुरेन्द्र की बाते सुनती रही। जब वह चुप हो गया, तब वह भर्राए हुए स्वरों में बोली—

"पारो मेरे बारे में क्या सोचती होगी ? मैं कितनी नीच हूँ, कितनी निर्लज्ज हूँ। न मेरा कोई आदर्श रहा, न जीवन का कोई सिद्धान्त। मैं किसी पके हुए फल की तरह सड़-गल गई। अब मैं किस मुँह से उसका अहसान अपना लूँ। मैं स्वयं अपने आपको इतना अधिक पतिता समझने के लिए मजबूर हूँ कि खुद अपना मुँह आईने में नही देख सकती, मेरे भगवान···!" वह रोने लगी—"वह मेरे कलक को भी सहृदयता से अपनी गोद में ले लेगी···कितना बड़ा त्याग है यह। मेरा माथा उसके चरणों मे झुक गया है। वह देवी है देवी ···कितनी महान, कितनी उत्तम···?"

सुरेन्द्र अपने रूमाल से उसकी आँखों के आँसू पोंछने का प्रयत्न करने लगा। वह कहे जा रही थी—"इन आँखो के सामने एक अँधेरा सा छाया हुआ है। ऐसा लगता है, मेरा पथ वहाँ जाकर समाप्त हो गया है, जहाँ उजाला भी शेष हो जाता है। आँखों के सामने केवल अन्धकार फैला दिखाई देता है, और कुछ भी नही ! और यह अंधकार, यह शून्य ही मानो मृत्यु की प्रथम सीमा है···! मै मौत के निकट हूँ···या मौत मेरे समीप सरक आई है···यह सब, समझ मे आता है, और कुछ भी नही ...और···और मै एकाकी हूँ····!"

ऐसा लगता था, जैसे सुषमा पर मृत्यु का एक आतक सा छाया हुआ था। उसे काफी बुखार था और उसका मस्तिष्क स्थिर नही था। सुरेन्द्र बोला—"यह कैसी पागलो जैसी बाते कर रही हो सुषमा" कुछ होश की दवा करो···!"

वह उन्ही भर्राए हुए स्वरों मे बोली—"सोचती हूँ, मैं आप सब के अहसान का बदला कैसे चुका सकूँगी···?"

"कोई किसी पर कुछ भी अहसान नही करता सुषमा।" सुरेन्द्र उसकी

गालो पर ढुलके हुए आँसू पोंछता हुआ बोला—"यदि हम अहसानों पर ही विचार करते रहे तो यह पता चलेगा कि हम मे से हर एक, एक दूसरे का ऋणी है और अहसानमद भी···! छोड़ो इन बातो को। मैं सध्या के समय अँधेरा छाते ही तुम्हे यहां से घर ले जाऊँगा। तैयार रहना।" उसने घड़ी देखी और फिर कमरे से बाहर जाने लगा। सुषमा दोनों हाथो से अपना चेहरा छिपा कर रोने लगी।

उस दिन सुरेन्द्र दफ्तर कुछ देर से पहुँचा। उसके टेबुल पर दफ्तरी चिट्ठियो का अबार लगा हुआ था। वह उन्हें देखने लगा। पर उसकी आँखो के सामने सुषमा का चेहरा घूम रहा था। वह रोता सिसकता हुआ चेहरा, वह आँसू बहाता हुआ चेहरा···और बस···! उसका मस्तिष्क शून्य पड़ चुका था। वह सुषमा के बारे और कुछ नही सोच सकता था···कुछ नही···! बस उसका चेहरा उसकी आँखो के सामने घूम रहा था···वह उसी कल्पना मे खोया रहना चाहता था।

दफ्तर मे दो-चार घंटे बैठे रहने के बाद अचानक उसका मन अस्थिर हो उठा। उसका वहाँ बैठे रहना संभव नही था। काम में बिल्कुल मन नही लग रहा था। रह-रह कर सुषमा का ख्याल आ रहा था। उसने बडे साहब के पास आधे दिन की छुट्टी की दरख्वास्त भिजवा दी। छुट्टी ले वह सीधा सुषमा के यहाँ पहुँचा।

वहाँ आकर उसने देखा, वह बेहोश सी पड़ी दिखाई दे रही थी। उसके मुँह से हल्की सी झाग बाहर निकल रही थी, और साँस कुछ तेज चलती नजर आ रही थी। उस समय उसके पास और कोई नही था। उसने हाथ छुआ, वह तवे की तरह तप रहा था। उसने उसे डुलाया। वह शायद बुखार ही मे बेहोश पड़ी थी। उसके शरीर के वस्त्र बिलकुल अस्त-व्यस्त थे, उसे शक हुआ। कही इसने इस जीवन से मुक्ति पाने के लिए कोई जहरीली चीज तो नही खा ली। वह उसे उसी दशा में छोड़ कर शीघ्रता से घर से बाहर निकल आया। समीप ही एक फायर ब्रिगेड

के दफ्तर मे जाकर उसने बड़े अस्पताल के डाक्टर को फोन किया। फिर सुषमा के पास लौट आया, और बेचैनी से डाक्टर के आने का इन्तजार करने लगा।

कुछ ही देर मे डाक्टर आ गया। उसने सुषमा को देखा···उसका परीक्षण किया और फिर सुरेन्द्र को उसे फौरन अस्पताल मे दाखिल करा देने की राय दी।

डाक्टर के चले जाने के बाद वह कुछ देर परेशानी की हालत मे खडा कई प्रकार की उलझनो मे खोया रहा। फिर वह घर से बाहर निकला। सडक पर एक टैक्सी वाले को रोका, और टैक्सी में बैठ कर शैल के यहाँ पहुँचा। उसने उन्हे सारी बाते बताईं। सुषमा की दशा, सुषमा की स्थिति, और फिर डाक्टर की राय। एक मिनट की देर भी खतरनाक थी····एक-एक पल बहुमूल्य था। शैल फौरन तैयार होकर उसके साथ हो ली। वे उसी टैक्सी मे बैठ कर सुषमा के घर आए। तब तक अस्पताल की एम्बुलेस कार भी आ चुकी थी। शैल तथा पड़ोस की एक और स्त्री की सहायता से सुषमा को एम्बुलेस कार मे लिटा दिया गया। वह अस्पताल मे भरती करा दी गई। सुरेन्द्र उसके भविष्य के बारे मे सोचता ही रह गया। उसके सारे संकल्प, सारे इरादे, धरे के धरे रह गये। सारी भावनाओ ने दम तोड़ दिया। वह शायद सुषमा के नाम की रक्षा न कर सका। उससे वह कुछ भी न हो सका, जो कुछ कि वह चाहता था। उसके मन पर निराशा छा चुकी थी···!

*

*

४२

अस्पताल मे एक-दो दिनो मे सुषमा की तबियत कुछ सँभल गई। लेकिन बुखार पूरी तरह नही उतरा था। इसलिये उसने अभी तक खतरे की सीमा पार नही की थी। किसी समय भी उसकी दशा और अधिक खराब हो सकती थी। उसके शरीर से काफी खून बह रहा था। लेडी डाक्टर ने अपने पूरे प्रयत्नों द्वारा उसकी यह बीमारी रोकने की कोशिश की। वह बहुत कमजोर हो गई थी। शैल एक रात वही उसके पास अस्पताल मे रही। उसने भी उसकी सेवा मे कोई कसर उठा न रखी।

सुरेन्द्र को सुषमा की इस दशा पर बहुत दुःख हो रहा था। वह उस के लिये और कुछ करने मे असमर्थ था। उसके आराम और नर्सो द्वारा अधिक सेवा हो सकने के ख्याल से, उसे स्पशेल वार्ड मे दाखिल करवा दिया था। लेकिन जिस स्थिति से वह गुजर रही थी, उस पर काबू पाना शायद किसी के बस की बात नही थी। सब की कोशिशे, सबके प्रयत्न सबकी शुभ इच्छाएँ यही थी कि सुषमा सँभल जाय। भले ही वह एक मुर्दे बच्चे को जन्म दे, उसकी आँखे अपने पेट के कीचड़ के कमल को खिला हुआ न देख सके; लेकिन उसके अपने प्राण बच जाएँ···! पर कुछ समझ मे नहीं आता था, भविष्य मे क्या होगा···?

इसी प्रकार दो-चार दिन बीते। उसकी बेचैनी बढती गई। वह पारो के पास बैठ कर, उससे सुषमा की बाते करके, उसकी नाजुक दशा और स्थिति पर विचार करके, स्वयं पारो को उसके आने वाले समय का ज्ञान दिलाकर उसे प्यार करके; अपने आपको भूल जाने का प्रयत्न करता रहता। जब वह दफ्तर मे होता, हर प्रकार से अपने आप को वहाँ के काम में उलझाये रखने का प्रयत्न करता। लेकिन कई बार टेलीफोन पर

अस्पताल के सूचना विभाग से सुषमा के बारे मे शुभ-समाचार पूछ लेता। हर बार उसे उसकी करुणा स्थिति की सूचना मिलती, जिसके कारण वह पहले से अधिक निराशा मे खो जाता।

जब सध्या के समय बाहर के लोगो को अस्पताल में दाखिल होने की इजाजत मिलती, वह कई प्रकार के फल इत्यादि लेकर सुषमा को देखने जाता, पर वह देखता, उसकी लाई हुई चीजों को तो उसे मुँह तक लगाने का होश नही था। लाई हुई वस्तुएँ पडी रहती, जिन्हे वार्ड की भगिने और वार्ड गर्ल्स खाती। वह उसके पलग के निकट एक कुर्सी पर बैठा, बडे गौर से उसे देखता। सुषमा उसे बिल्कुल उदास और चुपचाप किन्ही निराशा पूर्ण विचारो मे खोई हुई सी दिखाई देती; मानो, वह मौन होकर अपने अतीत, वर्तमान और फिर भविष्य पर विचार कर रही हो। उसे सोचते ही रहने का अभिशाप मिला हो। उसने अपना छोटा सा जीवन केवल सोचने मे ही बिताया है। केवल सोचने ही मे और वह इस जीवन के उस पार केवल सोचती हुई ही बह जाएगी। उसे ऐसा लगता था, जैसे अब सुषमा जो कुछ भी सोच रही है, वह शायद उसके लिये एक अन्तिम समस्या है, जिस पर वह अच्छी तरह विचार कर लेना चाहती है। अब वह फिर कभी नही रोएगी, किसी से उसकी कोई शिकायत नही होगी, वह किसी से कुछ नही बोलेगी, कोई बात नही करेगी। बस सोचती ही रहेगी। अतीत, वर्तमान और भविष्य के बारे मे, क्योकि उसे सोचते रहने ही का अभिशाप मिला है!

लेकिन वह स्वयं अब कुछ नही सोचना चाहता था। वह केवल देखता रहना चाहता था,'' अब आगे क्या होता है'' अब आगे क्या होने जा रहा है''''?

एक दिन जब दफ्तर में बैठा एक जरूरी काम में उलझा हुआ था, अचानक फोन की घटी टनटनाई। उसने जल्दी से चोगा उठाया, अस्पताल के इनक्वारी आफिस से कॉल हुआ था। उसे बताया गया कि

सुषमा को मरा हुआ बच्चा पैदा हुआ है और खुद उसकी जिन्दगी भी खतरे से खाली नही। सुनते ही उसके मन मे एक धक्का सा लगा। उसने फौरन दफ्तर के बड़े साहब से छुट्टी ली और लेडी डाक्टर के पास पहुँचा। डाक्टरनी से सुषमा को हर मुमकिन कोशिश करके बचा लेने का अनुरोध किया। उसने सुरेन्द्र को धैर्य रखने के लिये कहा। विश्वास दिलाती हुई वह बोली—"मिस्टर सिह! मुझसे जो कुछ सभव हो सकेगा मै करूँगी। आगे भगवान की इच्छा।"

सुरेन्द्र ने आज्ञा माँगी—"मै एक बार सुषमा को देखना चाहता हूँ.....!"

डाक्टरनी ने कहा—"जो दशा इस समह सुषमा की है, और जिस हालत मे वह पडी हुई है, उसे ध्यान मे रखते हुए इस समय आपको 'मेटर्निटी' वार्ड मे जाने की आज्ञा नही दी जा सकती। इसका हमे दु ख है। अभी अढाई बज रहे है। केवल दो घंटे और हैं, फिर आप जाकर देख लीजिएगा·· ···हाँ, आप की जगह कोई स्त्री जाकर उसे देख सकती है.....!"

सुरेन्द्र दौडा-दौडा शैल के पास गया और उसे सारी बाते कह कर सुनाई .....!"

शैल अति शीघ्र तैयार होकर अस्पताल आ गई। सुरेन्द्र अपने दो-एक मित्रो को साथ लेकर सुषमा के मरे हुए बच्चे को ठिकाने लगाने के प्रबन्ध मे लग गया।

शैल के सामने सुषमा बेहोश पडी थी। एक खडित, मिट्टी की एक प्रतिमा सी। उसके पीले चेहरे को देखकर ऐसा प्रतीत होता था, जैसे उसके शरीर से सारा खून निकल चुका है। वह जीवित रह कर भी एक मुर्दा लाश की ही तरह है····वह देख रही थी, उसकी साँसें चल रही हैं और वह आँखे बन्द किए अचेत पड़ी है। सुषमा अब वह सुषमा नही रही थी, जिसकी आँखों मे आकर्षण था, जिसके होठों पर मुस्कानों की

रश्मियाँ नाचा करती थी। जिसके चेहरे पर हमेशा फूटती हुई पौ की सा लाली छाई रहती थी; अब उस पर डूबती हुई सध्या की सी नीरवता छाई हुई थी। वह एक जिन्दा लाश नजर आ रही थी। उसकी साँसें चल रही थी, वह शायद जीवन की अन्तिम घडियों की प्रतीक्षा कर रही थी...! शैल यह सब कुछ देख कर रो पडी ! एक बार प्यार से उन्होने उसके सिर पर हाथ फेरा और भर्राए हुए स्वरो मे धीरे से बोली—कितनी पवित्र हो तुम···कितनी अबोध हो तुम। वे लोग, जो अक्सर तुम से अपने मन का सम्बन्ध जोडने का आह्वान करते रहे हैं आज वे तुम से दूर हैं, आज उनका कोई पता नही सुषमा····तुम अन्त में कितनी अकेली रह गई···!"

इतने में एक सिस्टर आई ! उसने सुषमा को दो इन्जेक्शन दिए। फिर कुछ क्षणो के लिए वही खड़ी, उसे रहस्यमय दृष्टि से देखती रही, और फिर वह शैल से पूछ बैठी—"ये तुम्हारा कौन लगता है बाई···?"

शैल भर्राए हुए शब्दों में बोली—"मेरी छोटी बहन है···!"

"इसका हस्बेड को नही देखा · ?"

"वह बहुत दूर अफ्रीका गया हुआ है···!"

'तुम्हारा सिस्टर का हालत ठीक नही है बाई···!" सिस्टर ने एक बार गौर से सुषमा को देखा और फिर कमरे से बाहर चली गई !

शैल के शरीर मे एक सिहरन सी दौड़ गई। वे आँखे फाडे सुषमा को देखती रही। करुणा की पात्री उस सुषमा को, जिसकी दशा उस समय ऐसी थी कि शायद जीवन दान के लिये उस समय उसे बाहर का रक्त भी नही दिया जा सकता था। वह सुषमा अब सबसे निराश होकर सारी बातों से मायूस होकर, सबसे मुँह मोड़ कर, किसी गहरी सोच में डूब गई थी। लेकिन फिर अचानक जैसे उसका ध्यान टूटा। उसने आँखें खोली, और उसके मुँह से निकला ···"माँ···माँ···!"

"सुषमा···!" शैल उसकी ओर झुकी। वे अपने आँसू रोके नही रोक पा रही थी। वे भर्राए हुए स्वरो में बोली—"सुषमा ··!" प्यार से उन्होंने उसके सिर पर हाथ फेरा। अपनी ओढनी के आँचल से उसका चेहरा पोछा और कहने लगी—"माँ को याद कर रही है पगली···· भगवान् को याद कर···तूने पढा नही है—

"तू मेरा पिता, तू है माता

भगवान् से प्रार्थना कर वे तेरा सारा दुःख हर लें·· !"

"बीबी···!" क्षीण स्वरो में उसके मुँह से निकला, और उसकी आँखे आँसू उगलने लगी। चादर से उसने अपने दोनों हाथ बाहर निकाले और उन्हे सामने फैलाने का प्रयत्न करने लगी। जैसे वह शैल के गले मिलना चाहती हो।

शैल ने कहा—"लेटी रहो····हिलो नही। मैंने तुम्हे अपने गले लगा लिया सुषमा···मैंने तुम्हे कभी अलग नही किया···!"

उसने उसके दोनों हाथो को चूम लिया।

सुषमा ने फिर अपनी आँखे मूँद ली। उसकी गालो पर आँसू ढुलक पडे।

शैल धीरे-धीरे भगवान का नाम लेने लगी। कुछ अपने सन्तोष के लिये और कुछ सुषमा की मन की शाँति के लिये। वे मन ही मन भगवान् से प्रार्थना करती रही—"भगवान् मेरी छोटी बहन के दुःख हर ले····इसके व्याकुल मन को शान्ति प्रदान कर···!" अतीत के सारे चित्र उनकी आँखो के आगे घूम रहे थे। वे शायद याद कर रही थी, उन दिनो को, जब सुषमा एक भोली भाली और नादान लडकी की तरह उनके यहाँ आया करती थी और उनके पास बैठकर हमेशा प्यारी-प्यारी बाते किया करती थी। वे स्मरण कर रही थी उस समय को, जब सुषमा ने स्वयं उनकी छोटी भाभी बनने की इच्छा प्रकट की थी। फिर वे याद

करने लगी उस दिन को, जब वे उसके पिता के पास उसे माँगने गई थी और उन्हे बहानो से टाल दिया गया था। उन्हे वे दिन भी नही भूले, जब व दूसरी बार उसके पास जाकर अपना दामन पसारा था, पर वहाँ से उन्हे निराश होकर आना पडा, मन मे दु.ख और क्षोभ लेकर···! और आज···? वे इससे आगे और कुछ नही सोचना चाहती थी···! सब कुछ उनकी आँखो के सामने था, जिन्हे देखकर उनके आँसू निकल रहे थे। उन्होने देखा, जैसे सुषमा को नीद आ गई है। वह सो गई है··· वह और गहरी नीद सो जाएगी·· वह आज के बाद फिर शायद कभी उनसे कोई बात नही करेगी···बिल्कुल नही ···' वे उसके पास से उठकर खिडकी के निकट जा खडी हुई···तब दिन ढलने लगा था। बाहर अस्पताल के अहाते के उस भाग में खडे नीम और नन्हे-नन्हे युकल्पिट्स के पेडो पर, सध्या की उदासी सी छाई हुई थी। हरी-हरी घास पर कुछ बीमार स्त्रियाँ, जिनमे कुछ चलने-फिरने की शक्ति थी, हल्के-हल्के कदमो से चहलकदमी कर रही थी। उनके वे बधु जो उनसे मिलने के लिये आये थे, वे भी उसी अन्दाज से उनके साथ घूम-फिर रहे थे। हर ओर मौन था, एक शून्यता थी, वार्ड के बरामदो मे और कभी वार्ड की खिड़कियों से अन्दर हॉल में उन नर्सों के सुन्दर चेहरे दिखाई दे रहे थे। उन दया की देवियो के, जिनके चेहरो पर एक अजीब सा भोलापन, एक विचित्र सी करुणा थी। वे तेजी से इधर-उधर आ-जा रही थी, और सारा वातावरण दवा इत्यादि की गंध से महक रहा था। उन्होने नजरे घुमा कर फिर सुषमा की ओर देखा···बस यही सध्या की छाने वाली उदासी उसके चेहरे पर भी थी वह आँखे बद किये·· एक विचित्र मुद्रा में लेटी हुई थी, उस नादान बच्ची की तरह जो रोती-रोती सो गई हो···! फिर उसके मस्तिष्क मे अतीत की कितनी ही यादे उभरने लगी ···! शोक ! जीवन की इतनी बडी दौड़ मे निदान कोई अभागिनी पहुँचती भी है तो एक ऐसी मंजिल पर, जहाँ उसका अपना सतीत्व, अपनी मर्यादा; अपना आत्माभिमान शेष नही रह जाता। पुरुष की बेशर्मी, और

उदंडता की मार भी उसी को सहनी पड़ती है, उसी को बदनाम होना पड़ता है। उन्होंने सोचा यदि अमीरी और गरीबी का सवाल, एक लोलुपता, किसी के जीवन में न आती तो शायद ऐसा कभी न होता !

वे सुरेन्द्र के लौट आने की प्रतीक्षा में थी। पल-पल उनकी बेचैनी बढ़ रही थी। उनका मन,अस्थिर था··· बिल्कुल अस्थिर···उन्हें वहाँ प्रत्येक वस्तु पर मृत्यु की एक भयानक छाया फैलती दिखाई दे रही थी। वे वहाँ खड़ी नहीं रह सकीं और केबिन से निकल कर डाक्टरनी के कमरे की तरफ चल दी···!

और····!

और कुछ देर बाद, जब संध्या निशीथ के आँचल में मुँह छिपा चुकी थी, जब क्षितिज की लालिमा प्रतीची के गर्त में डूब चुकी थी, और कालिमा धीरे-धीरे आँधी की तरह ऊपर उठ रही थी; सुरेन्द्र सुषमा के छोटे बच्चे को मिट्टी देकर अस्पताल वापस लौटा ! उस समय सुषमा के कमरे मे डाक्टरानी और कुछ नर्सें खड़ी थी···और शैल भी, जो फटी-फटी आँखों से सुषमा की ओर देख रही थीं। सुषमा की साँसे तेज चल रही थी। अभी कुछ देर के लिये उसे ऑक्सीजन दी गई थी···। सुरेन्द्र ने केबिन की खिड़की के अंदर झाँका, और फिर वह वहीं एक शिला की भाँति खड़ा रह गया। उसे केबिन में दाखिल होने का साहस नही हुआ। डाक्टरनी माथा झुकाये केबिन के बाहर निकल आई।

"डाक्टर····!'। सुरेन्द्र उसके साथ-साथ चलता हुआ बोला—"कैसी हालत है अब पेशेन्ट की ?"

"नो होप मिस्टर सिंह···!" डाक्टरनी धीरे से बोली।

वह वापिस केबिन की ओर मुड़ा और अन्दर गया। देखा शैल आँखों में आँसू लिये, सुषमा की ओर झुकी हुई सी उसे भगवान की पवित्र वाणी

गुना रही है। सुषमा का दम उखड़ रहा है····एक····दो···तीन ··और फिर उसके देखते-देखते···जैसे एक तारा सा टूटा···एक बार धरती काँपी···एक बार एक गड़गड़ाहट सी गूँजी····एक आँधी आई····और एक दीपक···सुषमा ने आखिरी हिचकी ली, और एक दीपक बुझ गया ! सुषमा मर गई···सुषमा की गर्दन एक ओर लुढक गई। उसकी आँखे फटी की फटी रह गई···उसके होंठ खुले के खुले रह गये। नर्स ने आगे बढकर उसकी आँखो की पुतलियाँ मिला दी···होंठ जोड़ दिये···और वह ऐसी दिखाई देने लगी, जैसे दुनिया से निश्चिन्त हो। हाँ; किसी नादान बच्ची की तरह रोती-रोती सो गई हो। सुरेन्द्र गुम-सुम खड़ा उसे देखता ही रहा। शैल भी आँखों के आँसू पोछती हुई उसके निकट आ खड़ी हुई। वह मौन खड़ा ही रहा। नर्सो ने लाश को चादर से ढाँक दिया, और पलग से लगे लोहे के फ्रेम मे से मैडिकल रिपोर्ट निकालकर केबिन के बाहर निकल गईं। वह खड़ा ही रहा। नजरें गाड़े एकटक उस लाश को देखता ही रहा। रात का अँधेरा फैल जाने के बाद जब लाखों करोड़ो दीप जगमगा उठे थे, तब वह एक दीप बुझ कर ठंडा हो गया था। शायद वही उसके बुझने का समय था·····वही उसकी मंजिल थी · ···!

—: समाप्त :—

*